विषय-सूची

★

प्राचीन भारत
में
लक्ष्मी-प्रतिमा

: १ :

लक्ष्मी तथा लक्ष्मी-पूजन

भारत के प्रत्येक हिन्दू के घर में दिवाली के दिन लक्ष्मी की पूजा होती है। कार्तिक अमावस्या की रात्रि दीपकों के आलोक से शरद् पूर्णिमा की भाँति खिल उठती है। प्रायः सभी हिन्दू साधारणतया दो दिन पूर्व ही अपने-अपने घर को झाड़-पोंछ कर स्वच्छ करते हैं, नया वस्त्र पहनते हैं, तथा बड़ी धूमधाम से लक्ष्मी का पूजन करते हैं। कुछ परिवारों में उपासक पृथ्वी पर चन्दन से कमल का आकार बना कर मिट्टी की लक्ष्मी की मूर्ति का विधिपूर्वक गणेश के साथ पूजन करते हैं।[1] धान के लावे का अक्षत बना कर, देवी पर मन्त्रों सहित चढ़ाते हैं। उसके पश्चात् पानी तथा दूध, दही, घृत, शहद, चीनी मिश्रित पंचामृत से स्नान कराते हैं, लाल वस्त्र पहिनाते हैं, चन्दन लगाते हैं, फूलों की माला तथा कमल का पुष्प चढ़ाते हैं, धूप, दीप, नैवेद्य उपस्थित करते हैं, फिर एक थैली में कुछ सुवर्ण तथा चाँदी के सिक्के लक्ष्मी के समक्ष रखकर उसका पूजन करते हैं। इन्हीं के साथ एक पेटी में इन्द्र तथा कुबेर की भी मूर्ति रखकर पूजन करते हैं तथा घृत का अखण्ड दीपक प्रज्वलित करते हैं। इस प्रकार खजाने में कुबेर के पूजन का विधान कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी मिलता है।[2] अन्त में लक्ष्मी से प्रार्थना करते हैं कि वह परिवार को धन-धान्य से सुसम्पन्न करें। उत्तर भारत के परिवारों में चन्दन घिसकर उससे लक्ष्मी की मूर्ति सफेद पत्थर के चकले पर बनाते हैं तथा पूजन करके घर की तिजोरी में रखते हैं। दूसरे दिन उस मूर्ति को पानी में घोल कर घर भर में छिड़कते हैं,[3] कदाचित् इस विश्वास से प्रेरित होकर कि इस प्रकार घर के सब स्थान में लक्ष्मी का वास हो जायगा। और दूसरे परिवारों में श्री का यन्त्र चन्दन से एक सफेद चौकोर पत्थर पर बनाते हैं और उसकी पूजा करते हैं। कहीं-कहीं यह यन्त्र लोग पत्थर पर खोदवा कर रख लेते हैं और दिवाली के दिन उसी पर चन्दन लगाकर पूजा करते हैं। किसी-किसी परिवार में लक्ष्मी की मूर्त्ति भीत पर चित्रित करके उनका षोड़शोपचार से पूजन करते हैं।

यह विश्वास जनसाधारण में विस्तृत रूप से व्याप्त है कि दिवाली के दिन लक्ष्मी प्रत्येक गृह में पधारती हैं। उनके आगमन की प्रतीक्षा में लोग अपने घर को स्वच्छ करते हैं, दीपक जलाते हैं, जागरण करते हैं तथा द्यूत रचाते हैं।

दिवाली के पूर्व भाद्रपद में कुछ नगरों में लक्ष्मी का मेला होता है तथा लोग लक्ष्मीव्रत करते हैं। यह व्रत भाद्र शुक्ल अष्टमी से प्रारम्भ होकर आश्विन कृष्ण अष्टमी तक चलता है। अष्टमी को उस व्रत का उद्यापन होता है। इस व्रत तथा पूजा की कथा भविष्योत्तर पुराण में महालक्ष्मी व्रत कथा के नाम से प्राप्त होती है[4]। यह उत्सव भदई की फसल कटने के पश्चात् होता है तथा अगहनी बोने के पूर्व। इस प्रकार इस उत्सव का हमारे

---

१. यह गणेश की मूर्ति प्रायः सफेद रंग की बनती है, यों यह लाल रंग की रहती है।

२. कौटिल्य—अर्थशास्त्र—पृष्ठ २, ४

३. मोतीचन्द्र—अवर लेडी ऑफ ब्यूटी एण्ड अबण्डन्स—"पद्मश्री नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ —१६४६", पृ० ४६७

४. इस व्रत तथा इसके माहात्म्य की कथा 'श्री महालक्ष्मी व्रत कथा' नाम से लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, कल्याण, मुंबई से सं० १६७२ में प्रकाशित हुई थी।

कृषि से भी सम्बन्ध प्रतीत होता है। इस कथा में एक मंगल राजा तथा उनकी दो रानियों चिल्लदेवी तथा चोल देवी का विवरण प्राप्त होता है। इन रानियों के नाम कुछ चुल्ल कोक देवता से मिलते हुए हैं जिनकी मूर्ति भारहुत में प्राप्त हुई है[1]। कथा भी किसी प्राचीन आख्यायिका पर निर्धारित प्रतीत होती है। राजा मंगल का नगर पर्वतों के पास समुद्र से बहुत दूर न था[2]। यह कौन-सा देश था इसका पता नहीं। यह व्रत आज भी काशी तथा अन्य नगरों और ग्रामों में प्रचलित है। भाद्रपद शुक्ल अष्टमी को हाथ पांव धोकर सोलह तन्तुओं का सोलह ग्रन्थियुक्त एक तागा या डोरा बनाकर उसे चन्दन, मालती के पुष्प, कपूर, अगर इत्यादि से पूजते हैं तथा लक्ष्मी से धन-धान्य, पृथ्वी, कीर्त्ति, आयु, स्त्री, घोड़ा, हाथी, पुत्र देने की प्रार्थना करते हैं। इसके पश्चात् दक्षिण-करके मणिबन्ध पर यह तागा बाँधते हैं। सोलह दिन तक यह क्रम नित्य चलता रहता है तथा एक गज-लक्ष्मी की चतुर्भुज मूर्ति, कपूर, अगर तथा चन्दन से सिंचित आश्विन कृष्ण अष्टमी को बनाते हैं जैसा अधोलिखित मंत्र में वर्णित है :[3]

शुभ्रवस्त्रपरीधानां मुक्ताभरणभूषिताम्।
पङ्कजासनसंस्थानां स्मेराननसरोरुहाम् ।५६।
शारदेन्दुकलाकान्तिं स्निग्धनेत्रां चतुर्भुजाम्।
पद्मयुग्मामभयदां वरव्यग्रकराम्बुजाम् ।।
अभितो गजयुग्मेन सिच्यमानां कराम्बुना।
सञ्चिन्त्यैवं लिखेद्देवीं कर्पूरागुरुचन्दनैः ।६१।

मूर्तिपूजन करनेवाले सुन्दर आसन पर श्वेत वस्त्र पहनकर बैठते हैं। पहले आठ पंखड़ियोंवाला श्वेत कमल लिखकर बनाते हैं। तदनन्तर लक्ष्मी का आवाहन तथा पूजन करते हैं। इस व्रत के उद्यापन में सुवर्ण से सींग मढ़वाकर एक गौ, वेदपाठी ब्राह्मण को तथा सुवर्ण, अन्न, वस्त्र इत्यादि दूसरे ब्राह्मणों को देते हैं।

किसी-किसी कुल में लक्ष्मी का इस प्रकार का चित्र न बनाकर लक्ष्मी की कच्ची मिट्टी की मूर्ति रखकर पूजन करते हैं। यह मूर्ति केवल ग्रीवा तक रहती है। नीचे का भाग कपड़े से बनाया जाता है। इस प्रकार की दो मूर्तियाँ रखी जाती हैं। एक को छोटी तथा दूसरी को बड़ी लक्ष्मी कहते हैं। ये मूर्तियाँ राजा मंगल की दो रानियों की प्रतीक रूप में पूजी जाती हैं। कहीं-कहीं घट पर सतिया बनाकर तथा कहीं मिट्टी के ढेले रखकर लक्ष्मी का पूजन होता है जैसा जिस कुल का आचार है। प्रायः पूर्ण घट को लक्ष्मी का प्रतीक मानते हैं। अनुमान ऐसा होता है कि ढेले से घट तथा उससे मूर्ति का चित्र और चित्र से स्वतन्त्र मूर्ति का आकार बना।

माघ के शुक्ल पक्ष में श्री पंचमी को बंगाल के निवासी बड़ी धूम-धाम से लक्ष्मी की मूर्ति बना कर पूजन करते हैं[4]। कई घरों में आश्विन की पूर्णिमा को रात्रि में इन्द्र तथा लक्ष्मी का श्वेत पुष्प इत्यादि से पूजन होता है तथा श्वेत वस्तुएँ जैसे रेवड़ी, गरी, दूध इत्यादि का भोग लगाया जाता है तथा द्यूत रचाया जाता है।

---

१. हेनरिक जिम्मर—'दी आर्ट आफ इंडियन एशिया'—फलक ३३ (बी)।

२. महालक्ष्मी व्रत—४

३. महालक्ष्मी व्रत—५६, ६०, ६१।

४. जे० एन० बैनर्जी—डेवलपमेण्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ०—३७०।

यह कदाचित् प्राचीन कौमुदी महोत्सव का प्रतीक है[1]। ऐसे ही एक कौमुदी महोत्सव का विवरण हमें मुद्राराक्षस में भी प्राप्त होता है[2]।

शारदीय नवरात्र में अष्टमी के दिन महाराष्ट्रों में चावल के आटे की लक्ष्मी बनाकर पूजन होता है तथा उनके समक्ष नृत्य भी होता है। आज जो लक्ष्मी की मूर्ति दिवाली के पूजन के हेतु बनती है उसका रूप विष्णु-धर्मोत्तर पुराण में वर्णित रूप से भिन्न रहता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार जब विष्णु के साथ लक्ष्मी की मूर्ति बनायी जाय तो लक्ष्मी को दो भुजावाली बनाना चाहिये। जब पृथक् बनायी जाय तो उन्हें चतुर्भुजी बनाना चाहिये। उनका रूप सुन्दर बनाना चाहिये तथा उनको सब आभूषणों से सजाना चाहिये। इनकी चतुर्भुज मूर्ति को कमलासन पर स्थित करना चाहिए। यह कमल अष्टदल का होना चाहिये। नीचे के दक्षिण कर में केयूर तक जिस कमल की डण्डी हो ऐसा कमल, नीचे के वाम कर में अमृत घट, ऊपर के दो करों में एक में श्रीफल (बिल्वफल) तथा दूसरे में शंख होना चाहिये; दोनों ओर दो हाथी बनाये जायें जो घट पर स्थित अपनी सूड़ों से घट लिये हुए देवी को स्नान कराते रहें। आज लक्ष्मी की मूर्तियाँ चार प्रकार की बनती हैं, एक तो विष्णु के साथ जिसमें लक्ष्मी विष्णु का चरण चापती हुई दिखाई जाती हैं, या विष्णु के साथ खड़ी बनाई जाती हैं; दूसरी में कमल के आसन पर बैठी हुई, जिसकी चार भुजाएँ रहती हैं, ऊपर के दो हाथों में पद्म तथा नीचेवाले दो कर एक वरद मुद्रा में तथा दूसरा जंघे पर स्थित, चौथी वह जिसमें इन्हें गज-स्नान कराते दिखाये जाते हैं। ये मूर्तियाँ प्रायः सफेद रंग से रँगी रहती हैं। ग्रीवा तक बनी हुई लक्ष्मी की मूर्तियों में एक सेन्धुरिया रंग से और एक सफेद रंग से रंगी रहती है। ये सब मूर्तियाँ आभूषणों से सुसज्जित रहती हैं। मस्तक पर मुकुट, वक्षस्थल पर हार, कानों में कुण्डल, बाहुओं में केयूर, मणिबन्ध पर चूड़ी, कंगन इत्यादि, कटि प्रदेश में करधनी तथा नाक में नथ[3] रहती है। इनके सिंहासन का कमल अष्टदल का बनाया जाता है तथा ये पद्मासन में बैठी हुई बनाई जाती हैं। इनके चिन्ह आज स्वस्तिक, लाल कमल, शंख तथा पूर्ण घट माने जाते हैं. तथा इनका वाहन उल्लू माना जाता है। इनका पूजन स्वस्तिक बनाकर उस पर मूर्ति रखकर किया जाता है तथा यही स्वस्तिक वणिक वर्ग अपनी बहियों पर दिवाली के दिन नया खाता करते समय बनाते हैं तथा इसे लक्ष्मी का प्रतीक मानते हैं। लाल कमल इनके हाथ में रहता है तथा इन पर चढ़ाया भी जाता है। शंख को लक्ष्मी का प्रतीक मान कर उसका पूजन करते हैं तथा उसको बजाते हैं। पूर्ण घट, जिस पर स्वस्तिक बना रहता है, घर के द्वार पर भी दिवाली के दिन रखा जाता है। यही स्वस्तिक हमें प्राचीन भारत में सिन्धु घाटी की सभ्यता में मिलता है और सुदूर पश्चिम में मैक्सिको की माया सभ्यता में भी प्राप्त होता है[4]। उत्तर भारत में प्रायः व्यापारी-वर्ग दिवाली को लक्ष्मी-पूजन करके अपना नया वर्ष प्रारम्भ करते हैं तथा अपनी बहियों, काँटें-बटखरे, लेखनी तथा मसीपात्र का पूजन करते हैं, जौहरी लक्ष्मी-पूजन करके अपने रत्नों का और काँटें-बटखरों का पूजन करते हैं तथा कायस्थ लोग दिवाली के तीसरे दिन द्वितीया को दावात-कलम की पूजा करते हैं। यह सब धन प्राप्ति के हेतु किया जाता है।

---

१. जे०, गोण्डा--'एस्पेक्ट्स ऑफ विष्णुइज़म'--पृ० २२४; पंडित गोपाल शास्त्री नेने, प्रति वार्षिक पूजा कथा संग्रह, काशी १९३३, द्वितीय भाग--पृ० ४१।

२. विशाखदत्त--मुद्राराक्षस--३; अंक ३, ४, ५।

३. नथ--बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी के पूर्व मूर्तियों पर दृष्टिगोचर नहीं होती।

४. लुई--मारडन--'अप फ्राम दी वेल आफ टाइम'--दी नेशनल ज्योग्राफिकल मैगजीन--जनवरी १९५९--पृष्ठ ११९; का चित्र।

लक्ष्मी की इस आधुनिक मूर्ति का प्राचीनतम स्वरूप क्या था तथा इन महादेवी का पूजन भारत में कब से तथा किस प्रकार प्रारम्भ हुआ, किन-किन रूपों में इनकी अर्चना हुई, इन विषयों की जिज्ञासा होना स्वाभाविक है। ऐतिहासिक दृष्टि तो प्रमाण खोजती है, केवल विश्वास पर किसी बात को मानने के लिए उद्यत नहीं होती। किसी विश्वास का आधार क्या है, इसी पर सर्वप्रथम विचार केन्द्रित करती है।

प्रायः सन् १९२१ के पूर्व पाश्चात्य विद्वान यही मानते थे कि भारत में मूर्ति का आगमन यूनान से हुआ, इन्हें यह विश्वास नहीं होता था कि भारत में मूर्ति-कला का स्वतन्त्र रूप से विकास हुआ। ऋग्वेद में भी इन्हें प्रतिमा शब्द केवल एक स्थान पर मिला (१०, १३०, ३) और वहाँ भी यही कि 'प्रतिमा का आसीत्'। इस कारण इन्होंने यह सिद्ध किया कि सबसे प्राचीन भारतीय बुद्ध मूर्तियाँ अपोलो के ढाँचे पर बनायी गयीं। परन्तु अब सिन्धु सभ्यता की मूर्तियों के प्राप्त होने के पश्चात् सभी यह मानने लगे हैं कि भारत में मूर्तियाँ ईसा से २५०० वर्ष पूर्व भी बनती थीं। उस समय की प्राप्त पत्थर, काँसे तथा पक्की मिट्टी की[1] मूर्तियाँ आज भारत के राष्ट्रीय संग्रहालय की शोभा बढ़ा रही हैं। परन्तु इनमें हमारे आज के हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ नहीं दिखाई देती हैं चाहे हमें यहाँ कमल और स्वस्तिक दोनों चिह्न मुहरों की छाप पर अंकित मिलते हों[2] तथा एक देवी और देवता भी दिखाई देते हों।

कुमारस्वामी ने लक्ष्मी की मूर्तियों को तीन भागों में विभाजित किया है[3]। पद्मस्थिता (कमल पर बैठी हुई), पद्मग्रहा (कमल हाथ में लिये हुए), पद्मवासा (कमल से घिरी हुई)। गज लक्ष्मी की मूर्ति को उन्होंने अलग स्थान दिया है, परन्तु लक्ष्मी की जितनी भी मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं उनमें कमल का प्राधान्य है। यह एक चिह्न सभी मूर्तियों में प्राप्त होता है। यदि हम इस चिह्न के साथ किसी देवी की मूर्ति की खोज मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, चान्हुदाड़ों या रोपड़ में करें तो कदाचित् किसी तथ्य पर पहुँच सकें। लक्ष्मी के स्वरूप को जगन्माता अनाहिता के स्वरूप से जोड़ना कुछ उचित प्रतीत नहीं होता[4], न मोहनजोदड़ो से प्राप्त योगी के स्वरूप से[5], क्योंकि इनमें कमल का मूर्ति से कहीं कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई देता। यह तो प्रायः अब विद्वान् मानने लग गये हैं कि भारत के प्राचीन नगर मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, अमरी, नाल, कुल्ली, चान्हुदाड़ो से पश्चिम के ग्यान, किश, उर इत्यादि नगरियों से वाणिज्य सम्बन्ध था[6], तो उस काल के भारत में एक वणिक समाज का होना अनिवार्य-सा है। इनके अपने कोई देवी-देवता, जो धन को प्रदान करनेवाले हों, होने चाहिये।

---

१. मारटीनर ह्वीलर—दी इण्डस सिवलिजेशन, पृष्ठ ७६।

२. माधोस्वरूप वत्स—ऐक्सकवेशन्स एट हरप्पा—ख० २, फलक ९५, सं० ३५२, ३९५, ३९६, ३९७, ३९८ इत्यादि (स्वस्तिक) फलक ९५ सं० ४१३ कमल के हेतु।

३. कुमार स्वामी—'अर्ली इंडियन आइकोनोग्राफी; श्री लक्ष्मी—ईस्टर्न आर्ट', खण्ड १, जनवरी १९२९, पृष्ठ १७५।

४. जे० एन० बैनर्जी—दी डेवलपमेण्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ० १८३ तथा आगे। 'अनाहिता' का स्वरूप लक्ष्मी से भिन्न है।

५. मोतीचन्द्र—"पद्मश्री नेहरू अभिनन्दन ग्रंथ (१९४८)" पृष्ठ ४९८।

६. गोविन्दचन्द्र—पारयूर ये वोज़ डाँ लाण्द प्रौतो हिस्तारिक। थेज आ यूनिवर्सिटी ड् पारी (१९५५)। पृष्ठ २४४।

इस विषय में कुछ निश्चित रूप से कहना कठिन है, क्योंकि अभी तक यहाँ की लिपि पढ़ी नहीं गयी है[1], परन्तु फिर भी यहाँ से प्राप्त कुछ मोहरों पर की आकृतियाँ[2] इस अनुमान को पुष्ट करती हैं कि सिन्धु घाटी के वणिक-वर्ग की कोई देवी ऐसी थी जिन्होंने लक्ष्मी का रूप कालान्तर में ग्रहण किया।

वैदिक युग के प्रारम्भिक काल में तो लक्ष्मी की मूर्ति की कोई कल्पना नहीं प्राप्त होती। 'श्री' तथा 'लक्ष्मी' शब्द ऋग्वेद में आते हैं[3], परन्तु इनसे किसी विशेष रूप का बोध नहीं होता। माता अदिति[4] से लक्ष्मी का सम्बन्ध कहाँ तक जोड़ा जा सकता है, यह विचार का विषय है। यों अदिति से लक्ष्मी का सम्बन्ध कुछ बैठता नहीं क्योंकि ये दोनों शब्द अलग-अलग ऋग्वेद में प्राप्त हैं तथा इन दोनों को एक साथ जोड़ा नहीं गया है। डाक्टर कुमार स्वामी ने यह लिखा है कि हिन्दू वैदिक देवी अदिति तथा बाबुल की इश्तर में बहुत कुछ साम्य है। इसी प्रकार श्री लक्ष्मी से अदिति का भी सम्बन्ध ज्ञात होता है[5]। वैदिक देवी अदिति यजुर्वेद में विष्णु-पत्नी के रूप में हमें मिलती हैं[6] और ऋग्वेद में वे जगन्माता, सर्वप्रदाता, प्रकृति की अधिष्ठात्री देवी के रूप में[7]। अदिति का इस प्रकार एक रूप श्री लक्ष्मी से मिलता है। जब अदिति के विविध गुण अलग-अलग देवियों में विभाजित करके पूजे जाने लगे तो एक रूप श्री लक्ष्मी का भी इन्हीं अदिति से बना, ऐसा कुमार-स्वामी का मत है। परन्तु यह बात कुछ जमती नहीं।

यजुर्वेद में श्री तथा लक्ष्मी दो देवियों के रूप में हमें मिलती हैं 'श्रीश्चते लक्ष्मी सपत्न्या' तथा इनको विष्णु की दो पत्नियाँ माना है[8]। यजुर्वेद में श्री भूति, वृद्धि, सौभाग्य इत्यादि[9] की द्योतक हैं। ब्राह्मणों में जिन देवताओं को श्री है वे अमर कहे गये हैं[10]। इससे ऐसा बोध होता है कि श्री का अर्थ इस युग में तेज था जैसा हम आगे देखेंगे। कौशीतकी ब्राह्मण में श्री वह आसन है जिस पर ब्रह्मा स्थित हैं[11]। श्री में चेतनधर्म का आरोपण सबसे प्रथम शतपथ ब्राह्मण में होता है जब प्रजापति अपने तप के द्वारा अपनी श्री को प्रकट करते-हैं[12] तथा यह एक स्त्री के रूप में उनके समक्ष खड़ी होती है।

---

१. ह्वीलर--'दी इण्डस सिविलिज़ेशन', पृष्ठ ८१।
२. मांके--'फरदर एक्सकवेशन एट मोहनजुदाड़ो' फलक--८२, सं० १, २; फलक ९९—सं० ए; वत्स--'एक्सकवेशन एट हरप्पा'--फलक ९३, सं० ३१८।
३. ऋग्वेद--(श्री) १, १६६, १०;१, १७९, १;१, १८८, ६; २, १, १२; ४, १०, ५; ४, २३, ६;५, ४४, २ इत्यादि (लक्ष्मी) १०, ७१, २।
४. ऋग्वेद--१, ८९, १०।
५. डा० कुमारस्वामी--आरकेइक टेराकोटाज़ ७२-७३ (आपेक-लेपजिग १९२८); अर्ली इंडियन आइकोनोग्राफी--श्रीलक्ष्मी--ईस्टर्न आर्ट, ख० १, पृ० १७५-१७६।
६. तैत्तिरीय संहिता—७, ५, १४, वाजपेयी--२९-६०।
७. ऋग्वेद--१, ८९, १०।
८. वाजसनेयी--३१, २२।
९. अथर्ववेद--१२, १, ६३; १०, ६, २६; ९, ५, ३१; ११, १, १२; ११, १, २१।
१०. शतपथ ब्राह्मण--२, १, ४, ९।
११. कौशीतकी ब्राह्मण--१, ५।
१२. शतपथ ब्राह्मण--११—४, ३, १।

श्रीसूक्त में श्री तथा लक्ष्मी एक ही देवी हो जाती हैं। सुवर्ण तथा रजत की (श्रीसूक्त१) माला पहने हुए अथवा जिस माला का एक दाना सुवर्ण का है और एक चाँदी का—जैसा ज्यूतिया की माला में गुँथा रहता है, हिरण्य वर्णवाली, पद्म पर स्थित, पद्मवर्णवाली जिसका सम्बन्ध बिल्वफल (श्रीसूक्त ६) और कमल से है, ऐसी देवी हमारे समक्ष आती हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् में ये वस्त्र, भोजन, पेय, धन आदि की प्रदात्री के रूप में हमें मिलती हैं[१]। ऐतरेय ब्राह्मण में श्री की कामना करनेवाले के हेतु बिल्व के पेड़ का यूप शाखा सहित बनाने का आदेश मिलता है[२]। बिल्व को श्रीफल भी कहा है[३]। रामायण में श्री कुबेर के साथ संबंधित मिलती है जो सांसारिक सौख्य के प्रदाता तथा धन के देवता हैं[४]। रामायण में पुष्पक प्रासाद पर लक्ष्मी कर में कमल लिये हुए स्थित हैं, ऐसा वर्णन मिलता है[५]। महाभारत में लक्ष्मी भद्रा नाम की सोम की पुत्री के साथ, कुबेर की स्त्री के स्वरूप में उपस्थित होती हैं[६]। यहाँ इनकी उत्पत्ति समुद्र मंथन से ग्रीक देवता, अफ्रोडाइट की भाँति मिलती है तथा इनका मांगलिक चिह्न मकर मिलता है[७]। बौद्ध ग्रंथों में लक्ष्मी के प्रति बौद्धों ने श्रद्धा का भाव नहीं दरसाया है। इनके सम्प्रदाय का नाम केवल मिलिन्द पन्ह (प्रश्न) में मिलता है (१९१)। दीघ्घनिकाय के ब्रह्मजाल सूत्र में इनकी उपासना वर्जित की गयी है[८]। जातक नम्बर ५३५ में यह पूर्व में स्थित मानी गयी हैं जैसे असा दक्षिण में, सद्धा पश्चिम में, हिरी उत्तर में। श्री को लख्खनी जातक संख्या ३९२ में धत्तरथ की (जो पूर्व के दिग्पाल हैं) पुत्री माना है। यहाँ वे कहती हैं, "मैं मनुष्य को सांसारिक वैभव की प्रदात्री हूँ। मैं सौन्दर्य हूँ (श्री), मैं लख्खी हूँ, मैं भूरिपत्र हूँ।" धम्मपद अट्ठकथा में (११, १७) लक्ष्मी को रज्ज सिरी दायक देवता बताया है अर्थात् वे राजा को राज्य दिलानेवाली देवता हैं।

जैन पज्यूषणा (पर्यूषण) कल्प (३६) में त्रिसला के १४ स्वप्नों में जो महावीर के आगमन के द्योतक थे, श्री के अभिषेक का भी एक विवरण मिलता है। भगवती सूत्र में भी यही कथा मिलती है। इस स्वप्न में श्री को कमल पर स्थित हिमालय के गर्भ में हाथियों द्वारा अभिषिक्त होती हुई त्रिसला ने देखा था।

कालिदास के रघुवंश में[९] लक्ष्मी पद्महस्ता राजलक्ष्मी के स्वरूप में उपस्थित होती हैं। कालिदास ने अपनी स्वरूपवती नायिकाओं की उपमा लक्ष्मी से दी है[१०]। अग्निपुराण में लक्ष्मी को प्रकृति तथा नारायण को पुरुष माना है। विष्णुपुराण में श्री विष्णु की पत्नी तथा समुद्र मंथन से उत्पन्न मानी गयी हैं[११]। इनको

---

१. तैत्तिरीय उपनिषद्--१।
२. ऐतरेय ब्राह्मण--२, १, ६ तथा आगे।
३. गोंडा, जे०--'एस्पेक्ट्स आफ विष्णुइज्म (१९५४)', पृ० १९७। मनुस्मृति--५, १२०।
४. रामायण--७, ७६, ३१।
५. रामायण वाल्मीकि--५, ७, १४। पुष्पक कुबेर का विमान था जो रावण कुबेर से जीत कर लंका ले आया था।
६. गोंडा--उपर्युक्त; पृष्ठ १९५।
७. महाभारत--१३, ११, ३।
८. दीघ्घनिकाय--१, ११।
९. रघुवंश--४-५।
१०. मालविकाग्निमित्र--५-३०।
११. विष्ण महापुराण--१, ८, १५, १६। १४। १५

कमलालया कहा गया है[१]। भक्तमाल में भी लक्ष्मी को कमला तथा विष्णु की शक्ति कहा गया है[२]।

ऐसा ज्ञात होता है कि वेदों में 'श्री' तथा 'लक्ष्मी' अमूर्त ऐश्वर्य के द्योतक शब्द थे। बाद में एक स्थूल रूपबोधक हो गये तथा जनता द्वारा पूजित एक विशेष देवी से इनका सम्बन्ध जोड़ दिया गया। व्युत्पत्ति की दृष्टि से देखा जाय तो ग्रीक भाषा में 'श्री' के स्थान पर जो शब्द प्राप्त होता है, उसका अर्थ है—अधिकारी, शासक, राजा इत्यादि[३]। हिन्देशिया के उत्तरी सेलेवस में बोली जानेवाली टोन-टेम वोग्रान में 'सिय' शब्द धनवान् तथा सुन्दर दोनों का द्योतक है। कदाचित् यह शब्द श्री से निकला हो[४]। 'लक्ष्मी' शब्द लक्ष्म से बना है, जिसका अर्थ है चिह्न, ऐसा मोनियर विलियम्स का मत है[५]। वह कौन-सा चिह्न था जिससे लक्ष्मी का सम्बन्ध था, निश्चित रूप से तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु ऐसा अनुमान होता है कि स्वस्तिक, जो आज भी लक्ष्मी-पूजन में हम व्यवहार करते हैं उसका सम्बन्ध लक्ष्मी से हो। श्री अक्षर स्वस्तिक से ही बना हुआ ज्ञात होता है। श्री शब्द से बहुत से शब्द बने, जैसे - ब्रह्मश्री, राजश्री, मुखश्री, रणश्री (वीरश्री), गृहश्री इत्यादि। लक्ष्मी से राजलक्ष्मी, गृहलक्ष्मी, रणलक्ष्मी, लक्ष्मीवान् और बँगला का 'लख्खीवार' इत्यादि।

अनुमान होता है कि ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के पहिले लक्ष्मी का मूर्त स्वरूप निर्धारित हो चुका था; क्योंकि हम इन्हें भारहुत के कठघरों के खम्भों पर अपने विकसित रूपों में देखते हैं। यहाँ हमें लक्ष्मी के दो स्वरूप मिलते हैं। एक बैठा हुआ[६] तथा दूसरा खड़ा[७]। बैठी हुई मूर्ति योगासन में दोनों हाथ जोड़े हुए कमल के फूल पर स्थित हैं। खड़ी मूर्तियाँ कमल का फूल एक हाथ में लिये हुए हैं तथा दूसरा हाथ वरद मुद्रा में नीचे की ओर लटका हुआ है। इन दोनों प्रकार के फलकों में गज उनको स्नान करा रहे हैं। इस प्रकार उस युग में इनका गज तथा कमल से सम्बन्ध स्थापित हो चुका था तथा इनकी मूर्ति की पूर्ण कल्पना भी हो चुकी थी। फूशे का मत है कि यह गजलक्ष्मी की मूर्ति बुद्ध की माता माया की द्योतक है तथा हिन्दू देवी लक्ष्मी का आधुनिक रूप इसी से लिया गया है[८]; परन्तु यदि ऐसी बात होती तो अश्वघोष ने सौन्दरानन्द में सुन्दरी की पद्म धारण किये हुए लक्ष्मी की मूर्ति से उपमा देते हुए यह न कहा होता कि 'पद्मानना पद्मदलायताक्षी पद्मा विपद्मा पतितेव लक्ष्मीः' इत्यादि तथा रामायण में गजलक्ष्मी का पुष्पक विमान-प्रासाद पर खचित होना न वर्णन किया गया होता। यदि यह माया का स्वरूप माना जाय तो दो हाथियों की इन देवी को स्नान कराने के हेतु दिखाने की आवश्यकता क्यों हुई, एक ही हाथी से काम चल सकता था। गर्भ के स्वप्न में तो माया को एक हाथी दिखाई देता है, जैसा साँची के कई फलकों पर हम देखते हैं। यहाँ हाथियों का झुण्ड और उससे अलग होकर एक हाथी को माया देवी की ओर आते हुए तो नहीं दिखाया गया है।

---

१. विष्णु—१, ८, २३।
२. ग्रियर्सन, सर, जी०—जे, आर, ए, एस १९१०—पृष्ठ २७०।
३. वोआजाक, इ—डिक्सियोनेर एटिमोलोजिक डुला लांग ग्रेक, (पारी १९२३) पृष्ठ ५१३
४. गोंडा—पूर्वांकित—पृष्ठ १९१।
५. मोनियर विलियम्स—संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी, पृष्ठ ८७२।
६. कलकत्ता इण्डियन म्यूजियम—भारहुत खम्भा ११० के पास।
७. कलकत्ता इण्डियन म्यूजियम—भारहुत खम्भा २१० तथा १७७ के पास।
८. फूशे—"ऑन दी आइकोनोग्राफी दी बुद्धाज नोटिविटी"—अर्केआलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया मेमायर्स ४६ (१९३६), पृष्ठ २।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि श्री तथा लक्ष्मी का सम्मिश्रण श्रीसूक्त के समय तक हो चुका था तथा इस देवी का मूर्त रूप किसी जनता की देवी से रामायण काल के पूर्व ही सम्बन्धित हो गया था। उन जनता की देवी के चिह्नों में पद्म, गज, जल इत्यादि थे तथा वे सौन्दर्य और धन की अधिष्ठात्री देवी थीं।

भारत में यक्ष और नाग-पूजा प्राचीन समय से होती चली आयी है तथा जैसा फरगूसन ने लिखा है कि यहाँ के आदिवासियों का विश्वास था कि इनके पूजन से ही पानी बरसता है तथा अन्न उत्पन्न होता है[1]। ये विचार वैदिक नहीं हैं, जैसा डुला वाले पूस्साँ ने लिखा है[2]। इन विचारों के माननेवालों की एक पूर्ण विकसित सम्यता थी, जैसा सिन्धुघाटी की खोदाई से पता चला है[3]। आर्य इन्हें शिश्न (लिंग) के पूजक मानते थे तथा इन्हें अपनी आहुताग्नि के पास भी नहीं फटकने देते थे। कालान्तर में कदाचित् इनके सम्पर्क में आने पर तथा इनसे वैवाहिक सम्बन्ध जुड़ जाने पर इनके देवता भी आर्य धर्म में ले लिये गये, परन्तु रहे वे निम्न श्रेणी में, जैसा व्यवहार महादेव[4] अथवा कुबेर के साथ बहुत दिन तक होता रहा। शतपथ ब्राह्मण में यक्षराज कुबेर राक्षसों की गिनती में हैं[5], परन्तु जैमिनीय ब्राह्मण में यक्ष एक आश्चर्यजनक जीव के रूप में हमारे समक्ष आते हैं[6]। बौद्ध साहित्य में वैश्रवण कुबेर चार दिक्पालों में एक गिनाये गये हैं[7]। शांखायन गृह्य सूत्र में (४, ६), आश्वलायन गृह्य सूत्र में (३, ४) तथा पाराशर गृह्य सूत्र में (२, १२) हमें यक्षों की स्तुति भी मिलने लगती है। पीछे चलकर कुबेर देवताओं के रोकड़िया बना दिये जाते हैं तथा इन्द्र के साथ आठों दिक्पालों में उत्तर के अधिष्ठाता बना दिये जाते हैं। महाभारत में एक यक्षिणी के मन्दिर की चर्चा राजगृह में मिलती है (३, ८३, २३)। क्या ऐसा सम्भव है कि इन्हीं यक्षिणियों में एक लक्ष्मी भी हों, जो बाद में एक अलग देवी बन गयी हों? हमें भारहुत में श्री माँ देवता मिलती हैं। श्री से लक्ष्मी का सम्बन्ध हो ही गया था, इस प्रकार यह अनुमान करना कि लक्ष्मी भी किसी यक्षिणी के रूप में आदिवासियों से पूजी जाती थीं, कुछ अनुचित न होगा। श्रीसूक्त में श्रीमदेवी को लक्ष्मी कहा गया है (श्रीसूक्त २) तथा मणिभद्र यक्ष का भी सम्बन्ध इनसे यहाँ मिलता है (श्रीसू.त ६), इससे भी इस धारणा की पुष्टि होती है।

भारतीय सम्यता का दूसरे देशों में जो प्रसार हुआ उसके फलस्वरूप उन देशों में लक्ष्मी का जो स्वरूप मिलता है तथा जो आख्यायिकाएँ उनके सम्बन्ध में उनके विषय में मिलती हैं, उनसे ऐसा पता चलता है कि बाली द्वीप में लोगों का विश्वास है कि हिन्देशिया के राजाओं की लक्ष्मी उनकी रानी के रूप में रहती थीं, परन्तु लक्ष्मी का जब विष्णु से प्रेम हो गया तो उस प्रेम के फलस्वरूप उनकी मृत्यु हो गयी। उनको पृथ्वी में गाड़ने के पश्चात् उस स्थान पर कई प्रकार के पौधे जम गये। धान का पौधा उनकी नाभि से उत्पन्न हुआ। इस

---

१. फरगूसन--"ट्री एण्ड सरपेण्ट वरशिप"--पृष्ठ २४४।

२. डु ला वाले पूस्सां--"आण्डो योरोपियां ये आण्डो इरनियां"--लाण्ड जुस्क वेर त्रा सा अवां जांज क्री (पारी १९२४), पृष्ठ ३०४, ३१५, ३१६, ३२०, इत्यादि।

३. कुमारस्वामी--यक्षाज--खण्ड १, पृष्ठ ३।

४. वायु पुराण--८८, २७।

५. कुमारस्वामी--यक्षाज--ख० १, पृष्ठ ४।

६. जैमिनीय ब्राह्मण--३, २०३, २७२।

७. फूशे-- ल ईक्नोग्राफी बुद्धिक डु लाद--खण्ड १, पृष्ठ १२३।

कारण वह सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है[1]। सूडान में लक्ष्मी को धान उत्पन्न करनेवाली देवी मानते हैं। वे स्वर्ग से इस पृथ्वी पर प्रतिवर्ष आती हैं। वे देवी हैं तथा विद्याधरों से उनका सम्बन्ध है। पानी तथा लक्ष्मी का योग है, इस कारण पृथ्वी पर उनका प्रभाव है, जैसे गन्धर्वों तथा यक्षों का[2]।

जावा में प्राचीन सुवर्ण आभूषणों पर 'श्री' शब्द खुदा रहता है। इसके आकार को देखकर ऐसा भान होता है जैसे कुंभ अथवा शंख हो[3]। इससे ऐसा ज्ञात होता है कि वहाँ के निवासी लक्ष्मी के विषय में और बातें तो भूल गये परन्तु उनको सुवर्ण के देवता के रूप में केवल स्मरण करते रहे। प्रायः ऐसा होता है कि काल के प्रभाव से बहुत से देवताओं की पूजा लोप हो जाती है, परन्तु उसका कुछ अंश लोकाचार के रूप में रह जाता है। जिस प्रकार आज भी भारत में आश्विन की पूर्णिमा को अनेक घरों में श्वेत वस्तु चन्द्रमा के समक्ष रखी जाती है तथा इन्द्र और लक्ष्मी को भोग लगायी जाती है, परन्तु इसके पीछे का इतिहास हम बिलकुल भूल गये हैं। हम यह नहीं जानते कि यह कौमुदी महोत्सव[4] या कौमुदी-मह का प्रत्यक्ष रूप है। डच गायना में जो भारतवासी हिन्दू हैं उनके अब भी कुछ-कुछ रीति-रिवाज वैसे ही हैं जैसे हम लोगों के। वे भी दिवाली की रात्रि में दरिद्रा देवी को सूप बजाकर घर से निकालते हैं[5]। विदेशों में भी जो लक्ष्मी का स्वरूप गया है उसको भी देखने से इसी बात की पुष्टि होती है कि पहिले ये कोई यक्षिणी थीं और कदाचित् इनका नाम मदिरा देवी था, जिनका कौटिल्य के अर्थशास्त्र में हमें आदि-स्वरूप में दर्शन होता है। वैदिक युग के अन्त में इनका सम्बन्ध वैदिक शब्द 'श्री तथा 'लक्ष्मी' से जोड़ दिया गया तथा इस प्रकार ये पुरुष की और बाद में विष्णु की पत्नी हो गयीं। ये शब्द वैदिक काल में केवल विभूतियों के द्योतक थे, किसी विशेष देवी के रूप से इनका कोई सम्बन्ध न था।

उत्तर वैदिक काल में इनकी समुद्र से उत्पत्ति की कथा भी जुड़ गयी, जो किसी प्राचीन आदिवासियों की गाथा पर आधारित ज्ञात होती है; क्योंकि ऐसा अनुमान है कि प्रागैतिहासिक काल में ओरंगी[6], लोथल[7] और भागत्राव[8] बन्दरगाह थे, यह प्रमाणित हो चुका है। सिन्धु घाटी में समुद्र से धन तथा सुवर्ण व्यापारी लाते थे, इस कारण यह मान लेना स्वाभाविक था कि लक्ष्मी समुद्र से आती थी और समुद्र से ही उसका जन्म हुआ। वृहत कथा श्लोक-संग्रह में हमें सुन्दर यक्षिणी की मूर्ति पूजन के हेतु मिलती है (१६-७४, ७६), मत्स्य-पुराण में हमें लक्ष्मी की मूर्ति के साथ ही यक्षिणी की मूर्ति भी प्राप्त होती है (२६१-४७-५२), जिससे ऐसा अनुमान होता है कि मत्स्य पुराण के काल तक यक्षिणी की पूजा लक्ष्मी से अलग होने लगी, परन्तु इन दोनों की

---

१. जे० गोण्डा--"एस्पेक्टस आफ विष्णुइज्म" पृ० २२० तथा सिलवां लेबी--"श्रीस्तव फ्राम बाली संस्कृत टेकस्ट्स फ्राम बाली," (बड़ौदा १६३३), पृष्ठ २८।
२. जे० गोण्डा--एस्पेक्ट्स आफ विष्णुइज्म--पृष्ठ २२१।
३. जे० गोण्डा--वही; पृष्ठ ३२२।
४. वी० ए० गुप्त--"हिन्दू हालीडेज एण्ड सेरिमोनियल्स," (कैलकटा १११), पृ० ३६।
५. जे० गोण्डा--एस्पेक्ट्स, पृष्ठ २२४।
६. गोविन्दचन्द्र--"पारयूर ये वीज डां लांड प्रतोहिस्तारिक"--थीसिस--(पारी : १६५५) पृष्ठ २६८।
७. दी लीडर--अप्रैल १४, १६५५, पृष्ठ ३।
८. इण्डियन आर्केआलाजी--१६५७--५८, पृष्ठ १५।

प्राचीन एकता को लोग भूले नहीं । वात्सायन के कामसूत्र के समय तक कदाचित् यक्ष-रात्रि में जो कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को मनाई जाती थी, यक्षिणी के रूप में लक्ष्मी की पूजा होती थी[१] ।

इस प्रकार ये तथ्य हमें इसी धारणा की ओर अग्रसर करते हैं कि लक्ष्मी अनार्यों की देवी थीं, जो कालान्तर में हमारे धर्म में आ गयीं और आर्यों को इन्हें अनार्यों के सम्पर्क से अपनाना पड़ा । कभी इनको वरुण की स्त्री माना, कभी इन्द्र की, कभी कुबेर की और अन्त में आकर विष्णु की पत्नी—जिस रूप में आज इनकी पूजा होती है ।

१. सुभाष जे० रेले—"दिवाली थ्रू दी एजेज़"—दी लीडर, इलहाबाद, अक्टूबर २०, १९६०, पृष्ठ १, कालम ७ ।

: २ :

सिंधु घाटी की सभ्यता में देवी लक्ष्मी की मूर्तियाँ

आज से प्रायः ५००० वर्ष पूर्व के भारतीय नगरों के अवशेष सिन्धु घाटी, गुजरात, पंजाब इत्यादि स्थानों पर प्राप्त होने के कारण अब पश्चिम के इतिहास-विशेषज्ञ भी यह मानने को बाध्य हो गये हैं कि सिन्धु-घाटी की मूर्तियाँ ही भारतवासियों की सबसे प्राचीन मूर्तियाँ हैं तथा भारतीय मूर्तिकला का जन्म भारत में ही हुआ, भारत ने यूनान से मूर्ति निर्माण करना नहीं सीखा। इन प्राग्-ऐतिहासिक मूर्तियों में कौन-सी मूर्तियाँ मनुष्य की हैं तथा कौन-सी देवी-देवताओं की हैं, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। फिर भी यह अनुमान करना कि जिन मूर्तियों के समक्ष कोई हाथ जोड़कर बैठा है वह देवी की मूर्ति है, कुछ अनुचित न होगा। यों तो एक मोहर जिस पर एक मनुष्य योग-आसन में बैठा हुआ खुदा है, उसे पशुपतिनाथ अथवा शिव की मुहर कहा गया है[1] तथा यहाँ से प्राप्त लिंग के रूप के पत्थर तथा गोल कटे हुए पत्थरों से यह अनुमान लगाया गया है कि यहाँ शिव-पूजन हुआ करता था[2]। जब यहाँ की लिपि की कोई ऐसी कुंजी हाथ लगे जिसके द्वारा यह पूर्ण रूप से पढ़ी जा सके तभी इस विषय पर कुछ निश्चित रूप से कहा जा सकता है। अभी तक इस ओर जितने भी प्रयास हुए हैं, उनमें कोई सर्वमान्य नहीं है। यह गुत्थी रोजेटा स्टोन की भाँति के दो-या-तीन लिपि में लिखे हुए लेख के प्राप्त होने पर ही सुलझ सकती है।

यों तो यहाँ से प्राप्त काँसे की नग्न स्त्रियों की मूर्तियों को[3] भी लक्ष्मी की प्रतिमा माना जा सकता है क्योंकि इनके दक्षिण कर में एक पात्र है, जिसे धन-पात्र अनुमान किया जा सकता है और इनके गले के हार की दो कलियों को कमल की कलियाँ माना जा सकता है और इन्हीं दोनों वस्तुओं से लक्ष्मी का अटूट सम्बन्ध है। मूर्तिकला की दृष्टि से इस अनुमान को औरों की अपेक्षा काटना कठिन है। जैसा पहिले लिखा जा चुका है लक्ष्मी का अभिन्न सम्बन्ध पद्म, जल तथा गज से है। गज, मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा की मोहरों पर मिलते हैं (आकृति ग, घ, च, छ)। परन्तु अभी तक हाथीदाँत की बनी हुई वस्तुएँ यहाँ से बहुत कम संख्या में प्राप्त हुई हैं। इस कमी के विषय में मार्शल की यह सम्मति है कि गज यहाँ पूजनीय पशु समझे जाते थे[4], इस कारण यहाँ हाथीदाँत की चीजें अधिक मात्रा में नहीं प्राप्त होतीं।

प्राचीन समय में गज वरुण का वाहन माना जाता था[5]। इन्द्र से गज का सम्बन्ध ऐरावत के रूप में पीछे से चल कर जुड़ा हुआ प्रतीत होता है (ऋग्वेद में इन्द्र को घोड़े पर सवार वर्णन किया गया है। ऋग्वेद १।१४०।६) ये दोनों ही देवता जल से सम्बन्धित थे। एक स्थल के जल से और दूसरे मेघ के जल से, इस

१. ई. जे. एच. मांके--फरदर एक्सकेवेशन एट मोहनजोदड़ो (दिल्ली १९३७)--प्लेट ८७, मोहर-नं० २२२।

२. जान मार्शल--मोहनजोदड़ो ऐण्ड दी इन्डस सिविलिजेशन, ख० १, पृष्ठ ६२, ६३ तथा जे. एन. बैनर्जी--डेवलपमेण्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृष्ठ १८३ तथा आगे।

३. मांके--फरदर एक्सकेवेशन--प्लेट ७३, सं० ९. १०, ११, मार्शल--मोहनजोदड़ो ९४, सं० ६।

४. मार्शल--मोहनजोदड़ो, इत्यादि; पृष्ठ ५६३।

५. मोनेश्वर दीक्षित--"नोट्स आन सम इण्डियन आम्युलेट्स", बुलिटन प्रिंस आफ वेल्स म्युजियम आफ वेस्टर्न इण्डिया, पृष्ठ ८७।

कारण जल से गज का सम्बन्ध अनुमान करना कुछ अनुचित नहीं है तथा इसका आदिवासियों में पूजन होना भी कुछ असम्भव नहीं है ।

हाथी की आकृति बनी हुई मोहरें जो हरप्पा[1] तथा मोहनजोदड़ो[2] से प्राप्त हुई हैं (आकृति ग, घ, च, छ) उनको देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हाथियों को इन मोहरों के बनानेवाले कारीगरों ने स्वयं देखा था; क्योंकि इन्होंने हाथियों के शरीर के छोटे-छोटे अवयवों को भी दर्शाने का प्रयत्न किया है । इन सब हाथियों पर सिन्धु घाटी के अक्षरों में कुछ लिखा हुआ है । ये मोहरें नीचे तथा ऊपर की दोनों सतहों से प्राप्त हुई हैं, परन्तु इन मोहरों पर के बने हुए अक्षर सब एक ही प्रकार के नहीं हैं । इन पर हाथियों पर के झूल[3] तथा आभूषणों को देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि हाथियों का पर्याप्त सम्मान था । इनमें एक हाथी के पुट्ठे पर पद्म[4] तथा दूसरे पर स्वस्तिक[5] का चिह्न भी बना हुआ प्रतीत होता है । ये दोनों चिह्न अभी तक लक्ष्मी से सम्बन्धित हैं । इस कारण गज का लक्ष्मी से कुछ सम्बन्ध उस प्राचीन काल में भी होना कुछ असम्भव नहीं है ।

स्वस्तिक-अंकित मोहरें हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो दोनों नगरों से प्राप्त हुई हैं[6] । यहाँ ये चिह्न प्रायः दोहरे बने हुए हैं (आकृति ङ, ज) । यह चिह्न आज भी लक्ष्मी-पूजन में इसी प्रकार दो अँगुलियों से बनाकर व्यवहृत होता है । हड़प्पा से प्राप्त एक मोहर पर के स्वस्तिक के चारों हाथ नीचे-ऊपर की ओर उसी प्रकार खिंचे हुए हैं जैसे आजकल स्वस्तिक में बनते हैं[7] । (आकृति द), यह चिह्न वरुण के घट पर भी यज्ञादि में आज भी ऐसा ही बनाया जाता है तथा देवी-पूजन के घट पर भी इनको सिन्दूर से बनाते हैं, क्योंकि वह घट भी वरुण का प्रतीक समझा जाता है । परन्तु वरुण आर्यों के देवता हैं, इस कारण आर्यों के पूर्व कदाचित् जल के देवता किसी यक्ष के रूप में पूजे जाते रहे होंगे, जिनका यह चिह्न ज्ञात होता है, जो आगे चलकर वरुण के उस जल के यक्ष देवता से सम्बन्धित होने पर उनसे जोड़ दिया गया होगा । जल के प्रति यक्षों के प्रेम का विवरण महाभारत में कम-से-कम दो स्थानों पर प्राप्त होता है । एक तो उस स्थल पर जहाँ पानी लेने जाने पर जल-निवासी यक्ष चार पाण्डवों को मार डालता है और युधिष्ठिर के आचरण से सन्तुष्ट होकर उन्हें पुनः जीवित कर देता है । दूसरे जहाँ गन्धमादन पर्वत पर सरोवर की रक्षा के हेतु यक्षगण भीम से युद्ध करते हैं ।

स्वस्तिक से गज का भी कुछ सम्बन्ध प्रतीत होता है, क्योंकि हड़प्पा से प्राप्त एक मोहर पर एक ओर स्वस्तिक का चिह्न है, तथा दूसरी ओर हड़प्पा लिपि के कुछ अक्षर हैं (आकृति त) ।

---

१. वत्स—एक्सकेवेशन ६१, संख्या २२६, २२७, २२८, २२६, २३०, २३१ ।
२. मांके—फरदर एक्सकेवेशन इत्यादि, प्लेट ८४, स० ५७, प्लेट ८५, सं० ११०, १२७, प्लेट ८६, सं० १६६, १६५, १७१, प्लेट ८७ सं० २४५, प्लेट ६६, सं० ५०४, ५१२, ५१७ इत्यादि ।
३. मांके—उपर्युक्त प्लेट ६६, सं० ६४८, इत्यादि ।
४. मांके—उपर्युक्त प्लेट ८५, सं० १२७ ।
५. मांके—उपर्युक्त प्लेट ६६, सं० ५०४ ।
६. मांके—उपर्युक्त प्लेट ८३, सं० १७, ३७, प्लेट ६८, सं० ६१६, प्लेट ६४, सं० ३८३ ।
वत्स—एक्सकेवेशन एट हड़प्पा प्लेट ६२, सं० २७८, प्लेट ६५, सं० ३६२, ३६७, ३६८ ।
७. वत्स—उपर्युक्त प्लेट ६२, सं० २७८ ।

इन अक्षरों को या चिह्नों को[1] यदि गज-चिह्नित एक मोहर जो मोहनजोदड़ो से प्राप्त हुई है[2], उसके अक्षरों से मिलाया जाय तो कम-से-कम प्रथम अक्षर इन दोनों मोहरों के एक-से ही प्रतीत होते हैं। एक दूसरी मोहर पर हाथी के सामने ही स्वस्तिक का चिह्न बना है[3], इससे यह अनुमान पुष्ट होता है कि गज से स्वस्तिक का सम्बन्ध था। जो सिन्धु-सभ्यता की मोहरें मेसोपोटामियाँ में प्राप्त हुई हैं, उनमें भी हाथी की मोहर है[4]। इस कारण ऐसा अनुमान होता है कि गजचिह्न से व्यापारियों का भी कुछ सम्बन्ध था। इस प्रकार तीन तथ्य हमारे समक्ष प्रकाश में आने लगते हैं। एक गज और स्वस्तिक का सम्बन्ध, दूसरा गज और व्यापारियों का सम्बन्ध और तीसरा गज और स्वस्तिक से व्यापारियों का सम्बन्ध।

कुछ मोहरें सिन्धु-सभ्यता की ऐसी हैं, जिनमें एक देवी के समक्ष एक आदमी (उपासक) हाथ जोड़े बैठा हुआ है। एक मोहर जो हड़प्पा से प्राप्त हुई, वह भी ऐसी ही है (फलक १ आकृति झ)। इस मोहर की देवी अवश्य सिन्धु घाटी की कोई देवी प्रतीत होती हैं। इसी से मिलती हुई एक मोहर और मोहनजोदड़ो से प्राप्त हुई है[5], इसमें एक देवी की मूर्ति है। यह देवी एक गोल बावली से निकले हुए दो कमल-नाल के बीच में खड़ी हैं (फलक १-आकृति क)। इन कमल-नालों में कमल की कलियाँ लगी प्रतीत होती हैं। इन देवी के मस्तक के पीछे चोटी है तथा ऊपर की ओर तीन नोकोंवाला त्रिशूल का मुकुट है। इसके समक्ष एक पुरुष घुटना टेके वीर-आसन में बैठा उपासना कर रहा है। इसके पीछे एक बकरा गले में माला पहने खड़ा है। इस पुरुष के सिर पर भी उसी प्रकार का मुकुट तथा चोटी है जैसी देवी के सिर पर है। इस मोहर के नीचे के भाग में सात आदमी खड़े हैं। इनके मस्तक पर भी एक-एक नोंक के मुकुट तथा एक-एक चोटी है, जो नीचे तक लटक रही है। ये सातों मनुष्य लम्बा कुरता पहिने दिखाये गये हैं, जैसा मुसलमान संन्यासी पहिनते हैं और जिन्हें अलफी कहते हैं। इन मनुष्यों तथा उपासक के सिर पर के आभूषणों से यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि ये सब उसी देवी के भक्त हैं, जैसे गिलगमिश तथा अकाडकी स्त्रियों के केशविन्यास द्वारा मेसोपोटामियाँ में दिखाने का प्रयत्न कलाकार ने किया है[6]। भारत में उपासना का यह दृश्य कला में हमें सर्वप्रथम यहाँ मिलता है। इधर बहुत कम लोगों का ध्यान गया है। आज लक्ष्मी-पूजन के अवसर पर जो भीत पर चित्रकारी की जाती है इसमें भी एक राजा तथा उनके सात लड़के बनाये जाते हैं। इस सात की संख्या का क्या अभिप्राय है, यह नहीं कहा जा सकता। सिन्धु घाटी की इस मुहर पर भी सात ही आदमी हैं। सम्भवतः यह कल्पना तो दूरारूढ़ होगी कि लक्ष्मी का सम्बन्ध समुद्र से है और समुद्रों की संख्या साधारणतः सात ही मानी जाती रही है। बकरे की बलि आज भी लक्ष्मी को कहीं-कहीं दी जाती है, इस कारण यह सोचना अनुचित नहीं है कि यहाँ भी बकरा बलिप्रदान के हेतु ही माला पहनाकर खड़ा किया गया है। क्या यह लक्ष्मी की मूर्ति का प्राचीन स्वरूप हो सकता है ? ऐसा भाव अनायास हृदय में उठने लगता है। यहाँ पद्मालया के रूप में देवी को प्रदर्शित किया गया है।

---

१. वत्स—एक्सकेवेशन एट हड़प्पा—प्लेट–१००, सं० ६५६।

२. मांके—फरदर एक्सकेवेशन–इत्यादि–प्लेट १०३ सं० १५।

३. वत्स—उपर्युक्त प्लेट २ सं० १ ए।

४. फ्रांक फोर्ट—दी इण्डस सिविलीजेशन दी नियर ईस्ट—प्लेट–१; आनुएल बिबल्योग्राफी आफ इण्डियन आर्केआलाजी–१९३६; वत्स—एक्सकेवेशन एट हड़प्पा—प्लेट ६३, सं० ३१६।

५. मांके—उपर्युक्त—प्लेट ९४, सं० ४३०।

६. प्रजीलुस्की, जे—ला ग्राण्ड डी एस, पृष्ठ १००।

इसी प्रकार की एक और भी मोहर यहाँ से प्राप्त हुई है[१]। इस मोहर में बायीं ओर दो कमलनालों के बीच में एक देवी दोनों हाथ नीचे किये हुए समभाव में खड़ी हैं, (फलक १-आकृति ख—३)। इनके मस्तक पर एक त्रिकोण मुकुट बना है, परन्तु इस मुकुट का आकार पहलेवाले त्रिकोण मुकुट से भिन्न है, जो पहिले के मोहर में देवी पहने हैं। पहलेवाली मोहर नीचे की सतह की है तथा दूसरी ऊपर की सतह से प्राप्त हुई है। इस कारण ऐसा ज्ञात होता है कि पीछे चलकर पहिलेवाले त्रिकोण मुकुट ने यह रूप धारण किया हो। यहाँ का बकरा भी माला पहिने हुए देवी के सामने है। इसके सींग बड़े-बड़े हैं, जैसे पहाड़ी बकरों की होती हैं। इस बकरे के पीछे एक उपासक दोनों हाथ फैलाये हुए दोनों घुटनों को पृथ्वी पर टेके हुए बैठा हाथ जोड़ रहा है। इसके मस्तक पर भी उन्हीं देवी के मुकुट के आकार का मुकुट है। उस उपासक की पीठ की ओर एक चौकी रखी है जिस पर कदाचित् कुछ भोज्य पदार्थ रखा है। देवी तथा उपासक दोनों के मस्तकों के पीछे चोटियाँ लटक रही हैं, जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि देवी के उपासक ने अपना रूप देवी की भाँति बना रखा है जैसा पहिले-वाली मोहर के उपासक के विषय में लिखा जा चुका है। इस मोहर के दूसरे पहल पर[२] गदहे की आकृति का एक पशु है, जिसके समक्ष एक नाँद रखी है, इसके पीछे मनुष्य है तथा सिन्धु-सभ्यता की लिपि के कुछ अक्षर अथवा चिह्न बने हैं। इनमें एक चिह्न आरे की भाँति का वैसा ही है जैसा एक हाथी के मोहर पर बना है (फलक १ आकृति-ग)[३]। इसी मोहर के तीसरे पहल पर[४] दक्षिण की ओर एक हाथी है, (आकृति ख—१) जिसके पीछे एक कुत्ता है। इस मोहर में देवी, हाथी तथा स्वस्तिक सभी हैं, इस कारण इस मोहर से हम यह निष्कर्ष अवश्य निकाल सकते हैं कि इस मोहनजोदड़ो की देवी का सम्बन्ध पद्म से, हाथी से तथा बकरे से था तथा इनका चिह्न स्वस्तिक था। इन देवियों को माके ने वृक्ष का देवता कहा है[५] परन्तु हमें तो यहाँ एक ऐसी मोहर प्राप्त हुई है जिसमें पेड़ को माला चढ़ायी जा रही है[६] जहाँ पेड़ का पूजन होता हो वहाँ उसके देवता की भी पूजा की बात कुछ जमती नहीं। कुछ इन्हीं से मिलती-जुलती हड़प्पा की भी एक मोहर है (आकृति—झ) जिसमें एक देवी एक कोठरी में दिखायी गयी है, जिसके ऊपर तथा बगल में कमल की कलियाँ बनी हुई हैं। ये देवी भी उसी मोहनजोदड़ो की देवी की भाँति दोनों हाथ नीचे किये हुए खड़ी हैं। इनके मस्तक पर भी एक त्रिकोण मुकुट तथा चोटी है। इनके समक्ष भी एक उपासक हाथ जोड़े बैठा है तथा उसके पीछे एक बकरा बैठा है जिसके बड़े-बड़े सींग हैं। इस मोहर के दूसरे पहल पर सिन्धु घाटी लिपि के कुछ अक्षर या चिह्न बने हुए हैं।[७]

दूसरी मोहर जो हड़प्पा से प्राप्त हुई है उसमें एक देवी की मूर्ति बीच में है जिनके दोनों ओर कमलनाल कमल की कलियों सहित दिखाये गये हैं (आकृति—ञ)। इसमें कोई उपासक अंकित नहीं किया गया है। इन देवी के मस्तक पर भी एक त्रिकोण मुकुट है, परन्तु यह मोहनजोदड़ो की दोनों देवियों के मुकुटों से भिन्न हैं। इस मुकुट के दोनों बगल के सिरे नीचे की ओर गिरे हुए हैं। जहाँ मोहनजोदड़ोवाला मुकुट जो दूसरी मोहर पर है (आकृति—ख ३), इस मुकुट के दोनों बगल के सिरे मेढ़े के सींग की भाँति मुड़े हुए हैं। इस हड़प्पा

---

१. मांके—फरदर एक्सकेवेशन—प्लेट ८२, सं० १ सी
२. मांके—फरदर एक्सकेवेशन—प्लेट ८२, सं० १ बी०।
३. मांके—फरदर एक्सकेवेशन—प्लेट १०२, सं० १५।
४. मांके—फरदर एक्सकेवेशन—प्लेट ८२, सं० १ ए०।
५. मांके—फरदर एक्सकेवेशन—खण्ड १।
६. मांके—फरदर एक्सकेवेशन—प्लेट ९०, सं० २४ ए०।
७. वत्स—एक्सकेवेशन एट हड़प्पा—प्लेट ९२, सं० ३१६।

की मोहर के दूसरे पहल पर सिन्धु घाटी के कुछ अक्षर अथवा चिह्न बने हुए हैं[१]। इनमें दो चिह्न ऐसे हैं, जो स्वस्तिकवाले त्रिकोण मोहर पर भी प्राप्त होते हैं (आकृति-त)[२] तीसरा चिह्न या अक्षर भिन्न है। इसी प्रकार की और एक मोहर हड़प्पा से प्राप्त हुई है। इसमें देवी एक कठघरे में खड़ी दिखायी गयी है, जैसी आज के मन्दिरों में व्यवस्था है तथा इनके समक्ष भी कोई उपासक नहीं है (आकृति-थ) इन मोहरों को देखने से ऐसा अनुमान होता है कि किसी ऐसी देवी का पूजन मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा में होता था जिनका सम्बन्ध कमल से था। व्यापारियों को किसी ऐसी देवी की आवश्यकता भी थी जो उन्हें स्थल मार्ग में पशुओं और डाकुओं से, तथा जल के मार्ग में तूफान तथा जल-जन्तुओं से त्राण दे सकें, क्योंकि इनका व्यापार तो सुदूर सुमेर, एलाम, ईरान, सीरिया इत्यादि देशों से होता था[३]। मोहरों पर की देवी इन्हीं व्यापारियों की ही अधिष्ठात्री ज्ञात होती हैं।

सिन्धु घाटी सभ्यता के नगरों में शंख तथा शंख की बनी चूड़ियाँ इत्यादि प्रचुर संख्या में प्राप्त हुई हैं[४]। शंख से लक्ष्मी का सम्बन्ध अभी तक चला आता है तथा आज भी बंगाल में स्त्रियाँ सौभाग्यसूचक शंख की चूड़ी पहनती हैं, सौभाग्यवती लड़कियों को 'लख्खिमेये' भी कहते हैं। शंख कभी-कभी लक्ष्मी के हाथ में भी प्राप्त होता है[५]। इस कार : यह अनुमान करना कि शंख भी इन देवी से सम्बन्धित था, कुछ अनुचित न होगा। शंख और पद्म दोनों ही जल से उत्पन्न होते हैं, तथा दोनों ही कुबेर की निधियों में हैं।

मोहनजोदड़ो की ऊपरी सतह से कुछ ऐसी मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं[७] जिनके मस्तक के गहने के साथ एक दिउली कनपटी के पास बनी है। इनमें अब भी काजल की कालिख लगी है, जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि ये दिउलियाँ दीपक की भाँति व्यवहार में आयी थीं। आज दीपावली के अवसर पर मृण्मूर्तियाँ ऐसी बनती हैं जो हाथ में दीपक लिये हुए रहती हैं। इन्हें पढ़े-लिखे लोग दीपलक्ष्मी और अनपढ़ ग्वालिन कहते हैं तथा इनके हाथ की दिउली में दीपक जलाया जाता है और इनको लक्ष्मी के समक्ष रखा जाता है। इस कारण ऐसा ज्ञात होता है कि इस प्रकार की मूर्तियाँ देवीपूजन के हेतु सिन्धु घाटी में भी व्यवहार में आती थीं।

इस प्रकार बकरे की बलि किसी मूर्ति के समक्ष उपस्थित करना तथा पूजन के हेतु दीपक जलाना अथवा शंख फूँकना या धान का लावा चढ़ाना इत्यादि वैदिक आर्यों के धर्म से बिलकुल विपरीत था। इनके यहाँ मूर्तियों के पूजन के स्थान पर यज्ञ होता था तथा देवताओं को प्रसन्न करने के हेतु घृत तथा यव इत्यादि की आहुति दी जाती थी। पुरोडाश यव के आँटे का बनता था, धान का नहीं तथा आर्य लिंगपूजकों को पतित समझते थे।[८] यक्षों और गन्धर्वों को ये पहिले देवयोनि में नहीं मानते थे।

विद्वानों का मत है कि भारत के आदिनिवासी जगन्माता को योनि के रूप में तथा पुरुष को लिंग के

---

१. वत्स--एक्सकवेशन एट हड़प्पा--प्लेट ९३, सं० ३१८।
२. वत्स--एक्सकवेशन एट हड़प्पा--प्लेट १००, सं० ६५६।
३. मांके--फरदर एक्सकवेशन--ख० १, पृ० ६३९ तथा आगे।
४. वत्स--उपर्युक्त प्लेट--८१--१, २, ३, ४, ५, ६ इत्यादि।
५. मांके--उपर्युक्त प्लेट १५१ सं० ४८, ५०।
६. विष्णुपुराण--३, ८२, ७।
७. मार्शल--मोहनजोदड़ो प्लेट--९४, सं० १; मांके--उपर्युक्त पृ० २६०; प्लेट ७३ सं० ४ प्लेट--७५, २१, २३।
८. पिग्गट--प्री हिस्टारिक इण्डिया--पृ० २६१।

रूप में और नागों, यक्षों[1] तथा यक्षिणियों को मूर्तरूप में पूजते थे। पूजन के हेतु इन देवी-देवताओं का आर्य धर्म में प्रवेश तथा इनकी पूजनविधि का हिन्दू-धर्म में समावेश विजित जातियों का आर्यों पर सांस्कृतिक विजय का सूचक है। बहुत दिनों तक आर्यों ने अपने यज्ञ कर्म की विधि को विशुद्ध रखने का प्रयत्न किया होगा[2], लेकिन अन्त में इन्हें आदिवासियों के पूजन[3] तथा इनके देवताओं को अपनाना पड़ा। फिर भी आर्यों के यज्ञों में इन आदिवासियों के देवी-देवताओं के मूर्त रूप को स्थान नहीं प्राप्त हुआ। आज तो हम यह कहने लगे हैं कि ये सब हमारे आर्यों के देवी-देवता हैं तथा इनके मन्दिरों में अनार्यों का प्रवेश निषिद्ध है। इनका षोड़शोपचार पूजन भी हम वैदिक मन्त्रों से करने लगे हैं।[4]

हमारी लक्ष्मी भी कदाचित् उपर्युक्त मोहरों पर भारत के आदिवासियों की देवी थीं, जो अब आर्य देवी लक्ष्मी के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हैं तथा जिनकी स्तुति हम आज ऋग्वेद के श्रीसूक्त से करते हैं। इन देवी का सम्बन्ध कमल, स्वस्तिक तथा गज से बहुत प्राचीन था तथा सम्भवतः ये यक्षिणी के रूप में सिन्धु घाटी की सभ्यता में पूजी जाती थीं और पीछे चल कर इनका लक्ष्मी का रूप हो गया।

❀

---

१. कुमार स्वामी--हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट--पृ० ५।

२. कुमार स्वामी--यक्षाज़ ख० १--पृ० ३।

३. यक्ष पूजन में सुगन्धित द्रव्य चन्दन, इत्र, पुष्प, धूप, दीप, फल, मादक द्रव्य इत्यादि चढ़ाये जाते थे--बृहत कथा श्लोक संग्रह (१३--३, ५)। इसी प्रकार आज भी षोडशोपचार पूजन में देवताओं को चढ़ाया जाता है।

४. जैसे धूप चढ़ाते समय हम वैदिक मन्त्र 'धूरसि धूरवन्तम्' इत्यादि वैदिक मन्त्र का पाठ करते हैं, जिससे धूप से कोई सम्बन्ध नहीं है।

: ३ :

वैदिक युग में लक्ष्मी का स्वरूप

"लक्ष्मी" तथा "श्री" शब्द, दोनों हमें ऋग्वेद में मिलते हैं, परन्तु निराकार संज्ञा के रूप में अथवा अमूर्त विशेषण की भाँति । उपमान द्वारा भी इन शब्दों से किसी स्वरूप विशेष की अनुभूति नहीं होती ।[1] "श्री" शब्द तेज[2], सौन्दर्य[3], शोभा[4], कान्ति[5], विभूति[5], अथवा सम्पदा[6], कीर्ति[7], तृप्तिकारक[8] के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । "श्री' शब्द ऋग्वेद में "श्री' (९, १०९, १५), "घृत श्री" (१०, ६५, २), "दर्शत श्री" (१०, ९१, २), "श्रिये" (२, २३, १८; ४, ५, १५; ४, १०, ४, २३, ६; ५, ३०, ३; ५, ६०, ४; ९, १०४, १; १०, ४५, ८; १०, ७६, २; १०, ९१, २; १०, ९५, ६; १०, १०५, १०), "श्रियो' (१, १६६, १०; ३, १, ५; ७, १५, ५; १०, ९१, ५), "श्रियं' (१, १७९, १; ८, २०, ७), "सुश्रियं" (३, ३, ५; ९, ४३, ४), "श्रेयां" (५, ६०, ४) "श्राया" (५, ५३, ४), "श्रेया" (६, ४१, ४) "श्रिया" (१, १८८, ६, २, ८, ३, ५, ३, ४), "श्रीगा' (१०, ४५, ५,) "श्रियः" (२, १, १२; ९, १६, ६) "अभिश्रियः"(१०, ६६, ८), "श्रियसे" (५, ५९, ३), "अश्रीर" (८, २, २०), "अश्रीरा" (१०, ८५, ३०), "श्रियरधि' (५, ६१, १२), "श्रीणीत' (९, ४६, ४), "श्रीणाना" (९, ६५, २६), "श्रीणनः" (९, १०९, १७) रूपों में प्राप्त होता है । इसके विभिन्न अर्थ उपर्युक्त ज्ञात होते हैं । "श्र" शब्द से बना "श्रेणि" भी प्राप्त होता है (१०, ९५, ६) जिसका अर्थ यहाँ पंवित (सेना की सुसंस्कृत पंक्ति) ज्ञात होता है । दूसरा शब्द "श्रेष्ठ" मिलता है, जिसका अर्थ होता है, सबसे उच्च (१०, १७९, ३) । ऐसा अनुमान होता है कि "श्री" शब्द का प्राचीन अर्थ तेज, छटा, कान्ति था, जो व्यवहार में आने पर उन विभूतियों का भी द्योतक हो गया जिनके द्वारा तेज इत्यादि दृश्य होता है; जैसे "सम्पदा" इत्यादि ।

'लक्ष्मी' शब्द यहाँ संज्ञा के रूप में तो अवश्य आया है[9], परन्तु प्रयुक्त सामान्य अर्थ में ही हुआ है । "धीराभद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि" इत्यादि मंत्र में लक्ष्मी का वाणी में निहित होना बताया गया है । इस

---

१. ऋक्—७, १५, ५ ।

२. ऋक्—१, १६६, १०; ५, ३, ३; ५, ६०, ४; ५, ६१, १२; ९, ४३, ५; ९, १०९, १५ ।

३. ऋक्—तनुनाम श्रियं-१, १७९, १; अश्रीर- ८, २, २०, १०, ८५, ३०, १०, ९१, २ ।

४. ऋक्—२, १, १२; ४, १०, ५; ४, २३, ६; ५, ३, ४; ५९, ३; १०, ६६, ८ ।

५. ऋक्—१, १८८, ६; १०, १, ५; १०, ४५, ८; १०, ६५, २, १०, ७६, २; १०, ९१, ५ ।

६. ऋक्—२, ८, ३; २, २३, १८; ३, १, ५; ३, ३, ५; ४, ५, १५; ७, १५, ५; ८, २०, ७; ९, १६, ६; ९, ६२, १९; ९, १०४, १; राज्य श्री-१०, ९५, ३; १०, ९५, ६; १०, १०५, १० ।

७. ऋक्—५, ५३, ४; ६, ४१, ४; १०, ४५, ५ ।

८. ऋक्—९, ४६, ४; ९, ६५, २६ ।

९. ऋक्—१०, ७१, २ ।

वाक्य से लक्ष्मी का स्वरूप तो प्रकट होता नहीं, परन्तु यह अवश्य ज्ञात होता है कि यह शब्द ऐश्वर्य का द्योतक था।

ऋग्वेद में धन के कोई विशेष देवता हों ऐसा भी ज्ञात नहीं होता; क्योंकि ऊषा[1], अश्विनी कुमारों[2], इन्द्र[3] तथा अग्नि[4] इत्यादि प्रायः सभी देवताओं से प्रार्थनाएँ की गई हैं कि वे धन दें। देवियाँ भी हमें ऋग्वेद में प्राप्त होती हैं परन्तु उनमें भी लक्ष्मी का नाम नहीं आता; जैसे अदिति (३, ४, ११), सिनिवाली (२, ३२, ८), इला (३, ४, ८); सरस्वती (२, ३२, ८), इंद्राणी (२, ३२, ८), राका (२, ३२, ४), वरुणानी, (२, ३२, ८)। इंद्राणी का तो शची नाम भी प्राप्त होता है (४, ३०, १७)। देवपत्नियों में इंद्राणी, अग्नानी, अश्वनानी, रोदसी, वरुणानी इत्यादि मिलती हैं (५, ४६, ८), परन्तु "लक्ष्मी" या "श्री" विष्णु की पत्नी के रूप में नहीं मिलतीं। विष्णु की प्रार्थना है, परन्तु उनकी पत्नी की नहीं (५, ४६, ८)।

श्री, श्रेयस, श्रेष्ठ शब्द वेदों तथा 'अवस्ता' दोनों में पाए जाते हैं। अवस्ता में इस शब्द का अर्थ श्रेष्ठत्व तथा महत्व ओल्डनबर्ग ने किया है। पीछे चलकर "श्री" को सुन्दरता का द्योतक बताया है। 'श्रीर' शब्द द्वारा उस स्त्री की सुन्दरता का वर्णन किया गया है जिसका शरीर अर्दवी सूरा अनाहिता धारण करती है, इत्यादि[5]।

ऋग्वेद में अग्नि वैश्वानर (३, २, १५; ४, १, २०; ४, २, २०) को धन का स्वामी कहा है[6]। अग्नि को धन का दाता कहा है, 'श्रीणाम् उदारों धरूणो रयीणाम्।'[7] पूषण "श्री" के अधिष्ठाता कहे गये हैं[8], अश्विनों को 'श्रियः पृक्षश्च' कहा है[9], सोम को भी श्री का अधिष्ठाता कहा है।[10]

जिन शब्दों में श्री सूक्त में लक्ष्मी की स्तुति की गई है, ये ऋग्वेद के खिल स्वरूप में प्राप्त होते हैं, जैसेः—

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह॥
तम् म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं बिन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्॥

उन्हीं में प्रायः अपांनपात् देवता की भी—

हिरण्यरूप स हिरण्यसन्दृगपांनपात्सेदु हिरण्यवर्णः।
हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै॥

(ऋक् २, ३५, १०)

---

१ ऋक्— ७, ७५, २।
२. ऋक्— ७, ७५, ६।
३. ऋक्— १०, ४७, १८।
४. ऋक्— ४, ५, १२।
५. ओल्डनबर्ग—वैदिक वर्ड्स फार ब्यूटीफुल एण्ड ब्यूटी इत्यादि, रूपम् सं० ३२, अक्तूबर १९२७ पृ० ९८, ९९।
६. गोण्डा जे० — एस्पेक्ट्स आफ विष्णुइज्म; पृ० १७४।
७. ऋग्वेद — १०, ४५, ५।
८. ऋग्वेद — ६, ४८, १९।
९. ऋक्— १, १३९, ३।
१०. ऋक्— ९, १६, ६, ९, ६२, १९।

क्या इनका कुछ सम्बन्ध लक्ष्मी से था ? इनका सम्बन्ध जल से तो था (२, ३५, ३) जैसे लक्ष्मी का था (श्री सूक्त—३) जिन्हें 'आर्द्रा१' कहा है।[1] ऋग्वेद में यह भी कहा गया है कि दर्प, रहित नवयुवतियाँ अपांनपात् देवता को अलंकृत करती हैं (२, ३५, ४); जैसे श्री महालक्ष्मी व्रत में युवतियाँ श्री लक्ष्मी की मूर्ति नाकर उनको अलंकृत करती हैं।[2] कदाचित् ये भी आर्यों के देवता अनार्यों की लक्ष्मी के सदृश्य धनप्रदाता माने जाते रहे हों।

यजुर्वेद में 'श्री' तथा 'लक्ष्मी' परमपुरुष की सपत्नियों के रूप में[3] प्रकाश में आती है[4] "श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्" (३१,२२)। इस मंत्र से ऐसा ज्ञात होता है कि इस काल तक श्री का अर्थ ब्रह्मश्री तथा लक्ष्मी का अर्थ राज्यश्री हो चुका था, नहीं तो इनको दो भिन्न रूपों में इस प्रकार वर्णन करने की आवश्यकता ही न पड़ती।

एक दूसरे मंत्र में श्री से मस्तक में आविर्भूत होने की प्रार्थना की गयी है[5]—

"शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषः केशाश्च श्मश्रूणि।
राजा मे प्राणो अमृतं सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम्॥

इससे भी यही प्रतीत होता है कि श्री का अर्थ ब्रह्मश्री अथवा ज्ञान का तेज मान लिया गया था। 'श्री तथा 'रयी दोनों को एक और मंत्र में अलग किया है।[6] विष्णु-पत्नी यहाँ अदिति मिलती है[7] जो ऋग्वेद में प्रकृति की द्योतक है[8]। 'श्री' तथा 'रयी' को निम्नांकित मन्त्र में अलग-अलग किया है, जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि श्री का धन से कोई सम्बन्ध न था। (रयी शब्द धन का द्योतक है।)

श्रीणामुदारो धरूणो रयीणाम् मनीषाणाम् प्रार्पणः सोमगोपाः,[9]

इस मंत्र का देवता अग्नि है, उनसे यह निवेदन है कि—श्रीणामुदारो अर्थात् ज्ञानी में उदार, धरूणो-रयीणाम्—धन को धारण करनेवाले, मनीषाणाम प्रार्पणः—मन की अभिलाषाओं को देनेवाले, सोमगोपः—सोम के रक्षक हो। इस मंत्र से यह प्रतीत होता है कि 'श्री' का अर्थ ब्रह्मज्ञान के तेज के रूप में इस काल तक रूढ़ हो चुका था।

परन्तु तैत्तिरीय संहिता की वैश्वानस शाखा के स्मार्त सूत्र में धन की प्राप्ति के हेतु चैत्र की पूर्णिमा को अग्नि के पश्चिम की ओर धान अथवा कुछ लोगों के मतानुसार मूंग और घृत की आहुति देने का आदेश प्राप्त होता है। (स्मार्त सूत्र ४,८; मन्त्र जिनसे आहुति देना है, तैत्तिरीय संहिता ५, ७, २ तथा आगे)।

---

१. श्री सूक्त — ३, १२ तथा १३।
२. श्री महालक्ष्मी व्रत — ५९।
३. विष्णु की सपत्नी कहा है — वाजसनेयि १२, ५।
४. वाजसनेयि — ३१, २२।
५. वही — २०, ५।
६. वही — १२, २२।
७. तैत्तिरीय संहिता — ७, ५, १४; वाजसनेयि — २९, ६०।
८. ऋग्वेद — १, ८९, १०।
९. ऋग्वेद — १०, ४५, ५।

वाक्य से लक्ष्मी का स्वरूप तो प्रकट होता नहीं, परन्तु यह अवश्य ज्ञात होता है कि यह शब्द ऐश्वर्य का द्योतक था।

ऋग्वेद में **धन** के कोई विशेष देवता हों ऐसा भी ज्ञात नहीं होता; क्योंकि ऊषा[1], अश्विनी कुमारों[2], इन्द्र[3] तथा अग्नि[4] इत्यादि प्रायः सभी देवताओं से प्रार्थनाएँ की गई हैं कि वे धन दें। देवियाँ भी हमें ऋग्वेद में प्राप्त होती हैं परन्तु उनमें भी लक्ष्मी का नाम नहीं आता; जैसे अदिति (३, ४, ११), सिनिवाली (२, ३२, ८), इला (३, ४, ८); सरस्वती (२, ३२, ८), इंद्राणी (२, ३२, ८), राका (२, ३२, ४), वरुणानी, (२, ३२, ८)। इंद्राणी का तो शची नाम भी प्राप्त होता है (४, ३०, १७)। देवपत्नियों में इंद्राणी, अग्नानी, अश्वनानी, रोदसी, वरुणानी इत्यादि मिलती हैं (५, ४६, ८), परन्तु "लक्ष्मी" या "श्री" विष्णु की पत्नी के रूप में नहीं मिलतीं। विष्णु की प्रार्थना है, परन्तु उनकी पत्नी की नहीं (५, ४६, ८)।

श्री, श्रेयस, श्रेष्ठ शब्द वेदों तथा 'अवस्ता' दोनों में पाए जाते हैं। अवस्ता में इस शब्द का अर्थ श्रेष्ठत्व तथा महत्व ओल्डनवर्ग ने किया है। पीछे चलकर "श्री" को सुन्दरता का द्योतक बताया है। 'श्रीर' शब्द द्वारा उस स्त्री की सुन्दरता का वर्णन किया गया है जिसका शरीर अर्दवी सूरा अनाहिता धारण करती है, इत्यादि[5]।

ऋग्वेद में अग्नि वैश्वानर (३, २, १५; ४, १, २०; ४, २, २०) को धन का स्वामी कहा है[6]। अग्नि को धन का दाता कहा है, 'श्रीणाम् उदारों धरूणो रयीणाम्।[7] पूषण "श्री" के अधिष्ठाता कहे गये हैं[8], अश्विनों को 'श्रियः पृक्षश्च' कहा है[9], सोम को भी श्री का अधिष्ठाता कहा है।[10]

जिन शब्दों में श्री सूक्त में लक्ष्मी की स्तुति की गई है, ये ऋग्वेद के खिल स्वरूप में प्राप्त होते हैं, जैसे:–

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह॥
तम् म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्॥

उन्हीं में प्रायः अपांनपात् देवता की भी––

हिरण्यरूप स हिरण्यसन्दृगपांनपात्सेदु हिरण्यवर्णः।
हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै॥

(ऋक् २, ३५, १०)

---

१ ऋक् –– ७, ७५, २।
२. ऋक् –– ७, ७५, ६।
३. ऋक् –– १०, ४७, १८।
४. ऋक् –– ४, ५, १२।
५. ओल्डनबर्ग –वैदिक वर्ड्स फार ब्यूटीफुल एण्ड ब्यूटी इत्यादि, रूपम् सं० ३२, अक्तूबर १९२७ पृ० ९८, ९९।
६. गोण्डा जे० –– एस्पेक्ट्स आफ विष्णुइज्म; पृ० १७४।
७. ऋग्वेद –– १०, ४५, ५।
८. ऋग्वेद –– ६, ४८, १९।
९. ऋक् –– १, १३९, ३।
१०. ऋक् –– ९, १६, ६, ९, ६२, १९।

क्या इनका कुछ सम्बन्ध लक्ष्मी से था ? इनका सम्बन्ध जल से तो था (२, ३५, ३) जैसे लक्ष्मी का था (श्री सूक्त—३) जिन्हें 'आर्द्रां' कहा है।[1] ऋग्वेद में यह भी कहा गया है कि दर्प, रहित नवयुवतियाँ अपांनपात् देवता को अलंकृत करती हैं (२, ३५, ४); जैसे श्री महालक्ष्मी व्रत में युवतियाँ श्री लक्ष्मी की मूर्ति नाकर उनको अलंकृत करती हैं।[2] कदाचित् ये भी आर्यों के देवता अनार्यों की लक्ष्मी के सदृश्य धनप्रदाता माने जाते रहे हों।

यजुर्वेद में 'श्री' तथा 'लक्ष्मी' परमपुरुष की सपत्नियों के रूप में[3] प्रकाश में आती है[4] "श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्" (३१,२२)। इस मंत्र से ऐसा ज्ञात होता है कि इस काल तक श्री का अर्थ ब्रह्मश्री तथा लक्ष्मी का अर्थ राज्यश्री हो चुका था, नहीं तो इनको दो भिन्न रूपों में इस प्रकार वर्णन करने की आवश्यकता ही न पड़ती।

एक दूसरे मंत्र में श्री से मस्तक में आविर्भूत होने की प्रार्थना की गयी है[5]—

"शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषः केशाश्च श्मश्रूणि।
राजा मे प्राणो अमृतं सम्राट् चक्षुर्विराड् श्रोत्रम्॥

इससे भी यही प्रतीत होता है कि श्री का अर्थ ब्रह्मश्री अथवा ज्ञान का तेज मान लिया गया था। 'श्री तथा 'रयी दोनों को एक और मंत्र में अलग किया है।[6] विष्णु-पत्नी यहाँ अदिति मिलती है[7] जो ऋग्वेद में प्रकृति की द्योतक है[8]। 'श्री' तथा 'रयी' को निम्नांकित मन्त्र में अलग-अलग किया है, जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि श्री का धन से कोई सम्बन्ध न था। (रयी शब्द धन का द्योतक है।)

श्रीणामुदारो धरूणो रयीगाम् मनीषाणाम् प्रार्पणः सोमगोपाः,[9]

इस मंत्र का देवता अग्नि है, उनसे यह निवेदन है कि—श्रीणामुदारो अर्थात् ज्ञानी में उदार, धरूणो-रयीणामु—धन को धारण करनेवाले, मनीषाणाम प्रार्पणः—मन की अभिलाषाओं को देनेवाले, सोमगोपः—सोम के रक्षक हो। इस मंत्र से यह प्रतीत होता है कि 'श्री' का अर्थ ब्रह्मज्ञान के तेज के रूप में इस काल तक रूढ़ हो चुका था।

परन्तु तैत्तिरीय संहिता की वैश्वानस शाखा के स्मार्त सूत्र में धन की प्राप्ति के हेतु चैत्र की पूर्णिमा को अग्नि के पश्चिम की ओर धान अथवा कुछ लोगों के मतानुसार मूंग और घृत की आहुति देने का आदेश प्राप्त होता है। (स्मार्त सूत्र ४,८; मन्त्र जिनसे आहुति देना है, तैत्तिरीय संहिता ५, ७, २ तथा आगे)।

---

१. श्री सूक्त — ३, १२ तथा १३।
२. श्री महालक्ष्मी व्रत — ५६।
३. विष्णु की सपत्नी कहा है — वाजसनेयि १२, ५।
४. वाजसनेयि — ३१, २२।
५. वही — २०, ५।
६. वही — १२, २२।
७. तैत्तिरीय संहिता — ७, ५, १४; वाजसनेयि — २६, ६०।
८. ऋग्वेद — १, ८६, १०।
९. ऋग्वेद — १०, ४५, ५।

एक और स्थान पर सोम को श्रीणन्त पृश्नयः कहा है । यह मंत्र गार्हपत्य अग्निकुण्ड की इष्टिका लगाने के समय व्यवहार में आता है[१] । इसी प्रकार "श्री" शब्द और भी स्थलों पर मिलता है परन्तु उसका अर्थ तेज ही निकलता है[२] । इस काल में "श्री" तथा "लक्ष्मी" शब्दों के अर्थों में भेद निश्चित हो चुका था । दोनों का एक स्थान पर होना बड़ा सौभाग्यसूचक था । ये दोनों केवल परम पुरुष की ही सपत्नियों के रूप में वर्णित हैं ।

सामवेद में भी "श्री" शब्द मिलता है[३] परन्तु सामवेद में प्रायः मंत्र तो ऋग्वेद के ही हैं, इस कारण उन्हीं अर्थों में "श्री" शब्द का व्यवहार यहाँ भी हुआ है ।

अथर्ववेद में "श्री" शब्द भूति, सम्पत्ति, वृद्धि, ऐश्वर्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । जैसे पृथ्वी की प्रार्थना करते हुए यह कहा गया है कि "मुझे ऐश्वर्य से सुप्रतिष्ठित करो"[४] । बृहस्पति जब देवताओं को असुरों पर विजय पाने के हेतु यंत्र बाँधते हैं तो उस मंत्र में भी कहते हैं कि देवताओं को 'श्री' प्राप्त हो अर्थात् भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त हो । "श्री" तथा "लक्ष्मी" शब्दों के अर्थ में अथर्ववेद में कोई विशेष भेद नहीं दृष्टिगोचर होता । ([६]) यहाँ बकरे से लक्ष्मी का सम्बन्ध स्पष्ट हमारे समक्ष आता है । यहाँ यह निर्देश प्राप्त होता है कि पंचौदन यज्ञ में जो बकरे की बलि देता है वह अपने शत्रु की "श्री" को नष्ट करता है ।[७] यहाँ "श्री" का अर्थ भौतिक धन ही प्रतीत होता है । बकरा हम मोहनजोदड़ो की मोहरों पर एक देवी के समक्ष देख चुके हैं । इस मंत्र में जिस जन-विश्वास की ध्वनि प्रस्फुटित होती है उससे ऐसा ज्ञात होता है कि लक्ष्मी को बकरे की बलि धन की प्राप्ति के हेतु पहिले दी जाती थी । अज की बलि से प्राप्त होनेवाले सुखों का वर्णन भी पंचौदन यज्ञ के प्रकरण में मिलता है ।[८]

अथर्ववेद में विष्णुपत्नी का विवरण प्राप्त होता है । इनका विश्पत्नी से सम्बन्ध भी यहाँ ज्ञात होता है ।

विश्पत्नी अर्थात् वैश्यपत्नी तथा विष्णुपत्नी का सम्बन्ध पीछे के साहित्य में बहुत हो जाता है, क्योंकि लक्ष्मी वैश्यों की देवता मानी जाती हैं ।

> "या विश्पत्नीन्द्र मसि प्रतीची सहस्रस्तुका भिषन्ती देवी ।
> विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिं देवी राधसे चोदयस्व ।।"[९]

'लक्ष्म' शब्द अथर्ववेद में चिन्ह के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तथा कर्णवेध के संस्कार के मंत्रों में आता है ।[१०] कर्णवेध के समय किसी प्रकार के चिह्न कदाचित् कानों पर बनाए जाते थे । यह चिह्न स्वस्तिक के रूप का हो

---

१. वाजसनेयि — १२, ५५ ।
२. वही — १२, २४; १२, १;, १२, २५; २१, ३५; २६, ७; ३६, ४ ।
३. सामवेद — २, १, ५ (१०१ मंत्र); ६, १, ३ (४८६ मंत्र) ।
४. अथर्ववेद — १२, १, ६३ ।
५. वही — १०, ६, २६ ।
६. वही — ६, ५, ३१; ११, १, १२; ११, १, २१ ।
७. अथर्ववेद — ६, ५, ३१ ।
८. अथर्ववेद — ६, ५, १० – १ ।
९. अथर्ववेद — ७, ४८, ३ । इसी के साथ ७, ४८, २ को देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि विश्पत्नी से सिनीवाली का कुछ सम्बन्ध था ।
१०. अथर्ववेद — ६, १४१, २–३ ।

सकता है परन्तु लक्ष्मी शब्द किसी देवी का भी उस समय द्योतक था, उनको पापी इत्यादि शब्द से अथर्ववेद में सम्बोधित किया है तथा लोहा गर्म करके उसे दागने को कहा है।

"प्रपतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत
अयस्मयेनांकेन द्विषते त्वा सजामसि।"[1]

अथर्ववेद के इसके आगे के मन्त्रों में हमें दो प्रकार की लक्ष्मी मिलती हैं, एक पापी और एक अच्छी। कदाचित् अच्छी लक्ष्मी आर्यों की श्री देवी थी और पापी अनार्यों की। इन्हीं का पुराणों के समय में अलक्ष्मी और लक्ष्मी नाम हो गया होगा। ऐसा अनुमान होता है कि आदिवासियों की इस देवी को आर्य अपने घर में घुसने से निषेध करते थे परन्तु पीछे चलकर इनको इस देवी को अपना लेना पड़ा, जैसा हमें यजुर्वेद के 'श्रीश्चते लक्ष्मी सपत्न्याः' मंत्र[2] और श्री सूक्त के मंत्रों से जान पड़ता है। लक्ष्मी को अथर्ववेद में हिरण्यहस्त भी कहा है।[3]

'श्री' शब्द अथर्ववेद में भी ऋग्वेद की भाँति किसी देवी विशेष का द्योतक नहीं ज्ञात होता। 'श्री' शब्द सम्पत्ति के अर्थ में कई स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है,[4] तथा तेज के[5] और सुन्दरता के अर्थ में भी[6] परन्तु किसी देवी के अर्थ में नहीं।

ऐसा ज्ञात होता है कि इस संहिता के समय तक कदाचित् 'श्री' शब्द का अर्थ ऋग्वेद काल से कुछ कम व्यापक हो चला था, परन्तु 'लक्ष्मी' या 'श्री' का कोई विशेष रूप नहीं बन पाया था।

श्री सूक्त, जो ऋग्वेद के पाँचवें मंडल के परिशिष्ट के रूप में हमें प्राप्त होता है, विद्वानों के मतानुसार यह परवर्ती काल का है। इसमें 'श्री' तथा 'लक्ष्मी शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची मिलते हैं। कदाचित् उस समय तक लक्ष्मी को आर्यों ने अपनाना प्रारम्भ कर दिया था। यहाँ हमें श्री अथवा लक्ष्मी एक देवी के रूप में मिलती है (श्रियं देवीम्)[7], यह देवी कैसी है (हिरण्यवर्णाम्)[8] सुवर्ण के रंगवाली है तथा (सुवर्ण-रजतस्रजम्) सुवर्ण तथा चाँदी का स्रज धारण किये हुए है। 'स्रज' शब्द ऋग्वेद में कई स्थानों पर आया है[9] अश्विनी को पुष्करस्रज कहा है।[10] इस शब्द का अर्थ मस्तक पर बंधने की माला ही ज्ञात होता है। इस प्रकार की सुवर्ण तथा रजत के लम्बे दानों की बनी हुई जूतिया आज भी स्त्रियाँ मस्तक पर आश्विन कृष्ण अष्टमी को पुजा करके पहिनती हैं। (जूतिया एक प्रकार की माला होती है जिसमें यव के आकार के लम्बे मनके चाँदी और सोने के लगे रहते हैं)

गले में पद्म की माला है (पद्मामालिनीम्), इनका मुख चन्द्रमा की भाँति गोल है (चन्द्राम्) आँखें हिरनी की भाँति हैं (हरिणीम्) तथा सुवर्ण के आभूषणों से सुसज्जित है (हिरण्यमयीम्), सद्यः स्नाता होने

---

१. अथर्ववेद -- ७, ११५, १–४।
२. वाजसनेयि -- ३१–२२।
३. अथर्ववेद -- ७, ११५, २।
४. अथर्ववेद -- ६, ७३, १; ६, ५, ३१; ६, ६, ६;, १०, ६, २६; १२, २, ४५
५. अथर्ववेद -- १२, ५, ७; १३, १, ६; २०, १०, २।
६. अथर्ववेद -- ८, २, १४; २०, १४३, २।
७. श्रीसूक्त -- ३।
८. श्रीसूक्त -- १।
९. ऋग्वेद -- ४, २८, ६; ८, ४८, १५।
१०. ऋग्वेद -- १०, ८४, ३।

एक और स्थान पर सोम को श्रीणन्त पृश्नयः कहा है । यह मंत्र गार्हपत्य अग्निकुण्ड की इष्टिका लगाने के समय व्यवहार में आता है[१] । इसी प्रकार "श्री" शब्द और भी स्थलों पर मिलता है परन्तु उसका अर्थ तेज ही निकलता है[२] । इस काल में "श्री" तथा "लक्ष्मी" शब्दों के अर्थों में भेद निश्चित हो चुका था । दोनों का एक स्थान पर होना बड़ा सौभाग्यसूचक था । ये दोनों केवल परम पुरुष की ही सपत्नियों के रूप में वर्णित हैं ।

सामवेद में भी "श्री" शब्द मिलता है[३] परन्तु सामवेद में प्रायः मंत्र तो ऋग्वेद के ही हैं, इस कारण उन्हीं अर्थों में "श्री" शब्द का व्यवहार यहाँ भी हुआ है ।

अथर्ववेद में "श्री" शब्द भूति, सम्पत्ति, वृद्धि, ऐश्वर्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । जैसे पृथ्वी की प्रार्थना करते हुए यह कहा गया है कि "मुझे ऐश्वर्य से सुप्रतिष्ठित करो"[४] । बृहस्पति जब देवताओं को असुरों पर विजय पाने के हेतु यंत्र बाँधते हैं तो उस मंत्र में भी कहते हैं कि देवताओं को 'श्री' प्राप्त हो अर्थात् भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त हो । "श्री" तथा "लक्ष्मी" शब्दों के अर्थ में अथर्ववेद में कोई विशेष भेद नहीं दृष्टिगोचर होता । (५) यहाँ बकरे से लक्ष्मी का सम्बन्ध स्पष्ट हमारे समक्ष आता है । यहाँ यह निर्देश प्राप्त होता है कि पंचौदन यज्ञ में जो बकरे की बलि देता है वह अपने शत्रु की "श्री" को नष्ट करता है ।[७] यहाँ "श्री" का अर्थ भौतिक धन ही प्रतीत होता है । बकरा हम मोहनजोदड़ो की मोहरों पर एक देवी के समक्ष देख चुके हैं । इस मंत्र में जिस जन-विश्वास की ध्वनि प्रस्फुटित होती है उससे ऐसा ज्ञात होता है कि लक्ष्मी को बकरे की बलि धन की प्राप्ति के हेतु पहिले दी जाती थी । अज की बलि से प्राप्त होनेवाले सुखों का वर्णन भी पंचौदन यज्ञ के प्रकरण में मिलता है ।[८]

अथर्ववेद में विष्णुपत्नी का विवरण प्राप्त होता है । इनका विश्पत्नी से सम्बन्ध भी यहाँ ज्ञात होता है ।

विश्पत्नी अर्थात् वैश्यपत्नी तथा विष्णुपत्नी का सम्बन्ध पीछे के साहित्य में बहुत हो जाता है, क्योंकि लक्ष्मी वैश्यों की देवता मानी जाती हैं ।

"या विश्पत्नीन्द्र मसि प्रतीची सहस्रस्तुका भिषन्ती देवी ।
विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिं देवी राधसे चोदयस्व ।।"[९]

'लक्ष्म' शब्द अथर्ववेद में चिन्ह के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तथा कर्णवेध के संस्कार के मंत्रों में आता है ।[१०] कर्णवेध के समय किसी प्रकार के चिह्न कदाचित् कानों पर बनाए जाते थे । यह चिह्न स्वस्तिक के रूप का हो

---

१. वाजसनेयि — १२, ५५ ।
२. वही — १२, २४; १२, १;, १२, २५; २१, ३५; २६, ७; ३९, ४ ।
३. सामवेद — २, १, ५ (१०१ मंत्र); ६, १, ३ (४८९ मंत्र) ।
४. अथर्ववेद — १२, १, ६३ ।
५. वही — १०, ६, २६ ।
६. वही — ९, ५, ३१; ११, १, १२; ११, १, २१ ।
७. अथर्ववेद — ९, ५, ३१ ।
८. अथर्ववेद — ९, ५, १० – १ ।
९. अथर्ववेद — ७, ४८, ३ । इसी के साथ ७, ४८, २ को देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि विश्पत्नी से सिनीवाली का कुछ सम्बन्ध था ।
१०. अथर्ववेद — ६, १४१, २–३ ।

सकता है परन्तु लक्ष्मी शब्द किसी देवी का भी उस समय द्योतक था, उनको पापी इत्यादि शब्द से अथर्ववेद में सम्बोधित किया है तथा लोहा गर्म करके उसे दागने को कहा है।

"प्रपतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत
अयस्मयेनांकेन द्विषते त्वा सजामसि।"[1]

अथर्ववेद के इसके आगे के मन्त्रों में हमें दो प्रकार की लक्ष्मी मिलती हैं, एक पापी और एक अच्छी। कदाचित् अच्छी लक्ष्मी आर्यों की श्री देवी थी और पापी अनार्यों की। इन्हीं का पुराणों के समय में अलक्ष्मी और लक्ष्मी नाम हो गया होगा। ऐसा अनुमान होता है कि आदिवासियों की इस देवी को आर्य अपने घर में घुसने से निषेध करते थे परन्तु पीछे चलकर इनको इस देवी को अपना लेना पड़ा, जैसा हमें यजुर्वेद के 'श्रीश्चते लक्ष्मी सपत्न्याः' मंत्र[2] और श्री सूक्त के मंत्रों से जान पड़ता है। लक्ष्मी को अथर्ववेद में हिरण्यहस्त भी कहा है।[3]

'श्री' शब्द अथर्ववेद में भी ऋग्वेद की भाँति किसी देवी विशेष का द्योतक नहीं ज्ञात होता। 'श्री' शब्द सम्पत्ति के अर्थ में कई स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है,[4] तथा तेज के[5] और सुन्दरता के अर्थ में भी[6] परन्तु किसी देवी के अर्थ में नहीं।

ऐसा ज्ञात होता है कि इस संहिता के समय तक कदाचित् 'श्री' शब्द का अर्थ ऋग्वेद काल से कुछ कम व्यापक हो चला था, परन्तु 'लक्ष्मी' या 'श्री' का कोई विशेष रूप नहीं बन पाया था।

श्री सूक्त, जो ऋग्वेद के पाँचवें मंडल के परिशिष्ट के रूप में हमें प्राप्त होता है, विद्वानों के मतानुसार यह परवर्ती काल का है। इसमें 'श्री' तथा 'लक्ष्मी शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची मिलते हैं। कदाचित् उस समय तक लक्ष्मी को आर्यों ने अपनाना प्रारम्भ कर दिया था। यहाँ हमें श्री अथवा लक्ष्मी एक देवी के रूप में मिलती है (श्रियं देवीम्)[7], यह देवी कैसी है (हिरण्यवर्णाम्)[8] सुवर्ण के रंगवाली है तथा (सुवर्ण-रजतस्रजम्) सुवर्ण तथा चाँदी का स्रज धारण किये हुए है। 'स्रज' शब्द ऋग्वेद में कई स्थानों पर आया है[9] अश्वनी को पुष्करस्रज कहा है।[10] इस शब्द का अर्थ मस्तक पर बंधने की माला ही ज्ञात होता है। इस प्रकार की सुवर्ण तथा रजत के लम्बे दानों की बनी हुई जूतिया आज भी स्त्रियाँ मस्तक पर आश्विन कृष्ण अष्टमी को पूजा करके पहिनती हैं। (जूतिया एक प्रकार की माला होती है जिसमें यव के आकार के लम्बे मनके चाँदी और सोने के लगे रहते हैं)

गले में पद्म की माला है (पद्ममालिनीम्), इनका मुख चन्द्रमा की भाँति गोल है (चन्द्राम्) आँखें हिरनी की भाँति हैं (हरिणीम्) तथा सुवर्ण के आभूषणों से सुसज्जित है (हिरण्यमयीम्), सद्यः स्नाता होने

---

१. अथर्ववेद -- ७, ११५, १-४।
२. वाजसनेयि -- ३१-२२।
३. अथर्ववेद -- ७, ११५, २।
४. अथर्ववेद -- ६, ७३, १; ९, ५, ३१; ६, ६, ६;, १०, ६, २६; १२, २, ४५
५. अथर्ववेद -- १२, ५, ७; १३, १, ६; २०, १०, २।
६. अथर्ववेद -- ८, २, १४; २०, १४३, २।
७. श्रीसूक्त -- ३।
८. श्रीसूक्त -- १।
९. ऋग्वेद -- ४, २८, ६; ८, ४८, १५।
१०. ऋग्वेद -- १०, ८४, ३।

के कारण शरीर से जल टपक रहा है (आर्द्राम्), मुख पर संतोष के भाव हैं (तृप्ताम्), उनका प्रभा-मण्डल चन्द्रमा की भांति गोल है, उसमें से किरणें निकल रही हैं (चन्द्राम् प्रभासाम्), पद्म पर स्थित है, (पद्मस्थिताम्) एक हाथ में पद्म है (पद्मिनेमिम्), दूसरे में विल्व फल[1], यह रथारूढ़ है जो सुवर्ण का है (हिरण्यप्रकाराम्) जिसके आगे घोड़े जुते हुए हैं[2], जिनके दोनों ओर हाथी चिग्घाड़ रहे हैं (हस्तिनादप्रमोदिनीम्)।

इस सूक्त में मणिभद्र यक्ष का लक्ष्मी से सम्बन्ध ज्ञात होता है (मणिनासह) तथा श्रीर्मा देवी से भी। श्रीर्मा देवी या सिरिमा देवता की मूर्ति भारहुत में प्राप्त हुई है। भारहुत की सिरिमा देवता भी श्री देवी की भाँति बहुत से आभूषणों से सुसज्जित हैं[3], इनके मस्तक के ऊपर एक प्रभामण्डल बना हुआ है जिस पर कमलदल अंकित है। इस देवता के दक्षिण कर में कमल था जो अब टूट गया है ऋद्धि से भी, जो कुबेर की स्त्री कही गई हैं[4], 'श्री' का कुछ सम्बन्ध होना चाहिये (कीर्तिम् ऋद्धिम् ददातु मे)।[5] इनकी प्रसन्नता गंध के अर्पण से प्राप्त होती है (गन्धद्वारां) इस कारण इन पर पुष्प, चन्दन, अगर इत्यादि सुगन्धित द्रव्य चढ़ाए जाते हैं, जैसे यक्षपूजन में व्यवहृत होते हैं। श्रीसूक्त के अनुसार इनके ऋषि कर्दम, चिक्लीत, श्रीत तथा आनन्द थे। कदाचित् ये ही इनकी उपासना के सृजनकर्ता थे, इसी कारण इनका यहाँ स्मरण किया गया है। इस सूक्त के पढ़ने से ऐसा भास होता है जैसे कोई वणिक अपने व्यापार के हेतु जाते हुए अपने देवता से धन इत्यादि देने की प्रार्थना कर रहा हो तथा उनसे अपने को सर्व प्रकार की हानि तथा कष्ट से बचाने के हेतु निवेदन करता हो। 'क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्। अभूतिमसमृद्धिञ्चसर्वान्निर्णुद मे गृहात्।' (श्रीसूक्त ८)।

अथर्ववेद संहिता तक कुबेर उत्तर के दिग्पाल के रूप में नहीं प्रतिष्ठित हुए थे, यहाँ तो उत्तर के दिग्पाल सोम मिलते हैं[6]। कदाचित् इस समय तक कुबेर को देवता के रूप में आर्यों ने नहीं अपनाया था। इस श्रीसूक्त में 'देवसखः' का अर्थ कुबेर किया जाता है और ऐसा अनुमान होता है कि इस काल तक भी इनको देवता की पदवी नहीं प्राप्त हुई थी।

शंख को अथर्ववेद में हिरण्यजाः तथा समुद्र से उत्पन्न आयुष्य प्रदान करनेवाला बताया गया है,[7] परन्तु इसका सम्बन्ध लक्ष्मी से इस काल तक नहीं जोड़ा गया था। श्रीसूक्त में भी कहीं शंख शब्द नहीं आया है। पीछे विष्णुधर्मोत्तर पुराण में शंख को हम लक्ष्मी के एक हाथ में पाते हैं।[8]

विष्णुपत्नी अथर्ववेद में भी मिलती हैं[9] परन्तु इनका सम्बन्ध लक्ष्मी से नहीं मिलता। विष्णुपत्नी का विश्पत्नी से सम्बन्ध मिलता है तथा विश्पत्नी का सिनीवली से। सिनीवली को उत्तम अंगोंवाली, सुभगा,

---

१. श्रीसूक्त – ६; विष्णुधर्मोत्तर पुराण – ३, ८२, ७।

२. श्रीसूक्त – २ (अश्वपूर्वाम् रथमध्याम्)।

३. सी० शिवराम मूर्ति –– ए गाइड टु दी आर्केआलाजिकल गैलेरीज आफ दी इण्डियन म्यूजियम, फलक १ – डी०।

४. महाभारत –– ८, ११७, ६।

५. श्रीसूक्त –– ७।

६. अथर्ववेद –– ३, २७, १–६, श्रीसूक्त –– ७।

७. अथर्ववेद –– ४, १०, १–४।

८. विष्णुधर्मोत्तर –– ३, ८२, ७।

९. अथर्ववेद –– ७, ४६, ३।

पृथुजघना कहा है।[1] इनको एक मंत्र में विष्णुपत्नी भी कहा गया है।[2] गोंडा का मत है कि सिनीवली शब्द भूमि का द्योतक है[3] जो आगे चलकर भूमि देवी के रूप में, हमें विष्णु की एक पत्नी के स्वरूप में मिलती है।

अमावस्या की तिथि लक्ष्मीपूजन के निमित्त क्यों चुनी गई है, इसका कुछ संकेत हमें अथर्ववेद में मिलता है। अमावस्या के दिन इन्द्र इत्यादि देवता एक स्थान पर एकत्रित होते हैं[4], इस कारण अमावस्या की तिथि धन की देनेवाली मानी गयी है[5]। कदाचित् इसीलिये लक्ष्मी का पूजन कार्तिक की अमावस्या को होता है।

शतपथ ब्राह्मण में 'श्री' एक परम सुन्दरी देवी के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होती है। प्रजापति अपने तप के द्वारा इनको प्रकट करते हैं, जैसे यूनानियों के देवता जीयस अपने मस्तक से पालस अथेनी को प्रकट करते हैं, तथा उनसे सम्भाषण करते हैं[6]। इनके स्वरूप को देखकर देवता मोहित हो जाते हैं और उनको मार डालना चाहते हैं, परन्तु प्रजापति के कहने पर उन्हें छोड़ देते हैं और उनकी सब विभूतियाँ ले लेते हैं, जैसे भोजन, राज्य, प्रताप, धन, अधिकार इत्यादि। ये विभूतियाँ श्री के पास पुनः देवताओं को आहुति देने पर चली जाती हैं। इस प्राचीन कथा से भी यह संकेत मिलता है कि कदाचित् ये भारत के आदिवासियों की कोई देवी थीं, जिनसे आर्य देवताओं को आहुति दिलवाने की कथा का प्रकरण बनाकर इन्हें अपने देवताओं के संग में मिला लिया गया। ये देवी सब विभूतियों की देनेवाली थीं।

शतपथ के अनुसार जिन देवताओं में श्री है वे अमर तथा ज्योतिर्मय हैं[7]। जिनको श्री की प्राप्ति होती है उनमें तेज, ऐश्वर्य इत्यादि सदैव बने रहते हैं[8]। अश्वमेध यज्ञ के प्रकरण में अश्व का पूजन करती हुई यजमान स्त्री को श्रीस्वरूपा कहा है[9], क्योंकि इस पूजन से राजा को श्री अर्थात् ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, जो दिग्विजय के पश्चात् मिलना अनिवार्य है। श्री को भोज्य अर्थात् भोग्य भी कहा है[10]। राजसूय यज्ञ के प्रकरण में राजा जिस व्याघ्रचर्म के आसन पर बैठता है उसे भी 'श्री' कहा गया है[11], परन्तु यहाँ आसन को श्री कहने का तात्पर्य यह है कि राजा अपने तेज सहित उस आसन पर बैठता है, इस कारण उसके उठने के पश्चात् भी प्रायः दर्शकों को उस स्थान पर अपनी श्रद्धा के कारण राजा के तेज का भास होता है। श्रेष्ठ शब्द का, जो श्री से बना है, अर्थ उत्तम, सबसे ऊँचा, उत्कृष्ट, नायक, मस्तक इत्यादि वेदों तथा ब्राह्मणों में मिलता है (१२)।

---

१. अथर्ववेद -- ७, ४६, २; ऋक् -- २, ३२, ७।
२. अथर्ववेद -- ५, ७, ४६।
३. गोण्डा -- एस्पेक्ट्स ऑफ विष्णुइज्म, पृ० २२७।
४. अथर्ववेद -- ७, ७६, २।
५. अथर्ववेद -- ७, ७६, ४।
६. शतपथ ब्राह्मण -- ११, ४, ३, १; ११, ४, ३, ४।
७. शतपथ -- २, १, ४६।
८. शतपथ -- १०, १, ४, १४।
९. शतपथ -- १३, २, ६, ७।
१०. शतपथ -- ८, ६, २, ११।
११. शतपथ -- ५, ४, २, ११।
१२. अथर्ववेद -- ४, २५, ७; ६, ६, २ इत्यादि; शतपथ -- १, ६, ३, २२, १०, ३, ५, १०; १२, ८, ३, २।

शतपथ में लक्ष्म तथा लक्ष्मी दोनों शब्दों की व्याख्या स्पष्ट रूप से की गयी है। "दक्षिण तऽ है कऽ उपधति तदेतंगु पुण्या लक्ष्मीर्दक्षिणानो दच्महऽइति तस्याधस्य दक्षिणतो लक्ष्म भवति तं तुण्यं लक्ष्मीकऽ इत्याचक्षतऽ-उत्तरत स्त्रियाऽउत्तरतऽधायत नाहि स्त्री।"[१]

राजा के आसन में श्री की धारणा जैमिनि तथा ऐतरेय ब्राह्मणों में भी प्राप्त होती है,[२] जैसा पहले कहा जा चुका है, इस कथन को दर्शक की भावना का द्योतक ही समझना चाहिए। इस सिंहासन के और भागों में प्रजापति, बृहस्पति, सोम, वरुण इत्यादि का निवास कहा गया है[३], यह भी कल्पना इसी कारण की गयी कि राजा को सबका रक्षक तथा सर्वदेवरक्षित मानते थे। वसुओं ने आदित्य को इसी प्रकार के सिंहासन पर अभिषिक्त किया था, इस कारण राजाओं को ऐसे ही सिंहासन पर अभिषिक्त करते थे। कौशीतकी उपनिषद् के अनुसार ब्रह्मा के आसन को भी श्री कहा है[४]। इस कारण भी इस उपमा के आधार पर राजा के आसन को भी श्री कहा होगा। इस पर बैठने पर ही राजा शुद्ध समझा जाता था[५] तथा उसके शरीर में इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, वायु, कुबेर, वरुण तथा यम का वास समझा जाता था।[६]

ऐतरेय ब्राह्मण में श्री की इच्छा रखनेवाले को शाखा सहित बिल्ववृक्ष का यूप बनाने का निर्देश प्राप्त होता है।[७] बिल्वफल श्रीफल कहा जाता है[८] तथा श्रीसूक्त में बिल्वफल का श्री से सम्बन्ध स्पष्ट है, जैसा पहले लिखा जा चुका है। जैमिनी ब्राह्मण में श्री तथा अन्न शब्द एक साथ प्राप्त होते हैं तथा अन्न को ही श्री तथा श्री को ही अन्न कहा है[९]। कौशीतकी उपनिषद् में भी श्री तथा अन्न शब्द एक साथ ही प्राप्त होते हैं[१०]। अतः ऐसा ज्ञात होता है कि श्री का सम्पदा के अर्थ में इस काल तक व्यवहार होने लगा था। जैमिनि ब्राह्मण में एक अन्य स्थान पर यह कथा मिलती है कि असुरों से यज्ञ में भूल हुई, इस कारण उनकी श्री नष्ट हो गई[११]। यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं है क्योंकि उस प्रारम्भिक युग में धन तो अन्न, पशु, वस्त्र, आभूषण इत्यादि ही समझे जाते थे तथा ये जिसके पास यथेष्ट मात्रा में हों वही श्रेष्ठ समझा जाता था। इसी कारण श्रेष्ठी शब्द उस मुखिया का द्योतक था जो इन वस्तुओं का प्रचुर मात्रा में अपने यहाँ संग्रह कर सकता था।

बृहदारण्यक उपनिषद् में उस स्त्री में भी श्री का वास बताते हैं जिसने अपने अशुचि वस्त्र उतार दिये हैं[१२]। इसीसे मिलती-जुलती आज्ञा अथर्ववेद में मिलती है जिसमें यह कहा गया है कि पुरुष को स्त्री का अशुचि

---

१. शतपथ -- ८, ४, ४, ११।
२. जैमिनि -- २, २५; एतरेय -- ८, १२, ३।
३. ऐतरेय ब्राह्मण -- ८, १२, ३।
४. कौशीतकी -- १, ५।
५. मनु -- ५, ९४।
६. मनु -- ५, ९६।
७. ऐतरेय -- २, १, ६ तथा आगे।
८. मनु -- ५, १२०; श्रीसूक्त -- ६।
९. जैमिनि ब्राह्मण -- १, ११७।
१०. कौशीतकी -- १, ५।
११. जैमिनि -- १, १, ४, ४।
१२. बृहदारण्यक उपनिषद् -- ६, ४।

वस्त्र नहीं धारण करना चाहिए क्योंकि उससे उसकी 'श्री' या शोभा नष्ट हो जाती है।[१] तैत्तिरीय उपनिषद् में श्री से गौ, अन्न इत्यादि की प्राप्ति की चर्चा है[२]। महानारायण उपनिषद् में लक्ष्मी को उस पुरुष की पत्नी या विभूति कहा है जो सूर्य में है। इस पुरुष को पीछे चलकर विष्णु मान लिया गया[३]। इस प्रकार कदाचित् लक्ष्मी पीछे विष्णु की पत्नी बन गयीं। इस उपनिषद् में भी इन्हें गाय, धन, अन्न, पान इत्यादि सर्वप्रदाता कहा है।

अथर्ववेदीय सीतोपनिषद् में सीता को "सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृति-संज्ञिता" कहा है[४] तथा उनको महालक्ष्मी कहा है[५]। यहाँ यह भी कहा है, "श्री देवी त्रिविधं रूपं कृत्वा भगवत्संकल्पानुसारेण लोक-रक्षणार्थं रूपम् धारयति" अर्थात् लक्ष्मी ने तीन रूप धारण किये तथा भगवान् के संकल्प के अनुसार विविध रूप संसार के रक्षण के हेतु धारण करती है। कृष्णोपनिषद् में कृष्ण और रुक्मिणी को "विष्णुः लक्ष्मीरूपो व्यवस्थितः' माना है।[६] देव्युपनिषद् में लक्ष्मी को दक्ष की दुहिता कहा है।[७] सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद् में यह कथा मिलती है कि १५ श्लोक वाले श्रीसूक्त को सुननेवाले आनन्द, कर्दम, चिक्लीत इत्यादि ऋषि हैं।[८] इससे यह ज्ञात होता है कि ये ही इनके आदिवासी प्रथम उपासक थे। इसी में श्री चक्र को लिखकर लक्ष्मी को आवाहन करने का भी आदेश मिलता है[९] "श्रियं यन्त्राङ्ग दशकं च विलिख्य श्रियमावाहयेत्"। यहाँ श्री का जो स्वरूप मिलता है वह गजलक्ष्मी का है। "भूयाद्भूयाद्विपद्माभयवरदकरा तप्तकान्तिः स्वराभा शुभ्रा भ्रामेऽधयुग्मद्वयकरधृतकुम्भाद्भिरासिच्यमाना। रक्तौघा बद्धमौलिर्विमलतरदुकूलार्तवाले वनाद्या पद्माक्षी पद्मनाभोरसि कृतवसतिः पद्मागरश्री-श्रियै नः"। अर्थात् पद्म की नाभि पर बैठी हुई पद्मपत्र के समान आँखवाली, पद्म हाथ में लिये हुए, शुभ्र वस्त्र धारण किए हुए, जिनको दो हाथी कुम्भों से स्नान करा रहे हैं ऐसी मूर्ति बनानी चाहिए।[१०] इनकी स्तुति यहाँ यों है—

"श्रीलक्ष्मीवरदा विष्णुपत्नी वसुप्रदा हिरण्यरूपा स्वर्ण मालिनी रजतस्रजा
स्वर्णप्रभा स्वर्णप्रकारा पद्मवासिनी पद्महस्ता पद्मप्रिया मुक्तालंकारा
चन्द्रसूर्या बिल्वप्रिया ईश्वरी भुक्तिर्मुक्तिर्विभूतिर्ऋद्धिः समृद्धिः कृष्टिः
पुष्टिर्धनदा धनेश्वरी श्रद्धा भोगिनी भोगदा सावित्री धात्री विधात्रीत्यादिव"[११]

भावार्थ यह है कि वर देनेवाली श्रीलक्ष्मी जो विष्णुपत्नी हैं, जो वसुप्रदा हैं, जो हिरण्यरूपा हैं, जिनके गले में स्वर्ण की माला है, जो चांदी की माला मस्तक पर धारण किए हुए हैं, जिनकी स्वर्ण के समान प्रभा है,

---

१. अथर्ववेद —— १४, १, २७।
२. तैत्तिरीय उपनिषद् —— १, ४।
३. महानारायण उपनिषद्।—— १, १२।
४. सीतोपनिषद् —— १४।
५. सीतोपनिषद् —— १६।
६. कृष्णोपनिषद् —— १६।
७. देव्युपनिषद् —— ८।
८. सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद् —— १, ३।
९. सौभाग्य लक्ष्म्युपनिषद् —— १, १९।
१०. सौभाग्य —— १, २८, २९।
११. सौभाग्य —— १, ३८।

स्वर्ण का जिनका प्रभामण्डल है, पद्म में जिनका वास है, जो पद्म हाथ में लिये हैं, जिन्हें पद्म प्रिय है, जिनके आभूषण मोतियों के हैं, चन्द्र तथा सूर्य की भाँति चमक रही हैं, जिन्हें बिल्वफल प्रिय है, जो ईश्वरी हैं, जो भुक्ति, मुक्ति, विभूति, ऋद्धि, समृद्धि, पुष्टि, धन की देनेवाली हैं, जो धन की देवी हैं, जो श्रद्धा से पाई जाती हैं, तथा जो सर्वभोगों को देनेवाली सावित्री, धात्री, विधात्री की भाँति हैं उनको नमस्कार है ।

गोंडा का मत है कि अवस्ता में श्री शब्द समृद्धि का द्योतक है सौन्दर्य का नहीं, क्योंकि उर्वरा शब्द अवस्ता साहित्य में उस वस्तु का द्योतक था जो व्यवहार योग्य हो तथा भोज्य वनस्पति हो इस कारण वेण्डि डाड के १८, ६३ की ऋचा में 'श्रीर' शब्द समृद्धि का द्योतक है ।[1] सोम की ही भाँति की एक दूसरी वनस्पति दूरोश यहाँ दिखाई देती है, इसे भी श्रीर कहा है[2], जैसे वेदों में सोम को कहा है । उषा को भी श्रीर कहा है तथा आहुर मजदा की पुत्री आर्मैती को भी श्रीर कहा है[3] । ओल्डन बर्ग का ध्यान है कि श्री शब्द का अर्थ सौन्दर्य का द्योतक था[4] क्योंकि श्रीर शब्द उस सुन्दर स्त्री के सम्बन्ध में प्रयुक्त हुआ है जिसके शरीर में अर्दवी सुरा अनाहिता प्रकट होती है तथा उस घोड़े के सम्बन्ध में प्रयुक्त हुआ है जिसमें तिश्त्रय प्रकट होते हैं । देवी की बाहें गोरी तथा श्रीर बतायी गयी हैं । इस प्रकार इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि 'श्री' शब्द उस काल में ईरान में प्रचलित तो था परन्तु ऋग्वेद की ही भाँति वह किसी देवी का द्योतक नहीं था । भारत में वैदिक युग के पश्चात् श्री और लक्ष्मी शब्द, धन प्रदान करनेवाली किसी यक्षिणी (जनदेवी) के साथ जोड़ दिए गए और उनका उस काल का प्रचलित स्वरूप अपना लिया गया ।

---

१. गोण्डा -- आस्पेक्ट्स ऑफ विष्णुइज्म पृ० २०४ ।

२. अवस्ता -- ७, ६, १६-३२; १०, ७ तथा आगे ।

३. गोण्डा -- वही पृ० २०६ ।

४. ओल्डनबर्ग -- वैदिक वर्ड्स फार बियुटीफुल एण्ड बियुटी इत्यादि रूपम् सं० ३२, अक्तूबर १६२७, पृष्ठ ६६ ।

: ४ :

प्राचीन बौद्ध तथा जैन साहित्य में लक्ष्मी का स्वरूप

बौद्ध तथा जैन दोनों धर्मों ने लोक-संग्रह के स्थान पर जीवन में त्याग को महत्व दिया। इस कारण इन धर्मों के आचार्यों ने लक्ष्मी की ओर से जनसाधारण का आकर्षण हटाने का प्रयत्न किया। परन्तु मनुष्य यदि तृष्णा पर विजय पा जाय तो वह देवता हो जाय। उस काल में बहुतों ने इस प्रवृत्ति को अपने मन से हटाने का प्रयत्न किया परन्तु सफलता सबको तो नहीं मिली। लक्ष्मी का पूजन मानसिक तथा वाचिक चलता ही रहा। मिलिन्द पन्ह में लक्ष्मी-पूजकों के पंथ का एक साधारण विवरण हमें मिलता है[1]। निद्देस की पंथों की सूची में इस पंथ को स्थान ही नहीं दिया गया है, कदाचित् इसी कारण से कि उधर लोगों का मन ही न जाय। परन्तु इन सब प्रयत्नों के परे भी लक्ष्मी की ओर से जनसाधारण का मन नहीं हटाया जा सका तथा ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के भारहुत के कठघरे के स्तम्भों पर तथा सांची के तोरणों पर लक्ष्मी विविध स्वरूपों में विद्यमान है। मिलिन्द पन्ह के देखने से तो ऐसा ज्ञात होता है कि लक्ष्मी पंथी इस देश में वैसे ही अधिक संख्या में थे जैसे और धर्मानुयायी। प्रत्येक शुक्रवार को ये उपासक गुप्त अर्चना तथा पूजा करते थे। प्रत्येक पूजन-पद्धति कदाचित् प्राचीन आदिवासियों के यहाँ से हिन्दू-धर्म में आई थी तथा उसका कुछ संकेत हमें यहाँ प्राप्त होता है क्योंकि अथर्ववेद काल तक लक्ष्मी को आर्य बहुत अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे, जैसा पूर्व में कहा जा चुका है[2], चाहें उन्हें परम पुरुष की विभूतियों के रूप में स्वीकार कर चुके, हों[3] उसी प्रकार जैसे हारीति को बौद्ध धर्मावलम्बी देवी के रूप में तो स्वीकार कर चुके थे, परन्तु वे उन्हें श्रद्धा के भाव से कभी नहीं देख सके। अश्वघोष के सौन्दरानन्द में भी लक्ष्मी की मूर्ति का संकेत तो मिलता है परन्तु उनके प्रति कोई श्रद्धा का भाव नहीं दिखाई देता[4] :

सा पद्मरागं वसनं वसाना,
पद्मानना पद्मदलायताक्षी।
पद्मा विपद्मा पतितेव लक्ष्मीः;
शुशोष पद्मस्रगिवातपेन।

दीग्घनिकाय के ब्रह्मजाल सुत्त में तो इनकी पूजा[5] का निषेध किया गया है, परन्तु इनका प्रचार इतना था कि ये साँची तथा भारहुत में कई स्थानों पर हमें खुदी हुई प्राप्त होती हैं तथा इनको भारहुत के एक लेख में देव कुमारिका कहा है[6]।

---

१. मिलिन्द पञ्ह —— १९१।

२. अथर्ववेद —— ७, ११५, १–४।

३. शुक्ल यजुर्वेद —— ३१–२२ (यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि ऋग्वेद में लक्ष्मी शब्द अन्तिम दसवें मण्डल में मिलता है तथा यजुर्वेद में भी ३१वें अध्याय में।।

४. अश्वघोष —— सौन्दरानन्द – ६, २६।

५. दीग्घ निकाय —— १, ११।

६. वरूआ सिन्हा – भारहुत इन्स्क्रिपशन्स पृष्ठ ७४।

जातकों के देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि बौद्धों ने जनसाधारण के विश्वास से प्रभावित होकर इन्हें पीछे अपना लिया था, जैसे बौद्ध उग्रतारा को हिन्दुओं ने लक्ष्मी का एक रूप मान कर अपना लिया था[१] जातक ५३५ में लक्ष्मी, दक्षिण दिशा की देवी असा, पश्चिम दिशा की श्रद्धा तथा उत्तर की हिरी के साथ, पूर्व की देवी मान ली गई थी परन्तु फिर भी इनकी भर्त्सना की गई क्योंकि ये अपनी कृपा प्रदान करते समय मूर्खों तथा विद्वानों में भेद नहीं करतीं। प्रायः मूर्ख इनको विद्वानों से अधिक प्रिय होते हैं। इस जातक का यह विवरण सरस्वती तथा लक्ष्मी की प्रचलित प्रतिद्वद्विन्ता की कथा का बीज ज्ञात होता है। आज जनसाधारण में यह प्रसिद्ध है कि जहाँ लक्ष्मी का निवास होता है वहाँ सरस्वती का नहीं तथा जहाँ सरस्वती विराजती हैं वहाँ लक्ष्मी का पदार्पण नहीं होता। यहाँ एक जातक में एक राजा आसा, सध्धा, हिरि तथा सिरि के बीच का झगड़ा निपटाते हैं। सिरि प्रभात काल के तारे की भाँति सुन्दर है। वे कहती हैं जिस पर मैं प्रसन्न हो जाऊँ, वह सभी सुख प्राप्त कर लेता है। दूसरी देवियाँ उनकी भर्त्सना करती हैं, क्योंकि उनकी कृपा के बिना विद्वान् तथा चतुर भी विफल हो जाते हैं तथा उनकी कृपा से आलसी तथा कुरूप भी संसार में सफलता प्राप्त कर लेते हैं[२]। इस प्रकार का अपराध लगने पर सिरि हिरी से हार जाती हैं।

सिरि काल कर्ण जातक में (३९२) सिरिमाता धतरट्ठ की पुत्री कही गई हैं जो बौद्धधर्म में पूर्व के दिक्पाल माने गए हैं तथा जिनकी मूर्ति भारहुत में मिली है[३]। वे कहती हैं कि मनुष्यों को विजय दिलानेवाली मैं ही हूँ, मैं ही श्री, मैं ही लक्ष्मी, मैं ही भूरिपन्ना हूँ। कदाचित् यह वही सिरि मां देवता हैं जिनकी मूर्ति हमें भारहुत से मिली है, जिसका संकेत पहिले किया जा चुका है।

धम्मपद अट्ठकथा (११; १७) में श्री को राज्य की भाग्यदेवी माना है, "रज्ज सिरीद यका देवता"। इसी प्रकार की धारणा हिन्दू धर्म में भी प्राप्त होती है—"राज्यदा राज्यहन्त्री च लक्ष्मी देवी नमोस्तुते"[४] मैत्रीवल जातक आर्य सूर जातक माला में लक्ष्मी को पद्मालया कहा गया है। पद्म के सरोवर को छोड़कर तुममें वास करें, ऐसी प्रार्थना मिलती है। कुछ इसी प्रकार की प्रार्थना श्री सूक्त में भी प्राप्त होती है (श्रीसूक्त ६७।) जापान की बौद्धकथाओं के अनुसार लक्ष्मी हारिति की पुत्री मानी गई हैं[५]। कुछ सम्बन्ध इन दोनों में अवश्य

---

१. पं० कन्हैया लाल मिश्र —— सौभाग्य लक्ष्मी (बम्बई – सं० १९८८) पृष्ठ १०५ श्लोक १२ त्वरिता पातु मां नित्यमुग्रतारा सदावऽतु।

२. इसी प्रकार के भाव हमें हिन्दू धर्म में भी प्राप्त होते हैं —— कन्हैया लाल मिश्र —— सौभाग्य लक्ष्मी —— पृष्ठ २३।

सत्येनाशौचसत्वाभ्याम् तथा शीलादिभिर्गुणैः।
त्यज्यन्ते ते नराः सद्यः सन्त्यक्ता ये त्वयाऽमले॥
त्वयावलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः।
कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि॥
स श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान्।
स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः॥

३. कुमार स्वामी —— यक्षाज, ख. २, पृष्ठ ४।

४. उपर्युक्त —— पृष्ठ ६४।

५. कुमार स्वामी —— अर्ली इण्डियन आईकोनोग्राफी श्री लक्ष्मी —— पृष्ठ १७७।
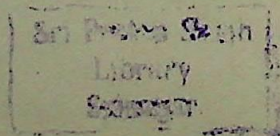
झलकता है, क्योंकि कौशाम्बी में भी इन दोनों की मूर्तियाँ एक ही मन्दिर में पाई गई हैं[१]। परन्तु लक्ष्मी की मूर्ति हारिति के दक्षिण की ओर स्थित थी इससे ऐसा ज्ञात होता है कि लक्ष्मी को हारिति से श्रेष्ठ मानते थे।

षष्ठी देवी से तो श्री का सम्बन्ध था ही, क्योंकि श्रीसूक्त को षष्ठी कल्प में पढ़ने का आदेश मानवगृह्य सूत्र में प्राप्त होता है[२] षष्ठी देवी की पूजा आज भी बालक के उत्पन्न होने पर छठवें दिन की जाती है। इनसे हारिति से कुछ सम्बन्ध अवश्य था क्योंकि हारिति भी बालकों से ही सम्बन्धित थीं[३] तथा आज उनकी पूजा शीतल देवी के रूप में होती है।

जैन साहित्य में सर्वप्रथम श्री के अभिषेक का दर्शन हमें महावीर स्वामी की माता त्रिशला के स्वप्न में होता है[४] यहाँ जो स्वरूप प्राप्त होता है वह गजलक्ष्मी का है जिसमें दोनों ओर दो गज भगवती लक्ष्मी को स्नान करा रहे हैं तथा देवी पद्म के सरोवर से उत्पन्न होते हुए एक पद्म पर स्थित हैं। इस दर्शन का फल उत्तम समझा जाता है, क्योंकि इसे महावीर स्वामी के, जो इस संसार के निस्तार करनेवाले हैं, आगमन का सूचक इस कल्प में माना है। यह विवरण इस प्रकार है—

"पौमद्दह कमलवासिनीम् सिरिम् भगवैम पिच्छै हिवन्त सेल सिहरे
दिसाग। इण दोरू पीवर करभि सिच्चमाणिम्।

अर्थात् कमल के ताल में कमल पर वास करनेवाली भगवती श्री हिमालय पर हाथी, हाथियों की सूड़ों से स्नान कराई जाती हुई। इसी स्थान पर श्री की सुन्दरता का भी वर्णन है।

हीरामानिक संग्रहालय के कल्पसूत्र की एक प्रति में लक्ष्मी की कमल पर स्थित एक मूर्ति चित्रित की है, परन्तु इसमें कारीगर की भूल से इन्हें हाथी स्नान कराते हुए नहीं दिखाये गये हैं[५] चित्र (क)।

भगवती सूत्र में यही विवरण धरिणि के चौदह स्वप्नों में एक मिलता है परन्तु यहाँ केवल 'अभिसेय' शब्द से इस दृश्य को व्यक्त किया गया है[६] यहाँ भी गजलक्ष्मी का ही स्वरूप आपेक्ष्य है।

हेमचन्द्र के पीछे के लिखे हुए परिशिष्ट परवन में श्लोक १२ में श्री को श्रीदेवी कहा है तथा यह इंगित किया है कि इनके हाथ में कमल देवताओं के पूजन के हेतु है तथा इनका वास हिमालय में है जिसका नाम पद्मह्लद है अर्थात् पद्मों से भरा हुआ बड़ा सरोवर[७]।

उद्योतना की कथा में कुवलय माता के रूप में वे जैन धर्म के प्रधान तत्वों से अंकित एक परिपत्र राजा को प्रदान करती हैं। जैन धर्मावलम्बी पूर्ण कलश या पुन्नकलस में भी लक्ष्मी का वास मानते हैं और इस पर दो आँखें अंकित करते हैं[८]

---

१. गोविन्द चन्द्र —— दी पारथूर आफ दी बुद्धिस्ट गाडेसेज आफ कौशाम्बी —— मंजारी—— मई १९५६, पृष्ठ १६, प्लेट २।
२. मानव गृह्य सूत्र – २, १३।
३. पोल लुई कुशो —— मिथोलाजी आजियाटिक, पृष्ठ ६५।
४. पर्युषणा कल्प —— ३६।
५. आनन्द० के० कुमार स्वामी —— दी कांकरर्स लाइफ इन जैन पेण्टिंग — जे० आई० एस० ओ० ए० खण्ड ३, न० २ — १९३५ —— पृष्ठ १३३, प्लेट ३५ – ४।
६. बारनेट —— अन्तगद दसाओं, पृष्ठ २४।
७. कुमार स्वामी —— उपर्युक्त —— पृष्ठ १३६।
८. गोण्डे —— आसपेक्ट्स आफ विष्णुइज्म —— पृष्ठ २२०।

श्री संवनाम का एक विहार भी हमें पाटलिपुत्र में प्राप्त होता है, जहाँ जैनांग समूह श्री महावीर स्वामी के निर्वाण के १६४ वर्ष पश्चात् संग्रहीत हुआ था[१] कदाचित यह श्री से सम्बन्धित कोई स्थान था। जैन लोग पूर्ण कलश में भी श्री वास समझते हैं अब उसको प्रतिमा का स्वरूप देने के हेतु उस पर आँखें भी बनाते हैं: चित्र (ख)[२]।

इस प्रकार जैन धर्म में भी जहाँ महावीर की माता को इनका दर्शन महावीर के आगमन का सुख संवाद-सूचक माना गया वहाँ भी इनकी पूजा-अर्चना को विशेष महत्व नहीं दिया गया। बौद्ध धर्म में तो इन्हें दूर ही रखने का प्रयत्न दिखाई देता है। यदि इनका प्रभाव जनता पर बना रहा तो उसका कारण था मनुष्य की तृष्णा तथा सुखी जीवन व्यतीत करने की इच्छा। बढ़ते हुए बौद्ध संघों को धनिक महाजनों की आवश्यकता थी, जिनसे पर्याप्त भोजन और वस्त्र प्राप्त हो सके तथा जो विहारों का निर्माण करा सकें। ऐसी दशा में उनके देवी-देवताओं को अनिच्छापूर्वक भी मानना ही पड़ा। फूशे की धारणा कि सांची इत्यादि स्थानों पर अंकित गजलक्ष्मी की मूर्ति बुद्ध की माता माया की द्योतक है, भ्रान्ति पूर्ण प्रतीत होती है[३]। यदि इस प्रकार की अंकित मूर्ति माया की होती तो अश्वघोष लक्ष्मी की टूटी हुई मूर्ति का विवरण न देता, जैसा पहिले लिखा जा चुका है।

❀

---

१. नागेन्द्रनाथ वसु — भारतीय लिपि तत्त्व — पृ० ४०।
२. कुमार स्वामी — दी कांकरर्स लाइफ इन जैन पेंटिंग — उपर्युक्त — पृ० १३६।
३. फूशे — आर्केआलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया मेमायर — २४६ — पृ० २।

: ५ :

पुराणों में लक्ष्मी का स्वरूप

पुराणों के काल के विषय में अनेक मत-मतान्तर हैं परन्तु यह अब प्रायः माना जाने लगा है कि इसके कुछ भाग बहुत प्राचीन हैं।[१] इनमें प्रायः सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित मिलते हैं। प्रायः अठारहों पुराणों में ये वर्णन तो प्राप्त होते ही हैं, परन्तु कहीं-कहीं भेद मिलता है। कुछ बातें बहुत प्राचीन ज्ञात होती हैं जो कदाचित् गाथाओं के रूप में विद्यमान थीं, परन्तु कुछ बातें पीछे की जोड़ी हुई ज्ञात होती हैं। भाषा को देखने से भी ज्ञात होता है कि कुछ पुराण के अंश तो पहिले के हैं और कुछ बाद के, परन्तु इनमें कितना अंश प्राचीन है तथा कितना अर्वाचीन, यह कहना अभी कठिन है। यहाँ यवन, शक, पह्लव तथा हूण भी मिलते हैं और ऋग्वेद के पुरु, कुत्स, त्रसदस्यु भी मिलते हैं तथा सिद्धार्थ (बुद्ध), राहुल, मौर्य, नन्द इत्यादि भी।

परन्तु पुराणों में वर्णित जो कथाएँ हमें प्राप्त होती हैं वे जन-विश्वास से सम्बद्ध अवश्य थीं। प्रायः पुराणों की अधिकतर कथाओं का सम्बन्ध, ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर ईसा पश्चात् आठवीं शताब्दी तक के, जनविश्वासों से ज्ञात होता है। देवी-देवताओं के मूर्त स्वरूप यहाँ हमें मिलते हैं तथा उनके विषय में कथाएँ भी प्राप्त होती हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि पुराण के काल में मूर्तियों के पूजन का विशेष प्रचार हो गया था, तथा यज्ञ, हवन इत्यादि की ओर से लोगों का प्रेम कम हो चला था।[२] बौद्ध तथा जैन धर्म के प्रचार का यह स्वाभाविक परिणाम था।

जो सामग्री हमें यहाँ देवी-देवताओं की प्रतिमा के विषय की मिलती है, उसके देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि पौराणिक काल तक देव प्रतिमा बनाने के निमित्त कुछ नियम भी बन गये थे जिससे साधारण जन भी प्रतिमा को देखते ही देवता को पहचान सकें, इस लिए यह भी कह दिया गया था कि "आयुधम् वाहनम् चिन्हम् यस्य देवस्य यद्भवेत्"[३]। यहाँ हमें देवालय के बनाने के नियम मिलते हैं, जिन्हें पृथ्वी शोध कर बनाने का निर्देश मिलता है[४]। इस काल में अनुमानतः बहुत से मन्दिर बन गये थे तथा पूजा की पद्धति भी निश्चित हो चुकी थी। व्रत, उपवास इत्यादि भी जैनों के सम्पर्क से हिन्दुओं में चल पड़े थे।[५]

लक्ष्मी के स्वरूप का यहाँ विशद वर्णन हमें प्राप्त होता है तथा इनकी मूर्ति की पूजा का विधान भी मिलता है।

---

१. इ० जे० शपसेन केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया (एस० चन्द एण्ड को० फर्स्ट इण्डियन रीप्रिन्ट – १९५५) –पृष्ठ २९६, ए० एम० टी० जाकसन –– सेनटेनरी वाल्यूम आफ दी जनरल आफ दी रायल हिस्टारिकल सोसाइटी बाम्बे ब्रांच, पृष्ठ ७३।

२. नारद पुराण – पूर्व खण्ड –– २४, १४।

३. विष्णु धर्मोत्तर पुराण –– ३, ९४, ४५।

४. विष्णु धर्मोत्तर पुराण –– ३, ९४, १।

५. उपर्युक्त –– ३, १५४, १–१५।

श्री संवनाम का एक विहार भी हमें पाटलिपुत्र में प्राप्त होता है, जहाँ जैनांग समूह श्री महावीर स्वामी के निर्वाण के १६४ वर्ष पश्चात् संग्रहीत हुआ था[१] कदाचित यह श्री से सम्बन्धित कोई स्थान था। जैन लोग पूर्ण कलश में भी श्री वास समझते हैं अब उसको प्रतिमा का स्वरूप देने के हेतु उस पर आँखें भी बनाते हैं: चित्र (ख)[२]।

इस प्रकार जैन धर्म में भी जहाँ महावीर की माता को इनका दर्शन महावीर के आगमन का सुख संवाद-सूचक माना गया वहाँ भी इनकी पूजा-अर्चना को विशेष महत्व नहीं दिया गया। बौद्ध धर्म में तो इन्हें दूर ही रखने का प्रयत्न दिखाई देता है। यदि इनका प्रभाव जनता पर बना रहा तो उसका कारण था मनुष्य की तृष्णा तथा सुखी जीवन व्यतीत करने की इच्छा। बढ़ते हुए बौद्ध संघों को धनिक महाजनों की आवश्यकता थी, जिनसे पर्याप्त भोजन और वस्त्र प्राप्त हो सके तथा जो विहारों का निर्माण करा सकें। ऐसी दशा में उनके देवी-देवताओं को अनिच्छापूर्वक भी मानना ही पड़ा। फूशे की धारणा कि सांची इत्यादि स्थानों पर अंकित गजलक्ष्मी को मूर्ति बुद्ध की माता माया की द्योतक है, भ्रान्ति पूर्ण प्रतीत होती है[३]। यदि इस प्रकार की अंकित मूर्ति माया की होती तो अश्वघोष लक्ष्मी की टूटी हुई मूर्ति का विवरण न देता, जैसा पहिले लिखा जा चुका है।

❀

---

१. नागेन्द्रनाथ वसु — भारतीय लिपि तत्त्व — पृ० ४०।

२. कुमार स्वामी — दी कांकरर्स लाइफ इन जैन पेंटिंग — उपर्युक्त — पृ० १३६।

३. फूशे — आर्केआलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया मेमायर — २४६ — पृ० २।

: ५ :

पुराणों में लक्ष्मी का स्वरूप

पुराणों के काल के विषय में अनेक मत-मतान्तर हैं परन्तु यह अब प्रायः माना जाने लगा है कि इसके कुछ भाग बहुत प्राचीन हैं।[१] इनमें प्रायः सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित मिलते हैं। प्रायः अठारहों पुराणों में ये वर्णन तो प्राप्त होते ही हैं, परन्तु कहीं-कहीं भेद मिलता है। कुछ बातें बहुत प्राचीन ज्ञात होती हैं जो कदाचित् गाथाओं के रूप में विद्यमान थीं, परन्तु कुछ बातें पीछे की जोड़ी हुई ज्ञात होती हैं। भाषा को देखने से भी ज्ञात होता है कि कुछ पुराण के अंश तो पहिले के हैं और कुछ बाद के, परन्तु इनमें कितना अंश प्राचीन है तथा कितना अर्वाचीन, यह कहना अभी कठिन है। यहाँ यवन, शक, पह्लव तथा हूण भी मिलते हैं और ऋग्वेद के पुरु, कुत्स, त्रसदस्यु भी मिलते हैं तथा सिद्धार्थ (बुद्ध), राहुल, मौर्य, नन्द इत्यादि भी।

परन्तु पुराणों में वर्णित जो कथाएँ हमें प्राप्त होती हैं वे जन-विश्वास से सम्बद्ध अवश्य थीं। प्रायः पुराणों की अधिकतर कथाओं का सम्बन्ध, ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर ईसा पश्चात् आठवीं शताब्दी तक के, जनविश्वासों से ज्ञात होता है। देवी-देवताओं के मूर्त स्वरूप यहाँ हमें मिलते हैं तथा उनके विषय में कथाएँ भी प्राप्त होती हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि पुराण के काल में मूर्तियों के पूजन का विशेष प्रचार हो गया था, तथा यज्ञ, हवन इत्यादि की ओर से लोगों का प्रेम कम हो चला था।[२] बौद्ध तथा जैन धर्म के प्रचार का यह स्वाभाविक परिणाम था।

जो सामग्री हमें यहाँ देवी-देवताओं की प्रतिमा के विषय की मिलती है, उसके देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि पौराणिक काल तक देव प्रतिमा बनाने के निमित्त कुछ नियम भी बन गये थे जिससे साधारण जन भी प्रतिमा को देखते ही देवता को पहचान सकें, इस लिए यह भी कह दिया गया था कि "आयुधम् वाहनम् चिन्हम् यस्य देवस्य यद्भवेत्"[३]। यहाँ हमें देवालय के बनाने के नियम मिलते हैं, जिन्हें पृथ्वी शोध कर बनाने का निर्देश मिलता है[४]। इस काल में अनुमानतः बहुत से मन्दिर बन गये थे तथा पूजा की पद्धति भी निश्चित हो चुकी थी। व्रत, उपवास इत्यादि भी जैनों के सम्पर्क से हिन्दुओं में चल पड़े थे।[५]

लक्ष्मी के स्वरूप का यहाँ विशद वर्णन हमें प्राप्त होता है तथा इनकी मूर्ति की पूजा का विधान भी मिलता है।

---

१. इ० जे० रापसेन केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया (एस० चन्द एण्ड को० फर्स्ट इण्डियन रीप्रिन्ट – १९५५) – पृष्ठ २६६, ए० एम० टी० जाकसन –– सेनटेनरी वाल्यूम आफ दी जनरल आफ दी रायल हिस्टारिकल सोसाइटी बाम्बे ब्रांच, पृष्ठ ७३।
२. नारद पुराण – पूर्व खण्ड –– २४, १४।
३. विष्णु धर्मोत्तर पुराण –– ३, ९४, ४५।
४. विष्णु धर्मोत्तर पुराण –– ३, ९४, १।
५. उपर्युक्त –– ३, १५४, १–१५।

नारद पुराण (अध्याय ९२) तथा कूर्म पुराण के प्रथम अध्याय में जिन अठारहों पुराणों के नाम गिनाये गये हैं उनमें ब्रह्म पुराण सर्वप्रथम आता है। इसमें वर्णित "लक्ष्मी तीर्थ" के प्रसंग में लक्ष्मी तथा दरिद्र का कथोपकथन बड़ा सुन्दर है।[१] लक्ष्मी कहती हैं कि कुल, शील इत्यादि सब होते हुए भी मेरे बिना देहधारी मनुष्य जीता हुआ भी मृतक के समान है। दरिद्र उत्तर देता है कि जहाँ हम हैं वहाँ काम, क्रोध, मद, लोभ, मात्सर्य इत्यादि रहता ही नहीं, न वहाँ धन का उन्माद होता है, न ईर्ष्या होती है, न उद्धत वृत्ति। इस पर लक्ष्मी जी पुनः कहती हैं कि मेरी कृपा से सारे प्राणी पूज्य हो जाते हैं, निर्धन शिव तुल्य हो जाता है, तुरन्त उसके पास 'धी', 'श्री', ह्री, शान्ति और कीर्ति चली जाती हैं। कैसा भी मनुष्य हो वही सर्वोत्तम हो जाता है, उसमें सभी गुण दिखाई देने लगते हैं और सब उसको प्रणाम करते हैं, इस कारण से मैं श्रेष्ठ हूँ। इस पर फिर दरिद्र कहता है कि मैं लज्जा से मरता हूँ क्योंकि मैं तुम्हारा ज्येष्ठ सुत हूँ। तू पुरुषोत्तम को छोड़कर पाप से रमण करती है।

अन्ततः ये अपना झगड़ा लेकर गौतमी के पास जाते हैं। गौतमी जी सर्व प्रकार की "श्री" का वर्णन करती हुई कहती हैं कि जहाँ कहीं सुन्दरता है, वहीं लक्ष्मी है—

"ब्रह्म-श्रीश्च तपः—श्रीश्च यज्ञ-श्रीः कीर्तिसंज्ञिता।
धनश्रीश्च यशःश्रीश्च विद्या प्रज्ञा सरस्वती।
भुक्तिश्रीश्चाथ मुक्तिश्च स्मृतिर्लज्जा धृतिः क्षमा।
..................यद्रम्यम् सुन्दरम् वा तत्
लक्ष्मीविजृम्भितम्॥"[२]

विष्णु के वक्षःस्थल पर श्रीवत्स के चिह्न का भी विवरण यहाँ प्राप्त होता है।[३] पुरुषोत्तम क्षेत्र के वर्णन में "श्री" और विष्णु का सम्वाद मिलता है जिससे यह पता चलता है कि कहीं-कहीं विष्णु की मूर्ति के साथ "श्री" की मूर्ति नहीं बनाई जाती थी।[४] ब्रह्म पुराण में मेरु पर्वत के अन्तर्गत द्रोण पर्वत को अग्नि, सूर्य इन्द्र इत्यादि के साथ लक्ष्मी तथा विष्णु का भी क्रीड़ा-स्थल बताया गया है।[५] नारायण तथा "श्री" को,[६] लक्ष्मी और विष्णु को,[७] स्त्री-पुरुष के उदाहरण के रूप में कई स्थानों पर वर्णन किया गया है। कृष्ण को "श्रियः कान्त', श्रीपते तथा श्रीनिवास भी कहा गया है।[८]

पद्म पुराण में भी विष्णु के वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न प्राप्त होता है।[९] इनको श्रियायुक्त

---

३. ब्रह्म पुराण -- अध्याय १३७।
४. उपर्युक्त -- १३७-३२, ३३, ३४, ३५, ३६।
१. ब्रह्म पुराण -- ४५-४१, ६४।
२. उपर्युक्त -- ४५-७५।
३. उपर्युक्त -- १८-५४।
४. उपर्युक्त -- ३४-४४।
५. उपर्युक्त -- १४४-२२।
६. उपर्युक्त -- ५२-१०।
७. पद्म पुराण -- २, १८, १४।

भी कहा है "श्रिया युक्तम् भासमानम् सूर्यकोटिसमप्रभम्"[१] । विष्णु के शत नामों में श्रीपति, श्रीधर, श्रीद, श्रीनिवास नाम मिलते हैं[२] । ऐसा अनुमान होता है कि इस काल तक विष्णु सहस्र नाम नहीं बना था ।

विष्णु पुराण में दक्ष की कन्याओं में लक्ष्मी का नाम मिलता है—"श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिर्मेधा पुष्टिस्तथा क्रिया ।"[३] इनका विवाह दक्ष ने धर्म के साथ किया ।[४] दूसरी इनकी उत्पत्ति भृगु तथा ख्याति से मिलती है—"देवो धातृविधातारौ भृगोः ख्यातिरसूयत । श्रियं च देवदेवस्य पत्नी नारायणस्य या ।।"[५] तीसरी कथा इनके क्षीर सागर से उत्पन्न होने की मिलती है ।[६] इसका समन्वय इस प्रकार किया है कि विष्णु जगत्पिता आदि पुरुष हैं तथा लक्ष्मी नित्य जगन्माता । यदि लक्ष्मी स्वाहा हैं तो विष्णु हुताशन, यदि लक्ष्मी ऋद्धि हैं तो विष्णु स्वयम् कुबेर, लक्ष्मी इन्द्राणी का स्वरूप हैं, मधुसूदन इन्द्र स्वरूप इत्यादि[७] । तथा यह भी कहा गया है कि यह भेद कल्प-कल्प की कथाओं के भेद से उत्पन्न हुआ है ; समुद्र-मंथन से, जन्म की कथा और पुराणों की भाँति यहाँ मिलती है । दुर्वासा के शाप से इन्द्र "श्री" से रहित हुए, तब वे भगवान् के पास गये, उन्होंने समुद्र-मंथन की आज्ञा दी, तब समुद्र से चौदह रत्न निकले, उनमें लक्ष्मी भी थीं[८] । तथा लक्ष्मी को दिग्गजों ने हेमपात्र द्वारा गंगाजल से स्नान कराया[९]—"गङ्गाद्याः सरितस्तोयैः स्नानार्थमुपतस्थिरे । दिग्गजा हेमपात्रस्थमादाय विमलं जलम्" । यही रूप गजलक्ष्मी का कदाचित् हमें बौद्ध-स्तूपों के तोरणों पर तथा विविध स्तूपों के खम्भों पर मिलता है । क्षीर सागर ने इन्हें पद्म की माला दी और विश्वकर्मा ने इन्हें सब आभूषण प्रदान किये । इन्होंने सब देवताओं को देखा तथा माला श्रीहरि के गले में डाली, अर्थात् उनका वरण किया[१०] । इनकी प्रार्थना जो इन्द्र ने की, उसमें इनको जल से उत्पन्न, पद्मालया, पद्मकरा, पद्मपत्रनिभेक्षणा, पद्ममुखी, पद्मनाभप्रिया कहा है । इस स्तुति में इनके सब गुण तथा सब रूप प्राप्त होते हैं—

इन्द्र उवाच—

> नमस्ये सर्वलोकानां जननीमब्जसम्भवाम् । श्रियमुन्निद्रपद्माक्षीं विष्णुवक्षःस्थस्थिताम् ।
> पद्मालयां पद्मकरां पद्मपत्रनिभेक्षणाम् । वन्दे पद्ममुखीं देवीं पद्मनाभप्रियामहम् ।।११८।।
> त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोकपावनी । संध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती ।।
> यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने । आत्मविद्या च देवि त्वं विमुक्तिफलदायिनी ।।१३०।।
> आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च । सौम्यासौम्यैर्जगद्रूपैस्त्वयैतद्देवि पूरितम् ।।१३१।।
> का त्वन्या त्वामृते देवि सर्वयज्ञमयं वपुः । अध्यास्ते देवदेवस्य योगचिन्त्यं गदाभृतः ।।१३२।।
> त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयम् । विनष्टप्रायमभवत्त्वयेदानीं समेधितम् ।।१२३।।

---

१ उपर्युक्त -- २, १८, ४३ ।
२. उपर्युक्त -- २, ८७, ११ ।
३. विष्णु पुराण -- १, ७, २३ ।
४. उपर्युक्त -- १, ७, २४ ।
५. उपर्युक्त -- १, ८, १५ ।
६. विष्णु पुराण -- १, ८, १६ ।
७. उपर्युक्त -- १, ८, १७–३५ ।
८. उपर्युक्त -- १, ९, १–१०० ।
९. उपर्युक्त -- १, ९, १०३ ।
१०. उपर्युक्त -- १, ९, १०५, १०६ ।

दाराः पुत्रास्तथा गारसुहृद्धान्यधनादिकम् । भवन्त्यतन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणान्नृणाम् ।।१२४।।
शरीरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सुखम् । देवि त्वद्दृष्टिदृष्टानां पुरुषाणां न दुर्लभम् ।।१२५।।
त्वं माता सर्वलोकानां देवदेवो हरिः पिता । त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम् ।।
मा नः कोशं तथा गोष्ठं मा गृहं मा परिच्छदम् । मा शरीरं कलत्रं च त्यजेथाः सर्वपावनि ।।१२७।।
मा पुत्रान्मा सुहृद्वर्गं मा पशून्मा विभूषणम् । त्यजेथा मम देवस्य विष्णोर्वक्षःस्थलालये ।।१२८।।
सत्वेन सत्यशौचाभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः । त्यज्यन्ते ते नराः सद्यः सन्त्यक्ता ये त्वयामले ।
त्वया विलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः । कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ।।
स श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान् । स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः ।।१३१।।
सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः । पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लभे ।।१३२।।

इनका विविध अवतार विविध कल्पों में होता है । इस कारण इनकी उत्पत्ति[1] भृगु और ख्याति से वर्णित है तथा समुद्र-मन्थन से भी इनका जन्म पद्म से भी हुआ तथा सीता के रूप में पृथ्वी से भी, पुनः रुक्मिणी के रूप में इन्होंने विष्णु को अपना स्वामी बनाया, जैसा भृगु तथा ख्याति की सुता ने किया था उसीके अनुरूप समय समय पर देह धारण की[2] और विष्णु को ही अपना स्वामी बनाया । भारत में कुछ लोग नग्न रहते थे इसका भी संकेत यहाँ मिलता है ।

"तपस्यभिरतान् सोऽथ मायामोहौ महासुरान् ।
मैत्रेय ददृशे गत्वा नर्मदातीरसंश्रितान् ।
ततो दिगम्बरो मुण्डो बर्हिपिच्छधरो द्विज ।।
मायामोहोऽसुरान् श्लक्ष्णमिदं वचनमब्रवीत्"[3]

इससे ऐसा ज्ञात होता है कि भारत के आदिवासियों की कई जातियां नग्न रहती थीं, इसी कारण कदाचित् उनकी देवी भी नग्न रहती होंगी,—ऐसा अनुमान होता है । ये लोग वेद की निन्दा करते थे तथा यज्ञ कर्म आदि नहीं करते थे, इससे इन्हें मोक्ष नहीं प्राप्त होता था[4] ।

शिव पुराण में जलन्धर के युद्ध के प्रकरण में यह कथा प्राप्त होती है कि विष्णु लक्ष्मी के सहित जलंधर के यहाँ निवास करते हैं[5] । यहाँ मोहिनी महेश की माया है तथा उमा वही मोहिनी देवी जगत् माता हैं : "उमाख्या सा महादेवी त्रिदेव जननी परा"[6] । वह कहती हैं : "अहमेव त्रिधा भिन्ना तिष्ठामि त्रिविधैर्गुणैः, गौरी लक्ष्मी सुरा ज्योती रजस्सत्वतमोगुणैः"[7] । तुलसी लक्ष्मी की अवतार हैं ।[8] समुद्र-मन्थन का प्रकरण यह प्राप्त होता है, परन्तु इसमें लक्ष्मी की उत्पत्ति नहीं मिलती है[9] ।

---

१. उपर्युक्त -- १, ९–११७–१३२ । गीता प्रेस -- सं० १९० ।
२. उपर्युक्त — १, ९, १४१–१४६ ।
३. उपर्युक्त -- ३, १८, १–२, ३, १८, ४८ ।
४. उपर्युक्त -- ३, १८, २१–२८ ।
५. शिव पुराण — २, ५, १८, १४ ।
६. उपर्युक्त -- २, ५, २६–१६ ।
७. उपर्युक्त ६ -- २, ५, २६–३४ ।
८. उपर्युक्त -- २, ५, २६–४७, ५० ।
९. उपर्युक्त -- ३, १, १६, १–४२ ।

श्रीमद्भागवत महापुराण में 'श्री' भगवान् विष्णु की सेवा करती हुई वैकुण्ठ में शुक को दिखाई देती हैं[१]। यहाँ इनके जन्म के विषय में अन्य पुराणों में वर्णित समुद्र-मन्थन वाली कथा मिलती है[२] जिसकी कान्ति से विद्युत् के समान सब दिशाएँ प्राज्वल्यमान हो गयीं, ऐसा ध्यान यहाँ मिलता है।[३] इनके अभिषेक का भी वर्णन यहाँ प्राप्त होता है[४]। इनके हाथ में कमल है--"ततोऽभिषिषिचुर्देवीं श्रियम् पद्मकरां सतीम्। दिग्गिभाः पूर्णकलशैः सूक्तवाक्यैर्द्विजेरितैः।"[५] ये कोशेय वस्त्र धारण किये हुए हैं तथा वरुण द्वारा पहनाई हुई वैजयन्ती की माला मस्तक को सुशोभित कर रही है और विश्वकर्मा के बनाये हुए विचित्र आभूषणों से सुसज्जित हैं। पद्म का हार सरस्वती को भाँति इनके भी गले में है, तथा न ग की आकृति का कुण्डल कानों में हैं[६]। इनका स्वरूप निम्नांकित है--

"ततः कृतस्वस्त्ययनोत्पलस्त्रजं, नदद्द्विरेफाम् परिगृह्य पाणिना।
चचाल वक्त्रं सुकपोलकुण्डलम्, सव्री डहासं दधती सुशोभनम् ॥
स्तनद्वयं चाति कृशोदरी समम्, निरन्तरं चन्दनकुङ्कुमोक्षितम्।
ततस्ततो नूपुरवल्गुशिञ्जितैर्विसर्पती हेमलतेव सा बभौ ॥"[७]

इन्होंने मधुसूदन को वरा और उनके गले में नये कमल की माला पहिनाई[८]।

यहाँ रुक्मिणी को 'श्री' कहा है[९]। इनसे प्रद्युम्न का जन्म हुआ। प्रद्युम्न मकरध्वज काम व थे, इस कारण भी 'श्री' का सम्बन्ध मकर से किया गया।

भविष्य पुराण में विशेष कुछ सामग्री लक्ष्मी के विषय में प्राप्त नहीं होती, परन्तु यहाँ मत्स्य पुराण की भाँति प्रतिमा बनाने की कुछ मान्यताएँ मिलती हैं[१०] जो परिशिष्ट में दी जा रही हैं। सूर्य को विशेष पुष्पों को चढ़ाने के प्रसंग में यह श्लोक मिलता है "तस्य चायतनम् भक्त्या गैरिकेणोपलेपयेत्, प्राप्नुयान्महतीं लक्ष्मीं रोगैश्चापि प्रमुच्यते"।[११] जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि लक्ष्मी शब्द धन का पर्यायवाची हो गया था। सत्राजित् की कथा में "अश्रय" का अर्थ दरिद्र मिलता है[१२] तथा यहाँ राजा अपनी स्त्री की लक्ष्मी से समानता करता हुआ कहता है कि "येनावयोरियं लक्ष्मीर्मृत्युलोके सुदुर्लभा"।[३]

---

१. भागवत -- २, ९, १३।
२. उपर्युक्त -- ८, ८, ७।
३. उपर्युक्त -- ८, ८, ८।
४. उपर्युक्त -- ८, ८, १०-११।
५. उपर्युक्त -- ८, ८, १४।
६. उपर्युक्त -- ८, ८, १५-१६। नागों की आकृति का कुण्डल इनके नाग से सम्बन्ध का द्योतक है।
७. उपर्युक्त -- ८, ८, १७-१८।
८. उपर्युक्त -- ८, ८, २३, २४।
९. उपर्युक्त -- १०, ५२, २३।
१०. भविष्य महापुराण -- ब्रह्म पर्व १, अध्याय १३२-१-३१।
११. उपर्युक्त -- ब्रह्म पर्व १, अध्याय ६८-१७।
१२. भविष्य महापुराण -- ब्रह्मपर्व १, अध्याय ११६-२५।
१३. उपर्युक्त -- ब्रह्मपर्व १, अध्याय ११६-४२।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में कई प्रकार की लक्ष्मी का स्वरूप वर्णित है, स्वर्ग की लक्ष्मी, राजाओं की राज्य-लक्ष्मी, गृहलक्ष्मी, वैष्णवों की वैष्णवी इत्यादि। यहाँ ये अदिति रूपिणी भी वर्णित हैं[१]। कृष्ण को यहाँ स्वयम्भू कहा है और उनके मन से लक्ष्मी की उत्पत्ति बताई गयी है, ये देवी गौर वर्णवाली रत्नजटिता अलंकारों से विभूषित कही गयी हैं। ये पीत वस्त्र धारण किये हुए हैं तथा नवयौवना हैं। ये सर्व ऐश्वर्य तथा सर्व सम्पत्ति की देवी हैं। स्वर्ग में ये स्वर्गलक्ष्मी हैं तथा राजाओं के यहाँ ये राज्यलक्ष्मी के रूप में विद्यमान हैं। ये हरि के पृष्ठ भाग पर स्थित वर्णित हैं।[२]

"आविर्बभूव मनसः कृष्णस्य परमात्मनः। एका देवी गौरवर्णा रत्नालंकारभूषिता।
पीतवस्त्रपरीधाना सस्मिता नवयौवना। सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसम्पत्फलप्रदा॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु॥६६॥
सा हरेः पुरत. स्थित्वा परमात्मानमीश्वरम्। तुष्टाव प्रणता साध्वी भक्तिनम्रात्मकन्धरा" ॥६७॥

ये गौर वर्ण वाली हैं, परन्तु इनकी आभा तप्त कांचन के समान हैं[३]।

कृष्ण और लक्ष्मी ने सरस्वती को, जो कृष्ण से उत्पन्न हुई थीं, ब्रह्मा को रत्न तथा तथा माला सहित दिया, यह विचित्र विवरण यहाँ प्राप्त होता है।[४]

आगे चलकर प्रकृति खण्ड में यह कथा मिलती है कि भगवान् कृष्ण स्वेच्छा से द्विधारूप हो गये— "स्वेच्छया च द्विधारूपो वभूव ह। स्त्रीरूपा वामभागांशा दक्षिणांशः पुमान्स्मृतः।" यह अतीव सुन्दर स्वरूप देवी का था—

"......................अतीव कमनीयां च चारुचम्पकसन्निभाम्॥
पूर्णेन्दुविम्वसदृशनितम्बयुगलां पराम्। सुव.सकदलीस्तम्भसदृशश्रोणिसुन्दरीम्॥३१॥
श्रीयुक्तश्रीफलाकारस्तनयुग्ममनोरमाम्। पुष्ट्या युक्तां सुललिताम् मध्यक्षीणाम् मनोहराम्॥
अतीव सुन्दरीं शान्तां सस्मितां वक्रलोचनाम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्॥
शश्वच्चक्षुश्चकोराभ्याम् पिबन्तीं सततं मुदा। कृष्णस्य सुन्दरमुखं चन्द्रकोटिविनिंदकम्॥
कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना। समं सिन्दूरबिन्दुं च भालमध्ये च बिभ्रतीम्॥
सुवक्रकबरीभारम् मालतीमाल्यभूषितम्। रत्नेन्द्रसारहारं च दधतीं कान्तकामुकीम्।"
इत्यादि[५]।

यहाँ और पुराणों की भाँति सरस्वती, गंगा तथा लक्ष्मी के कलह की कथा भी मिलती है, जिससे ये तीनों देवियाँ मृत्युलोक में आयीं। यहाँ ये तीनों हरि की भार्या के रूप में मिलती हैं[७] "लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तिस्रो भार्या हरेरपि"। शाप के कारण लक्ष्मी तुलसी हुई। इनके जन्म की कथा यों मिलती है कि रास-मण्डल में कृष्ण

१. ब्रह्मवैवर्त पुराण — प्रकृति खण्ड – अध्याय – ३, ७२–७८।
२. उपर्युक्त — ब्रह्म खण्ड ३, ६६–६७।
३. उपर्युक्त — ब्रह्म खण्ड ३, ६६।
४. उपर्युक्त — ब्रह्म खण्ड ६, १।
५. ब्रह्मवैवर्त पुराण — प्रकृति खण्ड – २, ३०–३६।
६. उपर्युक्त — प्रकृति खण्ड – ६, १७–४१।
७. उपर्युक्त — प्रकृति खण्ड – ६, १७।

के वाम अंग से एक देवी का जन्म हुआ। वे देवी द्वादशवर्षीया थीं—"अतीव सुन्दरी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला।" "यथा द्वादशवर्षीया रम्या सुस्थिरयौवना"[1]। ये देवी स्वयम् दो हो गयीं : "स. च देवी द्विधा भूता"[2] इनके वाम अंग से लक्ष्मी तथा दक्षिण अंग से राधिका हुईं—"तद्वामांशा महालक्ष्मीर्दक्षिणांशा च राधिका"[3]। ये दोनों—"समा रूपेण वर्णेन तेजसा वयसा त्विषा। यशसा वाससा मूर्त्या भूषणेन गुणेन च।" कृष्ण भी चतुर्भुज तथा द्विभुज दो रूप हो गये तथा द्विभुज रूप में भगवान् ने राधिका का ग्रहण किया तथा चतुर्भुज रूप में लक्ष्मी को।

"द्विभुजो राधिकाकान्तो लक्ष्मीकान्तश्चतुर्भुजः। गोलोके द्विभुजस्तस्थौ गोपैर्गोपीभिरावृतः।
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठं प्रययौ पद्मया सह। सर्वांशेन समौ तौ द्वौ कृष्णनारायणौ परौ"[6]॥

महालक्ष्मी ने योग से अपना नाना रूप धारण कर लिया—

"स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च शक्रसम्पत्स्वरूपिणी। पतितेषु च मर्त्येषु राजलक्ष्मीश्च राजसु।
गृहलक्ष्मीर्गृहेष्वेव गृहिणी च कलांशया। सम्पत्स्वरूपा गृहिणां सर्वमङ्गलमङ्गला।" इत्यादि[7]॥

इनका एक रूप क्षीर सागर की कन्या का भी हुआ, "क्षीरोदसिन्धु कन्या सा श्रीरूपा पद्मिनीषु च[8]।" "इनकी पूजा पहिले नारायण ने की, फिर ब्रह्मा ने तथा उसके उपरान्त शिव ने। उसके उपरान्त स्वयम्भू मनु ने तथा ऋषियों, गंधर्वों ने। नागों ने पाताल में इनकी पूजा की।" चैत्र, पौष तथा भाद्रपद में मंगलवार को इनकी पूजा करनी चाहिए। त्रिभुवन में वर्ष के अन्त में पौष की संक्रान्ति को मनुष्य इनकी पूजा करते हैं[9]। ये नारायण की प्रिया वैकुण्ठवासिनी वैकुण्ठ की अधिष्ठात्री देवी हैं[10]।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में इनके जन्म की एक और कथा यों मिलती है कि एक समय दुर्वाशा के शाप से इन्द्र की 'श्री' नष्ट हो गयी। उस समय लक्ष्मी रुष्ट होकर स्वर्ग को छोड़ कर चली गयीं। उस समय देवता दुःखित होकर नारायण के पास गए और उनकी आज्ञा से इन्होंने समुद्र-मन्थन किया। तब लक्ष्मी की उत्पत्ति पुनः क्षीर-सागर से हुई। उस समय इन्होंने सुरों को वर दिया और वर-माला विष्णु को दी[11]।

एक और कथा इस प्रकार की ब्रह्म वैवर्त पुराण में लक्ष्मी से सम्बन्धित मिलती है। एक बार लक्ष्मी ने कुशध्वज की कन्या के रूप में अवतार धारण किया। एक समय ये तपस्या कर रही थीं कि रावण वहाँ आया, उसने इनके साथ रमण करना चाहा, इस पर इन्होंने उसे शाप दे दिया कि वह सकुटुम्ब नष्ट हो जायगा। उसके

---

१. उपर्युक्त — प्रकृति खण्ड – ३५, ५।
२. उपर्युक्त — प्रकृति खण्ड – ३५, ७।
३. उपर्युक्त — प्रकृति खण्ड – ३५, १०।
४. उपर्युक्त — प्रकृति खण्ड – ३५, ८।
५. उपर्युक्त — प्रकृति खण्ड – ३५, १२।
६. उपर्युक्त — प्रकृति खण्ड – ३५, १४–१५।
७. उपर्युक्त — प्रकृति खण्ड – ३५, १८–२४।
८. उपर्युक्त — प्रकृति खण्ड – ३५, १६।
९. उपर्युक्त — प्रकृति खण्ड – ३५, २५–३०।
१०. उपर्युक्त — प्रकृति खण्ड – ३६, १।
११. उपर्युक्त — प्रकृति खण्ड – ३६, ४–१०।

पश्चात् इन्होंने अपनी देह छोड़ दी और दूसरे जन्म में सीता के रूप में अवतरित हुईं।[१] इस प्रकार सीता को लक्ष्मी का अवतार बताया गया है।

लक्ष्मी कहाँ रहती हैं, यह भी यहाँ बताया गया है और यह भी कहा गया है कि कि ये किन स्थानों से चली जाती हैं[२]। इनके ध्यान और पूजा की विधि भी यह प्राप्त होती है। यह निम्नांकित है--

"ध्यानं च सामवेदोक्तं यदुक्तं ब्रह्मणं पुरा। ध्यानन हरिणा तेन तान्निबोध वदामि ते ।।६।।
सहस्रदलपद्मस्य कर्णिकावासिनीं पराम् । शरत्पार्वे कोटेन्दुप्रभाजुष्टकरां वराम् ।।१०।।
स्वतेजसा प्रज्वलन्तीं सुखदृश्यां मनोहराम् । प्रतप्तकाञ्चननिभां शोभां मूर्तिमतीं सतीम् ।।११।।
रत्नभूषणभूषाढ्यां शोभितां पीतवाससा । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रम्यां सुस्थिरयौवनाम् ।।१२।।
सर्वसंपत्प्रदात्रीं च महालक्ष्मीं भजे शुभाम् । ध्यानेनानेन तां ध्यात्वा चोपचारैः सुसंयुतः ।।१३।।
संपूज्य ब्रह्मवाक्येन चोपहाराणि षोडश । ददौ भक्त्या विधानेन प्रत्येकं मन्त्रपूर्वकम् ।।१४।।
प्रशंस्यानि प्रहृष्टानि दुर्लभानि वराणि च । अमूल्यरत्नखचितं निर्मितं विश्वकर्मणा ।।१५।।
आसनं च विचित्रं च महालक्ष्मी प्रगृह्यताम् ।।१५।।"[३]

आगे इन्द्र प्रार्थना करते हैं—

"ॐ नमः कमलवासिन्यै नारायण्यै नमो नमः । कृष्णाप्रियायै सारायै पद्मायै च न० ।।५२।।
पद्मपत्रेक्षणायै च पद्मास्यायै न० । पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च न० ।।५३।।
सर्वसंपत्स्वरूपायै सर्वदात्र्यै न० । सुखदायै मोक्षदायै सिद्धिदायै न० ।।५४।।
हरिभक्तिप्रदात्र्यै च हर्षदात्र्यै न० । कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै न० ।।५५।।
कृष्णशोभास्वरूपायै रत्नाढ्यायै न० । संपत्त्यधिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै न० ।।५६।।
सस्याधिष्ठातृदेव्यै च सस्यलक्ष्म्यै न० । नमो बुद्धिस्वरूपायै बुद्धिदायै न० ।।५७।।
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः लक्ष्मीः क्षीरोदसागरे । स्वर्गलक्ष्मीरिन्द्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये ।।५८।।
गृहलक्ष्मीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता । सुरभिः सा गवां माता दक्षिणा यज्ञकामिनी ।।५९।।
अदितिर्देवमाता त्वं कमला कमलालये । स्वाहा त्वं च हविर्दाने कव्यदाने स्वधा स्मृता ।।६०।।
त्वं हि विष्णुस्वरूपा च सर्वाधारा वसुन्धरा । शुद्धसत्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा ।।६१।।
क्रोधहिंसावर्जिता च वरदा च शुभानना । परमार्थप्रदा त्वं च हरिदास्यप्रदा परा ।।६२।।"
.........इत्यादि (ब्रह्मवैवर्त पुराण)[४]

लिंग पुराण में समुद्र-मन्थन से लक्ष्मी की उत्पत्ति मिलती है, परन्तु अलक्ष्मी की उत्पत्ति होने के पश्चात् अर्थात् समुद्र से पहिले अलक्ष्मी निकलती हैं, फिर लक्ष्मी। इस कारण अलक्ष्मी को यहाँ ज्येष्ठा भी कहा है। इसका संकेत श्रीसूक्त में भी मिलता है।[५] अलक्ष्मी का विवाह दुःसह से होता है। दुःसह उसे छोड़कर पाताल चले जाते हैं। अलक्ष्मी भगवान् की आराधना करती हैं और उनके समक्ष भगवान् लक्ष्मी

---

१. उपर्युक्त -- प्रकृति खण्ड - १४, १-२१ ।
२. उपर्युक्त -- प्रकृति खण्ड - ३८, २७-५५ ।
३. ब्रह्म वैवर्त पुराण -- प्रकृति खण्ड - ३९, ९-१५ ।
४. उपर्युक्त -- प्रकृति खण्ड - ३९, ५२-६२ ।
५. क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं -- श्रीसूक्त ।

के सहित प्रकट हो कर उनको वरदान देते हैं कि जहाँ उनकी पूजा न होती हो वहाँ वह रहे इत्यादि । यह लक्ष्मी नारायण के साथ प्राप्त होती है[1] एक बड़ी विचित्र बात यहाँ यह है कि न दक्ष की कन्याओं में लक्ष्मी का नाम मिलता है[2] जैसा और पुराणों में मिलता है, न शिव-पार्वती विवाह में जहाँ दिति, अदिति, सावित्री, सरस्वती इत्यादि बहुत सी देवियों के नाम हैं। यहाँ नारायणी नाम अवश्य मिलता है[3], परन्तु लक्ष्मी का नहीं ।

इसी पुराण में एक लक्ष्मी दान का प्रकरण प्राप्त होता है । उसमें लक्ष्मी की मूर्ति बनाकर दान करने का निर्देश है । इसका विवरण यों है कि मंडप तथा वेदी बना कर एक सहस्र सुवर्ण मोहरों के सुवर्ण से अथवा पाँच सौ मोहरों के सुवर्ण से या १०८ मोहरों के सोने से लक्ष्मी की मूर्ति बनाई जाय । यह सब लक्षणों से युक्त हो तथा इसे वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित करके वेदी पर मण्डल बना कर उसके मध्य में रखे (वह मण्डल कदाचित् श्रीचक्र है) । फिर श्रीसूक्त से इनकी पूजा करे और उनके दक्षिण भाग में स्थण्डिल के ऊपर विष्णु गायत्री द्वारा विष्णु भगवान् की अर्चना करें । उसके पश्चात् होम करें इत्यादि ।[4] यहाँ अभाग्य-वश लक्ष्मी की मूर्ति के स्वरूप का विवरण नहीं प्राप्त होता ।

नारद पुराण में हमें जगत् की उत्पत्ति का जो स्वरूप मिलता है उसमें महा विष्णु की माया को जगत को उत्पन्न करनेवाली शक्ति कहा है—"तस्य शक्तिः परा विष्णोर्जगत् कार्य प्रवर्तिनी" ।[5] इस माया के विविध रूप हैं जैसे दुर्गा, भद्रकाली, चण्डी, माहेश्वरी, लक्ष्मी, वैष्णवी, वाराही, ऐन्द्री इत्यादि । "उमेति केचिदाहुस्तां शक्तिं लक्ष्मीं तथा परे"[6] ये भी वैसी ही सर्वव्यापी हैं जैसे विष्णु—"यथा हरिर्जगद्व्यापी तस्य शक्तिस्तथा मुने ।"[7] यहाँ मातृकाओं का स्वरूप भी मिलता है तथा वाराही और वैष्णवी का स्वरूप भी ।

विष्णु को कमला कान्त[8] तथा कमला पति[9] कहा है । इनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स के चिन्ह का भी वर्णन है—'सर्वालंकार संयुक्तम् श्रीवत्सांकित वक्षसम्'[10] । यह लोकोक्ति भी यहाँ मिलती है कि जहाँ शिव पूजा तथा विष्णु पूजा होती है वहाँ लक्ष्मी सदैव बसती हैं ।[11] यह लोकोक्ति आज भी प्रचलित है । यहाँ वामन भगवान् बलि से कहते हैं कि पृथ्वी वैष्णवी को भी कहते हैं—"पृथ्वी वैष्णवी पुण्या पृथ्वी विष्णुपालिता ।"[12] भू देवी का वैष्णवी से संबन्ध इस काल तक कदाचित् जुड़ चुका था ।

---

१. लिंग पुराण —— उत्तरार्ध – अध्याय ६ ।
२. लिंग पुराण —— पूर्वार्ध – अध्याय ६३ ।
३. लिंग पुराण —— पूर्वार्ध – अध्याय १०३ ।
४. लिंग पुराण —— उत्तरार्ध – अध्याय ३६ ।
५. नारद पुराण —— पूर्व खण्ड ३–६ ।
६. उपर्युक्त —— पूर्व खण्ड ३–१३ ।
७. उपर्युक्त —— पूर्व खण्ड ३, १२ ।
८. उपर्युक्त —— पूर्व खण्ड २, १० ।
९. उपर्युक्त —— पूर्व खण्ड ४, ६४ ।
१०. उपर्युक्त —— पूर्व खण्ड ४, ६५; ७०, २६, ३३; उ० ख० ५२, ७७ ।
११. उपर्युक्त —— पूर्व खण्ड ११–६ ।
१२. उपर्युक्त —— पूर्व खण्ड ११–६२ ।

महालक्ष्मी को विष्णु के दक्षिण रखना चाहिये तथा सरस्वती को वाम भाग में, यह निर्देश भी यहाँ मिलता है[१]। वासुदेव को भी लक्ष्मी सहित बनाने का आदेश प्राप्त होता है[२]। विष्णु के साथ इनकी पूजा करने का भी निर्देश है[३]। यहाँ श्रीकवच, श्रीयन्त्र के विषय की तथा मन्त्र सिद्धि की भी सामग्री प्राप्त होती है।[४]

लक्ष्मी को यहाँ कमला कहा है[५] तथा यहाँ इनका कुबेर से भी सम्बन्ध दर्शाया गया है[६]। शेष-शायी भगवान विष्णु की प्रतिमा का वर्णन भी नारद पुराण में मिलता है[७]। इसमें लक्ष्मी भगवान् के चरण चाप रही हैं। इस प्रकार की अनन्त शायी भगवान् विष्णु की अनेकों मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

मार्कण्डेय पुराण में लक्ष्मी को दत्तात्रेय की स्त्री कहा है तथा उनका स्वरूप बताते हुए कहा है कि इनका मुख चन्द्रमा की भाँति है, ये कमल लोचनी और पीन पयोधरा हैं, इनके शरीर से सुगन्ध निकल रही है, ये मधुर भाषिणी तथा स्त्रियों के सभी गुणों से विभूषित हैं।

वामपार्श्वस्थितामिष्टामशेषजगतां शुभाम् ।
भार्यां चास्य सुचार्वाङ्गीं लक्ष्मीमिन्दुनिभाननाम् ।
नीलोत्पलाभनयनां पीनश्रोणिपयोधराम् ।
गदन्तीं मधुरां भाषां सर्वैर्योषिद्गुणैर्युताम् ।।

इनको असुर ले जाते हैं परन्तु दत्तात्रेय कहते हैं कि असुर इनको सिर पर ले गये हैं इसलिये ये वापस आ जायँगी[८]।

महालक्ष्मी के स्वरूप को वर्णन करते हुए मार्कण्डेय पुराण के देवी माहात्म्य में यह लिखा हुआ है कि गुप्त रूपी देवी के तीन अवतार हैं, लक्ष्मी, महाकाली, सरस्वती, जो तीन तत्वों की प्रतिनिधि हैं राजस, तामस, सात्विक। लक्ष्मी को धन देनेवाली देवी कहा है। राजस गुणों की प्रतीक लक्ष्मी हैं। इनके हाथ में मरूलुंग अनार, गदा, पात्र तथा योनियुक्त लिंग का वर्णन यहाँ मिलता है। ये आदि शक्ति कही गयी हैं[९]।

एक दूसरे स्थान पर लक्ष्मी को दक्ष की कन्या भी कहा है। जिन्हें धर्म ने पत्नी के रूप में स्वीकार किया[१०]। इनसे दर्प का जन्म हुआ "श्रद्धा कामम् श्रीश्च दर्पम्[११]"। यहाँ 'श्री' तथा लक्ष्मी में कोई भेद नहीं दिया है। श्री को देव-देव नारायण की पत्नी भी कहा है[१२]।

---

१. नारद पुराण -- पूर्व खण्ड ६६-७६, १००।
२. उपर्युक्त -- पूर्व खण्ड ६६-८६।
३. उपर्युक्त -- पूर्व खण्ड ७०-४५।
४. उपर्युक्त -- पूर्व खण्ड ७०, १४६-१६०, ६८-१-८२।
५. उपर्युक्त -- पूर्व खण्ड ८६-७८।
६. उपर्युक्त -- पूर्व खण्ड ८६-८२।
७. उपर्युक्त -- उत्तर खण्ड ५२-७६।
८. मार्कण्डेय पुराण -- १८-३६, ४०, ४७।
९. गोपीनाथ राव -- एलीमेण्टस आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृष्ठ ३३५-३३६, ३३७।
१०. मार्कण्डेय पुराण -- ५०-२०, २१।
११. उपर्युक्त -- ५०-२५।
१२. उपर्युक्त -- ५२-१५।

मार्कण्डेय पुराण में एक स्थान पर कहा है कि पद्मिनी नाम की विद्या की देवी लक्ष्मी हैं--"पद्मिनी नाम या विद्या लक्ष्मीस्तस्याश्च देवता'...इनकी निधियाँ हैं पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्द, नील तथा शंख। पद्म सुवर्ण, चाँदी इत्यादि देता है, महापद्म रत्नों की प्रदाता है, मकर शस्त्र इत्यादि देता है, कच्छप निधि के प्रभाव से मनुष्य सूमड़ा हो जाता है, यह तामसी निधि है, मुकुन्द निधि से गाने बजानेवालों के व्यापार से लाभ होता है। नन्द नामक निधि सब प्रकार के व्यापार में सहायता करती है, नील नामक निधि के प्रसन्न होने पर मनुष्य वस्त्र, कपास, धानादि का संग्रह करता है तथा मूँगा-मोती इत्यादि शंख-सीप इत्यादि के व्यापार से लाभ प्राप्त करता है, शंख नाम की निधि के प्रसन्न होने पर मनुष्य अपना भरण-पोषण सुख पूर्वक करता है।

अग्नि पुराण में श्री को विष्णु की पत्नी माना है[१] तथा इनकी मूर्ति विष्णु के साथ बनाने का आदेश दिया है। लक्ष्मी के हाथ में पद्म देने को कहा है..."श्रीपुष्टि चापि कर्त्तव्या पद्म वीणा करान्विते"[२]। श्री को विष्णु के और अवतारों के साथ बनाने को लिखा है जैसे नृसिंह इत्यादि अवतारों में--"श्री पुष्टि संयुक्तं कुर्यादलेन स भद्रया[३]" तथा "दक्षिण वामके शंखं लक्ष्मीर्वा पद्मनवा[४]"। लक्ष्मी की मूर्ति बनाने में कहा है--"लक्ष्मीर्याम्य कराम्भोजा वामे श्रीफल संयुता"।[५] लक्ष्मी के एक हाथ में पद्म तथा दूसरे में श्रीफल होना चाहिये। श्रीफल बेल के फल को कहते हैं। इनको भद्रपीठ पर स्थापित करके श्रीसूक्त से इनकी षोड़शोपचार पूजा करनी चाहिए[६]।

श्री पर्वत का भी वर्णन अग्नि पुराण में आया है[७] तथा राजलक्ष्मी का भी। राजा को राजलक्ष्मी को अपने यहाँ स्थिर करने के हेतु जैसे इन्द्रपुरी में श्री की स्तुति की गयी थी वैसी करनी चाहिये। इस स्तुति में इन्हें सर्वलोकों की जननी, पद्माक्षी, विष्णु के वक्षस्थल पर स्थित कहा है।[८] इनको सर्व शक्तिमान कहा है जिनकी कृपा कटाक्ष से तुरन्त निर्गुण मनुष्य भी गुणवान् हो जाते हैं[९]।

"त्वयाऽवलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः। कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि।

स श्लाध्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान्। स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः॥"

अग्निपुराण के ६४ वें अध्याय में विष्णु से वरुण का भी सम्बन्ध प्राप्त होता है तथा लक्ष्मी और अदिति का भी[१०]।

---

१. अग्नि पुराण -- २५-१३, १२-७-१७।
२. उपर्युक्त -- ४४-४७।
३. उपर्युक्त -- ६३-९।
४. उपर्युक्त -- ४९-२।
५. उपर्युक्त -- ५०-१५।
६. उपर्युक्त -- ६२-१-१४।
७. उपर्युक्त -- २१७-१३।
८. उपर्युक्त -- २३७-१, २।
९. उपर्युक्त -- २३७-१४, १५।
१०. कुमार स्वामी -- यक्षाज, खण्ड २, पृ० ३४।

बाराह पुराण में विष्णु के हृदय पर 'श्री' या 'श्रीवत्स' के चिह्न का विवरण प्राप्त होता है[१]। इसके साथ कोस्तुभ मणि भी है। यहाँ अष्ट मात्रिका में वैष्णवी का भी स्वरूप प्राप्त होता है[२]। अन्धकासुर के वध के समय रुद्र के क्रोध की ज्वाला से उत्पन्न होती है। वैष्णवी को विष्णु की माया भी कहा है—"तिष्ठामि परमप्रीत्या मायां कृत्वा तु वैष्णवीम्[३]।" वैष्णवी का स्वरूप वैष्णवी माहात्म्य में बताया गया है। इनको "या सा रक्तेन वर्णेन सुरूपा तनुमध्यमा। शङ्खचक्रधरा देवी वैष्णवी सा कला स्मृता[४]" कहा है। इनको आगे चल कर "वैष्णवी विशालाक्षी रक्तवर्णा सुरूपिणी" भी कहा है[५]। इनका स्वरूप भी इस प्रकार का है—"नीलकुञ्चितकेशान्ता विम्बोष्ठचायतलोचना। नितम्बरसनोद्दामनूपुराढ्या सुवर्च्चसः[६]।' ये देवी "सर्वाङ्ग शोभना देवी यावदास्ते तपोऽन्विता" बताई गयी हैं[७]। सौभाग्य व्रत के दान में लक्ष्मी का हरि के साथ स्वरूप बनाने का निर्देश प्राप्त होता है "सलक्ष्मीकं हरिं वापि यथाशक्ति प्रसन्नधीः। ततस्तान् ब्राह्मणे दद्यात्पात्रभूते विचक्षणे[८]।" शिला की प्रतिमा के प्राण प्रतिष्ठा के मन्त्र में पुराण पुरुष विष्णु को लक्ष्मी से युक्त बताया है—"योऽसौ भवाँल्लक्षणलक्षितश्च लक्ष्म्या च युक्तः सततं पुराण[९]"। विष्णु को श्री से युक्त रजत प्रतिमा में बनाने का विधान प्राप्त होता है[१०]।

स्कन्द पुराण में २२ खण्ड हैं परन्तु लक्ष्मी विषयक सामग्री यहाँ बहुत थोड़ी-सी प्राप्त होती है। गन्धमादन पर्वत पर एक लक्ष्मीतीर्थ का वर्णन यहाँ मिलता है, जहाँ स्नान करने पर युधिष्ठिर को प्रभूत धन की प्राप्ति हुई थी[११]। यहाँ यह वर्णन मिलता है कि इस तीर्थ में स्नान करने से नलकूबर ने रम्भा को पाया[१२]। इसी तीर्थ में स्नान कर के कुबेर महापद्म के स्वामी हुए हैं[१३]। इससे कुबेर का तथा नलकूबर का सम्बन्ध लक्ष्मी से ज्ञात होता है। यहाँ श्री माता का ध्यान तथा उनकी पूजा प्राप्त होती है, परन्तु इस माता से भारहुत की श्रीमा देवता के स्वरूप में अन्तर मिलता है—

"श्रीमाता सा प्रसिद्धा च माहात्म्यम् शृणु भूपते।
कमण्डलु-धरा देवी घण्टाभरणभूषिता। अक्षमालयुता राजञ्छुभा सा शुभरूपिणी.....। रक्ताम्बरधरा साधुरक्ता चन्दनर्चचिता। रक्तमाल्या दशभुजा पञ्चवक्त्रा सुरेश्वरी।...."[१४]

---

१. वाराह पुराण –– १, २१, ३१–१७।
२. उपर्युक्त –– २७–३१।
३. उपर्युक्त –– १८७–१५।
४. उपर्युक्त –– ९०–३०।
५. उपर्युक्त –– ९१–५।
६. उपर्युक्त –– ९२–३, ४।
७. उपर्युक्त –– ९२–१५।
८. उपर्युक्त –– ५८–१५।
९. उपर्युक्त –– १८२–२३।
१०. उपर्युक्त –– १८६–२।
११. स्कन्द पुराण –– सेतु महात्म्य २१, १–६४।
१२. उपर्युक्त –– सेतु महात्म्य – २१, १९।
१३. उपर्युक्त –– सेतु महात्म्य – २१, २०।
१४. उपर्युक्त –– धर्मारण्य महात्म्य – १७, ११–१४।

इस प्रकार इस देवी के यहाँ पाँच मुख तथा दस हाथ मिलते हैं। सम्भव है यह स्वरूप श्रीमाता का बाद में कल्पित हुआ हो, जैसे द्विभुजा वाली लक्ष्मी का पीछे के काल की चार भुजा वाली लक्ष्मी में परिवर्तित स्वरूप। यहाँ यह वर्णन प्राप्त होता है कि ये देवी पूजित होने पर मन वांछित वर देती हैं[1]।

"प्रणभ्याङ्घ्रियुगा तेभ्यो ददाति मनसेप्सितम्।" इनके पूजन से "श्रियोऽर्थी लभते लक्ष्मीं भार्यार्थी लभते च ताम्[2]।" इन देवी ने कर्णाटक नामक दैत्य का हथिनी रूप धर कर वध किया, जो सदैव स्त्री-पुरुषों के बीच आकर विघ्न करता था[3]।

इस पुराण में यह भी वर्णन प्राप्त होता है कि इनकी पूजा वणिक् लोग प्रतिवर्ष करते हैं[4] तथा शुभ कार्यों में भी इनकी सदा पूजा करते हैं। इनको बलि देते हैं तथा मधु, क्षीर, दधि, घृत और शर्करा से इनकी पूजा करते हैं, धूप, दीप, चन्दन इनको अर्पित करते हैं, विविध धान्य तथा फल इनको भोग लगाते हैं और दीपक अर्पित करते हैं इत्यादि[5]। यह पूजा आज की दीवाली की लक्ष्मी की पूजन की भाँति प्रतीत होती है। लक्ष्मी का वास तुलसी में यहाँ वर्णित है[6] तथा लक्ष्मी को यहाँ समुद्रजा कमला पद्मवासा कहा है। "श्रियेऽमृतकणोत्पन्ना तुलसी हरिवल्लभा" इत्यादि[7]। लक्ष्मी जी हरि गौरी के पूजन से तथा तीज के व्रत से कैसे प्राप्त होती हैं यह कथा भी यहाँ मिलती है[8]। यहाँ गौरी पार्वती को लक्ष्मी की सौभाग्य दाता कहा है[9]।

वामन पुराण में लक्ष्मी बलि के पास जाती हैं उनका स्वरूप यहाँ वर्णित है। इन लक्ष्मी जी की पद्मनाभ की भाँति प्रभा है, इनके हाथ में कमल है।" "अथाभ्युपगता लक्ष्मीर्बलिं पद्मान्तरप्रभा। पद्मोद्यतकरा देवी वरदा सुप्रवेशिनी[10]" और फिर लक्ष्मी ने बलि के शरीर में प्रवेश किया[11]। ये बड़ी मनोहर स्वरूप वाली थी—"एवमुक्त्वा तु सा देवी लक्ष्मी दैत्यनृपं बलिम्। प्रविष्टा वरदा सेव्या सर्वदेव मनोरमा।"

वामन भगवान ने जब विराट रूप धारण किया उस समय लक्ष्मी उनके कटि भाग में स्थित हुईं अर्थात् परम पुरुष की पत्नी के रूप में दिखाई दीं[12]।

कूर्म पुराण में प्रारम्भ में ही समुद्र मन्थन को कथा मिलती है तथा श्री की उत्पत्ति क्षीर सागर से कही गयी है तथा इनको नारायण की पत्नी भी कहा है—"तदन्तरे भवेद्देवी श्रीर्नारायण वल्लभा[13]।" ये विशालाक्षी

---

१. स्कन्द पुराण — धर्मारण्य महात्म्य – १७, १६।
२. उपर्युक्त — धर्मारण्य महात्म्य – १७, ३७।
३. उपर्युक्त — धर्मारण्य महात्म्य – १८, १–३।
४. उपर्युक्त — धर्मारण्य महात्म्य – १८, ५–६।
५. उपर्युक्त — धर्मारण्य महात्म्य – १८, ३०–३६।
६. उपर्युक्त — चातुर्मास — १७, १३।
७. उपर्युक्त — चातुर्मास – १७, २, ५।
८. उपर्युक्त — नागर खण्ड – १६८, १–७४।
९. उपर्युक्त — काशी खण्ड उत्तरार्ध – ८७–३५।
१०. वामन पुराण — २३, १३।
११. उपर्युक्त — २३, १८।
१२. उपर्युक्त — ३१, ६२।
१३. कूर्म पुराण — पूर्व – १–३०।

श्रीं तथा पदमवासिनी थीं[१]। इनका रूप यहाँ चतुर्भुज दिखाया है तथा इनके मस्तक पर माला का वर्णन है। "चतुर्भुजा शङ्खचक्रपद्महस्ता स्रगन्विता, कोटिसूर्यप्रतीकाशा मोहिनी सर्वदेहिनाम्[२]।" ये विष्णु चिह्न से अंकित हैं[३]। पुनः इनको कमलायतलोचना कहा है "तदा श्रीरभवद्देवी कमलायतलोचना। सुरूपा सौम्यवदना मोहिनी सर्वदेहिनाम्। शुचिस्मिता सुप्रसन्ना मङ्गला महिमास्पदा। दिव्य कान्ति समायुक्ता दिव्यमाल्योपशोभिता[४]" यहाँ लक्ष्मी की अर्चना के लिये भी निर्देश है तथा श्री में और लक्ष्मी में यहाँ कोई भेद नहीं ज्ञात होता तथा इनको भगवत्पत्नी भी कहा है। "यथादेश चकारासौ तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत्, श्रियं ददाति विपुलाम् पुष्टि मेत्रां यशो बलम्। अर्चिता भगवत्पत्नी तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत्[५]।" भगवान विष्णु को श्रीपते भी कहा है[६]। महादेव के प्रसाद से पार्वती पूजन से लक्ष्मी (धन) की प्राप्ति का भी विवरण यहाँ प्राप्त होता है। —"लभते महतीं लक्ष्मीम् महादेवप्रसादतः[७]।"

लक्ष्मी के प्रादुर्भाव की एक और कथा भी मिलती है। इसके अनुसार ख्याति नाम की दक्षसुता से भृगु ने इन्हें उत्पन्न किया तथा सर्वलक्षणों से युक्त होने के कारण इनका नाम लक्ष्मी पड़ा। ये नारायण की स्त्री हुईं —"भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मी नारायणप्रिया।"........[८]।

अन्धकासुर का इन्हीं विष्णु की देवी ने वध किया था, यह भी कथा यहाँ मिलती है[९]। नारायण के हृदय पर श्रीवत्स का चिन्ह है, यह भी विवरण यहाँ प्राप्त होता है[१०]। यहाँ विष्णु का नाम श्रीनिवास भी मिलता है[११]।

मत्स्य पुराण में श्रीदेवी की मूर्ति बनाने को विधान प्राप्त होता है। यह प्रकरण इस प्रकार है

"श्रियं देवीं प्रवक्ष्यामि नवे वयसि संस्थिताम्। सुयौवनाम् पीनगण्डां रक्तौष्ठीं कुञ्चितभ्रुवम्॥
पीनोन्नतस्तनतटां मणिकुण्डलधारिणीम्। सुमण्डलम् मुखं तस्याः शिरः सीमन्त भूषणम्॥
पद्मस्वस्तिकशङ्खैर्वा भूषितां कुण्डलालकैः। कञ्चुकाबद्धगात्रौ च हारभूषौ पयोधरौ।
नागहस्तोपमौ बाहू केयूरकटकोज्वलौ। पद्मं हस्ते प्रदातव्यं श्रीफलं दक्षिणे भुजे॥
मेखलाभरणं तन्दत्तप्तकांचन सप्रभाम्। नानाभरणसंपन्नां शोभनाम्बर धारिणीम्॥
पार्श्वे तस्याः स्त्रियः कार्याश्चामरव्यग्रपाणयः। पद्मासनोपविष्टा तु पद्मसिंहासनस्थिता॥

१. कूर्म पुराण पूर्व — १–३२, ३८।
२. उपर्युक्त — १, १९ स्रग – मस्तक पर धारण करनेवाली फूल की माला का नाम है।
३. उपर्युक्त — १–५५।
४. उपर्युक्त — २–७, ८, ९।
५. उपर्युक्त — २–२१, २२।
६. उपर्युक्त — ९–२५।
७. उपर्युक्त — १२, ३२३।
८. उपर्युक्त — १३, १।
९. उपर्युक्त — १६, ३८–७४।
१०. उपर्युक्त — १, ३०।
११. कूर्म पुराण उत्तरार्ध — ३९, ८।

करिभ्यां स्नाप्यमानाऽसौ भृङ्गाराभ्यामनेकशः । प्रक्षालयन्तौ करिणौ भृङ्गाराभ्यां तथा परौ ।।
स्तूयमाना च लोकेशैस्तथा गन्धर्वगुह्यकैः । तथैव यक्षिणी कार्या सिद्धासुर निषेविता ।''
(मत्स्य पुराण २६०।४०-४७)

इसके आगे यक्षिणी की मूर्ति बनाने का विधान है। लक्ष्मी की मूर्ति विष्णु के साथ बनाने का जो प्रकरण यहाँ प्राप्त होता है इसमें विष्णु के वाम भाग में लक्ष्मी को बनाने का निर्देश मिलता है[1] —

''वामतस्तु भवेल्लक्ष्मीः पद्महस्ता शुभानना । गरुत्मानग्रतो वाऽपि संस्थाप्यो भूतिमिच्छता ।।''

इसी मूर्ति के पार्श्व में श्री तथा पुष्टि की भी मूर्ति बनाने का निर्देश है। इस प्रकार इस काल तक लक्ष्मी, श्री तथा पुष्टि के अलग-अलग ध्यान तथा अलग-अलग मूर्तियाँ बनने लगी थीं--

''श्रीश्च पुष्टिश्च कर्त्तव्ये पार्श्वयोः पद्मसंयुता ।''[2]

यहाँ वैष्णवी देवी का अलग रूप भी दिखाया गया है; इनके हाथ में लक्ष्मी की समुद्र से उत्पत्तिकी भी कथा यहाँ प्राप्त होती है--''श्रीरनन्तरमुत्पन्ना घृतात्पाण्डुरवासिनी[3]'' तथा भगवान विष्णु के उनके ग्रहण करने की भी कथा ''जग्राह कमलां विष्णु.'' कौस्तुभ[4] वैष्णवी की प्रतिमा बनाने के प्रसंग में यहाँ कहा है कि ''वैष्णव विष्णु सदृशी गरुड़े समुपस्थिता । चतुर्वाहुश्च वरदा, शङ्ख-चक्र-गदाधरा[5]'' ।

श्रीदेवी की प्रतिमा का वर्णन यहाँ इस प्रकार मिलता है—

श्रियं देवीं प्रवक्ष्यामि नवे वयसि संस्थिताम् । सुयौवनाम् पीनगण्डां रक्तौष्ठीं कुञ्चितभ्रुवम् ।।
पीनोन्नतस्तनतटाम् मणिकुण्डलधारिणीम् । सुमण्डलम् मुखं तस्याः शिरः सीमन्तभूषणम् ।
पद्म स्वस्तिक शंखैर्वा भूषितां कुञ्चितालकैः । कञ्चुकावद्ध-गात्रौ च हारभूषौ पयोधरौ ।।
नागहस्तोपमौ बाहू केयूरकटकोज्ज्वलौ । पद्मं हस्ते प्रदातव्यम् श्रीफलं दक्षिणे भुजे ।।
मेखलाभरणां तद्वत्तप्तकाञ्चसप्रभाम् । नानाभरणसंपन्नां शोभनाम्बरधारणीम् ।।
पार्श्वे तस्यास्त्रियः कार्याश्चामरव्यग्रपाणयः । पद्मासनोपविष्टा तु पद्मसिंहासनस्थिता ।।
करिभ्यास्नाप्यमानाऽसौ भृङ्गाराम्यामनेकशः । प्रक्षालयन्तौ करिणौ भृङ्गाराचां तथा परौ[6] ।।

यक्षिणी की प्रतिभा भी यहाँ मिलती है वह भी श्री से मिलती हुई है । इनकी भी सुर सिद्ध सेवा करने का विवरण मिलता है[7] ।

गरुड़ पुराण में विष्णु को श्रीपति कहा है[8]—

''श्रीपतिं जगदाधारमशुभक्षयकारकम् ।
व्रजामि शरणं विष्णुं शरणागतवत्सलम् ।।''

---

१. मत्स्य पुराण -- २५८, १२ ।
२. उपर्युक्त -- २५८, १३ ।
३. उपर्युक्त -- २५०, २ ३ ।
४. उपर्युक्त -- २५१-३ ।
५. उपर्युक्त -- २६१-२८, २९ ।
६. उपर्युक्त -- २६०-४०-४६ ।
७. उपर्युक्त -- २६१-४७ ।
८. गरुड़ पुराण -- ६-१६ ।

जहाँ पितामही के रहते माता मर जाय, वहाँ एक पिण्ड महालक्ष्मी के नाम देने की विधि गरुड़ पुराण में मिलती है। उसी से सपिण्डी करने को कहा है[१]। लक्ष्मीनारायण की मूर्ति बनाने के विषय में यहाँ केवल इतना मिलता है—

"तस्यां संस्थापयेद्धैमं हरिं लक्ष्मीसमन्वितम्।
सर्वाभरणसंयुक्तमायुधाम्बरसंयुतम्[२]।।"

इनकी पूजा कुंकुम तथा पुष्प माला से करने का विधान प्राप्त होता है[३]।

वायु पुराण में यह कथा मिलती है कि स्वायम्भुव की सुता ने लोक माताओं को उत्पन्न किया—"स्वायम्-भुवसुतायां तु प्रसूत्यां लोकमातरः[४]", इनमें "श्रद्धा लक्ष्मी धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा......[५]" ये सब धर्म को विवाही गयीं[६]। लक्ष्मी के पुत्र हुए दर्प[७]। कितना ठीक कहा है, जहाँ लक्ष्मी है वहाँ दर्प का होना स्वाभाविक है। "श्रद्धा कामं विजज्ञे वै दर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः।" ये तथा अन्य सब धर्म के लड़के हुए हैं।

एक और स्थान पर स्वायम्भुव से इनका जन्म मेधा, सरस्वती इत्यादि के साथ लिखा है—"स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मीः सरस्वती"। यहाँ हमें श्रीवत्स का चिह्न विष्णु के हृदय पर भी प्राप्त होता है।[८] 'ऋषिवंशानुकीर्तनम्' में श्री को नारायण की पत्नी कहा है[९]; फिर आगे चलकर पुरन्दर इन्द्र को भी 'श्रीपतिः' कहा है—"तत्रास्ते श्रीपतिः श्रीमान् सहस्राक्षः पुरन्दरः[१०]"। कृष्ण के चतुर्भुज रूप में श्री के सहित भी वर्णन मिलता है—"चतुर्बाहुः संजज्ञे दिव्यरूपः श्रियाऽन्वितः[११]"। इनके वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न था[१२]।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण ने लक्ष्मी की उत्पत्ति की मीमांसा की है और यह निर्णय किया है कि इनकी उत्पत्ति स्वायम्भुव मन्वन्तर में भृगु की दुहिता के रूप में हुई है—"स्वयम्भुवेऽन्तरे देवी भृगोः सा दुहिता स्मृता[१३]"। स्वारोचिष मन्वन्तर में अग्नि से[१४], औत्तमस्य मन्वन्तर में जल से[१५], तामस मन्वन्तर में

१. गरुड़ पुराण — १३–४३।
२. उपर्युक्त — १३–६५।
३. उपर्युक्त — १३–६७, ६८।
४. वायु पुराण— १०–२२।
५. उपर्युक्त — १०–२५।
६. उपर्युक्त — १०–२६।
७. उपर्युक्त — ६–८३–८५।
८. उपर्युक्त — २५–२५।
९. उपर्युक्त — २८–२।
१०. उपर्युक्त — ३४–७५।
११. उपर्युक्त — ९६–१९३
१२. उपर्युक्त — ९६–२०४।
१३. विष्णु धर्मोत्तर पुराण — १; ४१, ३३।
१४. उपर्युक्त — १; ४१, ३३।
१५. उपर्युक्त — १; ४१, ३४।

पृथ्वी से[1], रैवत मन्वन्तर में बिल्व से, चाक्षुष मन्वन्तर में[2] उत्फुल्ल कमल से तथा वैवस्वत मन्वन्तर में समुद्र मन्थन से जिन्हें हरि ने प्राप्त किया[3]। इस समुद्र से उत्पन्न लक्ष्मी का स्वरूप निम्नांकित है--

"देवी लक्ष्मीस्ततो जाता रूपेणाप्रतिमा शुभा ।।३२।।
यस्याः शुभौ तामरसप्रकाशौ पादाम्बुजौ स्पृष्टतलाङ्गुलीकौ ।
जङ्घे शुभे रोमविवर्जिते च गूढास्थिकं जानुयुगं सुरम्यम् ।।३३।।
सुवर्णदण्डप्रतिमौ तथोरू चाभोग्यरम्यं जघनं घनं च ।
मध्यं सुवृत्तं कुलिशोदराभं वलित्रयं चारुशुभं दधानम् ।।३४।।
उत्तुङ्गमाभोगिसमं विशालं स्तनद्वयं चारुसुवर्णवर्णम् ।
बाहू सुवृत्तावतिकोमलौ च करद्वयम् पद्मदलाग्रकान्ति ।।३५।।
कण्ठं च शङ्खाग्रनिभं सुरम्यं पृष्ठं समं चारु सिराविहीनम् ।
कर्णौ शुभौ चारुशुभप्रमाणौ सम्पूर्णचन्द्रप्रतिमं च वक्त्रम् ।।३६।।
कुन्दैन्दुतुल्या दशनास्तथोष्ठौ प्रवालकानां प्रतिपक्षभूतौ ।
स्पष्टा च नासा चिबुकं च रम्यं कपोलयुग्मं शशितुल्यकान्ति ।।३७।।
उन्निद्रनीलोत्पलसन्निकाशं त्रिवर्णमाकर्णिकमक्षियुग्मम् ।
शिरोरुहाः कुञ्चितनीलदीर्घा वीणेव वाणी मधुरा शुभा च ।।३८।।
वस्त्रे सुसूक्ष्मे विमले दधाना चन्द्रांशुतुल्येऽतिमनोभिरामे ।
श्रोत्रद्वयेनाप्यथ कुण्डले च सन्तानकानां शिरसां च मालाम् ।।३९।।
गङ्गाप्रवाहप्रतिमं च हारं कण्ठेन शुभ्रं दधती सुवृत्तम् ।
तथाङ्गदौ रत्नसहस्रचित्रौ हंसस्वनौ चाप्यथ नूपुरौ च ।।४०।।
करेण पद्मं भ्रमरोपगीतं वैडूर्यनालं च शुभं गृहीत्वा ।
स्वरूपमूढेषु सुरासुरेषु दृष्टिं ददौ चारुमनोभिरामा" ।।४१।।

इस विवरण में इनकी पूरी मूर्ति अङ्कित है ।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में लक्ष्मी की मूर्ति बनाने का प्रकरण जहाँ आया है वहाँ हरि के समीप इनकी मूर्ति बनाने का जो विधान है, उसमें इन्हें दो भुजा वाली बनाने का आदेश दिया गया है तथा जब इनकी मूर्ति पृथक बनाई जाय तब इसे चतुर्भुज बनाने को कहा है । यह विवरण विष्णुधर्मोत्तर पुराण के तृतीय खण्ड में प्राप्त है, जो निम्नांकित है--

वज्र उवाच---

"आचक्ष्व रूपं लक्ष्म्या मे भृगुवंशविवर्धन । या माता सर्वलोकस्य पत्नीः विष्णोर्महात्मनः" ।।१

मार्कण्डेय उवाच--

"हरेःसमीपे कर्त्तव्या लक्ष्मीस्तु द्विभुजा नृप । दिव्यरूपाम्बुजकरा सर्वाभरणभूषिता ।। २ ।।
गौरी शुक्लाम्बरा देवी रूपेणाप्रतिमा भुवि । पृथक्चतुर्भुजा कार्या देवी सिंहासने शुभे ।। ३ ।।
सिंहासनेऽस्याः कर्तव्यं कमलं चारुकर्णिकम् । अष्टपत्रं महाभाग कर्णिकायान्तु संस्थिता ।। ४ ।।

१. विष्णु धर्मोत्तर पुराण -- १, ४१, ३४ ।
२. उपर्युक्त -- १, ४१, ३५।
३. उपर्युक्त -- १, ४१, ३६ ।

विनायकवदासीना देवी कार्या महाभुज । बृहन्नालं करे कार्यं तस्याश्च कमलं शुभम् ॥ ५॥
दक्षिणे यादवश्रेष्ठ केयूरप्रान्तसंस्थितम् । वामेऽमृतघटः कार्यस्तथा राजन्मनोहरः ॥ ६ ॥
तथैवान्यो करौ कार्यौ बिल्वशूलधरौ नृप । आवर्जितघटं कार्यं तत्पृष्ठे कुञ्जरद्वयम् ॥ ७ ॥
देव्याश्च मस्तके पद्मं तथा कार्यं मनोहरम् । सौभाग्यं तद्विजानीहि शङ्खमृद्धि तथापरम् ॥ ८ ॥
बिल्वं च सकलं लोकमपां सारोमृतं तथा । पद्मं लक्ष्मीकरे विद्धि विभवं द्विजपुङ्गव ॥ ९ ॥
हस्तिद्वयं विजानीहि शङ्खपद्मावुभौ निधी । समुत्थिता वा कर्तव्या शङ्खम्बुजकरा तथा ॥१०॥
समुक्षिता महाभागा पद्मे पद्मान्तरप्रभा । द्विभुजा चारुसर्वाङ्गी सर्वाभरणभूषिता ॥११॥
द्वौ च मौलीचरौ मूर्ध्नि कार्यौ विद्याधरौ शुभौ । कराभ्यां मौलिलग्नाभ्यां दक्षिणाभ्यां विराजितौ ।
कराभ्यां खड्गधारिभ्यां देवीवीक्षणतत्परौ ॥१३॥
राजश्रीः स्वर्गलक्ष्मीश्च ब्राह्मी लक्ष्मीस्तथैव च । जयलक्ष्मीश्च कर्तव्या तस्य देव्यः समीपगाः ॥१४॥
सर्वाः सुरूपाः कर्तव्यास्तथा च सुविभूषणाः ॥१५॥
लक्ष्मीः स्थिता सा कमले तु यस्मिंस्तां केशवं विद्धि महानुभाव ।
विना कृता सा मधुसूदनेन क्षणं न सन्तिष्ठति लोकमाता[1] ॥१६॥"

जब ये दो भुजा वाली बनायी जायँ तो इनके दोनों हाथों में कमल होना चाहिये तथा इन्हें सर्वाभरण भूषिता होना चाहिये[2]। जब इनका चतुर्भुज स्वरूप हो तब इनके एक हाथ में कमल, दूसरे में अमृत घट, तीसरे में शंख तथा चौथे में श्रीफल (बिल्वफल) होना चाहिये[3]। इनके पीछे दो हाथी अपनी सूँड़ों में घट पकड़े हुए सूँड़ उठाये हुए इन्हें स्नान कराते दिखाना चाहिये[4] तथा इनके मस्तक पर पद्म का छत्र होना चाहिये। इनको इनके चार स्वरूपों के साथ भी दिखाने का निर्देश मिलता है, जैसे राज्य श्री, स्वर्ग लक्ष्मी, ब्राह्म लक्ष्मी तथा जय लक्ष्मी। इस प्रकार का दर्शन हमें ममल्लीपुरम की लक्ष्मी के मन्दिर में प्राप्त होता है फलक....१८ (यहाँ हमें लक्ष्मी के शंख इत्यादि का क्या अर्थ है यह भी मिलता है। 'श्रीफल' जगत को संकेत करता है, कमल जल के अमृत को, शंख सुख और समृद्धि को, घट अमृत घट को, जो समुद्र मन्थन से प्राप्त हुआ था तथा हाथी साम्राज्य को (विष्णु धर्मोत्तर पुराण ३; ८२, ८-१०)[5]। यहाँ लक्ष्मी का शंख से सम्बन्ध मिलने से ऐसा ज्ञात होता है कि इस काल में भारत का समुद्र द्वारा व्यापार बहुत बढ़ गया था। जैसा पहिले लिखा जा चुका है कि इनकी उत्पत्ति भी विविध मन्वन्तरों में जल से, बिल्व से तथा कमल से कही गयी है इस कारण भी इनका सम्बन्ध बिल्वफल, जल, कमल इत्यादि से करना ठीक ही था। इस पुराण में हमें लक्ष्मी नारायण की मूर्ति में लक्ष्मी को विष्णु के बायें बनाने का भी विधान मिलता है[6]। जैसी लक्ष्मी हमें मौन व्रती खजुराहो के विष्णु के साथ मिलती है जिनका विवरण आगे दिया जायगा। शेष-शायी भगवान् विष्णु की मूर्ति के साथ जो लक्ष्मी बने उनके गोदी में नारायण

---

१. विष्णु धर्मोत्तर पुराण -- ३, ८२, १-१६ ।

२. उपर्युक्त -- ३, ८२, २ ।

३. उपर्युक्त -- ३, ८२, ६-७ ।

४. उपर्युक्त -- ३, ८२, ७ ।

५. स्टेला क्रामरिश -- विष्णु धर्मोत्तर पुराण -- पृ० १०६-१०७, विष्णु धर्मोत्तर पुराण -- ३, १०५, ४२, ४३ में भी शंख तथा पद्म को निधि कहा है।

६. वृन्दावन भट्टाचार्या -- इण्डियन इमेजेज पृष्ठ १३ फुट नोट १ ।

का एक पद होना चाहिये--"देवदेवस्तु कर्तव्यस्तत्र सुप्तश्चतुर्भुजः एकपादोऽस्य कर्तव्यो लक्ष्म्युत्सङ्गगतः प्रभो"[1]। एक दूसरे स्थान में शेष-शायी भगवान् के साथ लक्ष्मी का स्वरूप यों मिलता है "लक्ष्मीसंवाह्यमानाङ्घ्रि कमलद्वयराजित"[2]। इसी प्रकार की मूर्ति हमें देवगढ़ के शेषशायी भगवान् के रूप में प्राप्त है। इस पुराण में लक्ष्मी को प्रकृति तथा विष्णु को पुरुष भी कहा गया है[3]--"प्रकृतिः सशुभा लक्ष्मीः विष्णुः पुरुष उच्यते" इनको विष्णु के वक्षस्थल पर स्थित कहा है तथा इनका वर्णन "पद्माननाम् पद्मकराम् शशाङ्कसदृशाम्बराम्" किया है[4] तथा इनको सर्वलोक का हित करनेवाली, सबकी जननी एवं त्रिभुवन की ईश्वरी कहा है--"हितस्थां सर्वलोकस्य वरदां कामरूपिणीम्। सर्वगां सर्वजननीं देवीं त्रिभुवनेश्वरीम्[5]"। तथा इनको विशालाक्षी भी कहा है[6]। इनका सम्बन्ध विष्णुधर्मोत्तर पुराण में इन्द्र से स्वर्ग लक्ष्मी शची के रूप में किया गया है तथा काल की स्त्री के रूप में भी[7]। इनके व्रत तथा पूजन का विधान चैत्र शुक्ल द्वितीया से चैत्र शुक्ल पंचमी तक का प्राप्त होता है[8]।

विष्णुसहस्रनाम में विष्णु को--

"श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीपतिः श्रीमतांवरः।
श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः।
श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमाँल्लोकत्रयाश्रयः।"

कहा है[9] तथा इन्हें लक्ष्मीवान[10], श्रीगर्भ[11], मेदिनीपति[12] और महीभर्ता[13] भी कहा है। इस प्रकार इनकी तीन पत्नियाँ यहाँ मिलती हैं--श्री, लक्ष्मी तथा पृथ्वी। यहाँ श्री और लक्ष्मी का कोई भेद नहीं दिखाई देता।

देवीभागवत का उप-पुराणों में एक विशिष्ट स्थान है, इसके नवम खण्ड में सृष्टि के उत्पत्ति के समय प्रकृति ही दुर्गा, राधा, सावित्री, लक्ष्मी, एवं सरस्वती के रूप में आविर्भूत होती हैं--

"गणेश जननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता।"[14]

---

१. विष्णु धर्मोत्तर पुराण -- ३, ८१, ३।
२. उपर्युक्त -- ३, १०७, ८। जे० एन० बानर्जी -- डेवलपमेन्ट आफ हिन्द आइकोनोग्राफी -- प्लेट २२-२।
३. उपर्युक्त -- १, ४१, १० तथा ३, १२६, २-३।
४. उपर्युक्त -- ३, १०६, २६।
५. उपर्युक्त -- २, १०६, ३० -- इनको जगत्माता भी है कहा -- ३-८१।
६. उपर्युक्त -- ३, १०६, ३१।
७. स्टेला क्रामरिश -- विष्णु धर्मोत्तर पुराण -- पृ० ७४ तथा १०२।
८. उपर्युक्त -- ३, १५४, १-१५ तथा ३, १२६, २-३, १३०।
९. विष्णु सहस्रनाम -- ७७, ७८।
१०. उपर्युक्त -- ५३।
११. उपर्युक्त -- ५४।
१२. उपर्युक्त -- ७०।
१३. उपर्युक्त -- ३३।
१४. देवी भागवत -- खण्ड ९, १, १।

इस भागवत में लक्ष्मी सरस्वती ब्रह्म श्री तथा गंगा तीनों ही हरि की भार्या के रूप में वर्णित हैं— "लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा तिस्रो भार्या हरेरपि[1]।" सरस्वती ने लक्ष्मी को एक बार क्रोध करके श्राप दिया कि शीघ्र तुझे वृक्ष तथा सरित स्वरूप धारण करना होगा।[2] इस श्राप के फलस्वरूप लक्ष्मी को पद्मावती नाम से भारत में सरित रूप ग्रहण करना पड़ा तथा तुलसी का पेड़ भी बनना पड़ा। पीछे चल कर अंश रूप से लक्ष्मी को धर्म-ध्वज राजा के यहाँ तुलसी नाम्नी कन्या के रूप में उत्पन्न होना पड़ा, और शंखचूड़ नामक असुरेन्द्र से विवाह करना पड़ा।[3] राजा धर्मध्वज की इस तुलसी नाम की कन्या के जन्म तथा उनके विवाह इत्यादि की कथा भी यहाँ प्राप्त होती है[4], इनकी हथेली तथा पदतल लाल वर्ण के थे। नाभी गहरी थी, इसके ऊपर त्रिवली शोभायमान थी। इनके नितम्ब गोल थे। उनका वर्ण पीत था[5]। शंखचूड़ ने तुलसी को वरुण प्रदत्त दो वस्त्र तथा रत्नमाला भेंट की। स्वाहा द्वारा लाए हुए मंजीर नूपुर दिये, चन्द्रमा की पत्नी से छीने हुए दो कुण्डल अर्पित किये तथा सूर्य की पत्नी के केयूर तथा रति की अंगूठी इत्यादि रत्न तथा शंख दिये[6] जो लक्ष्मी के शरीर पर शोभायमान हुए। यहाँ चतुर्भुज नारायण का स्वरूप भी प्राप्त होता है जिसमें लक्ष्मी, सरस्वती और गंगा उनकी सेवा करती हुई दिखाई देती हैं[7]।

लक्ष्मी की उत्पत्ति की कथा यहाँ यों वर्णित है कि सृष्टि के आदि में कृष्ण के वाम अंश से रास मण्डल के समय ये देवी प्रकट हुईं—"सृष्टेरादौ पुरा ब्रह्मकृष्णस्य परमात्मनः। देवी वामांश संभूता बभूव रासमण्डले[8]।।" ये अति सुन्दरी श्याम आभा मण्डल से आच्छादित द्वादश वर्ष की स्थिर यौवना थीं। इनकी आभा श्वेत चम्पक के समान थी। पूर्णिमा के चन्द्र के समान मुख था। आँखें शरद् ऋतु के विकसित कमल दल के समान थीं। यह सहसा दो रूपों में विभक्त हो गयीं—एक चतुर्भुज तथा दूसरा द्विभुज। चतुर्भुज रूप से लक्ष्मी को और द्विभुज रूप से राधा को कृष्ण ने अपनी प्रिया बनाया। इसी कारण राधाकान्त द्विभुज तथा लक्ष्मीकान्त चतुर्भुज हुए[9]। चतुर्भुज भगवान लक्ष्मी सहित वैकुण्ठ में गये। लक्ष्मी ने वहाँ योग द्वारा अनेक रूप धारण किये। स्वर्ग में स्वर्गलक्ष्मी इन्द्र की सम्पत्ति स्वरूपिणी, पाताल में नागलक्ष्मी, राजाओं के यहाँ राज्यलक्ष्मी, साधारणजनों में गृहलक्ष्मी सम्पत्ति स्वरूपा सर्वमंगल को देनेवाली हैं। ये वृषभ तथा गायों को उत्पन्न करनेवाली हैं। यज्ञ में दक्षिणा के रूप में अवतरित हुईं तथा क्षीर सिन्धु की कन्या श्रीरूपा पद्मिनी के रूप में अवतरित हुईं और शोभा के रूप में सूर्य तथा चन्द्र मण्डलों में ये पहुँचीं[10]।

---

१. देवी भागवत — खण्ड ९, ६, १७।
२. उपर्युक्त — खण्ड ९, ६, ३३।
३. उपर्युक्त — खण्ड ९, ६, ४५–४९।
४. उपर्युक्त — खण्ड ९, १७।
५. उपर्युक्त — खण्ड ९, १७, १०–१२।
६. उपर्युक्त — खण्ड ९, १९, १८–२५।
७. उपर्युक्त — खण्ड ९, १९, ५०।
८. उपर्युक्त — खण्ड ९, ३९, ४।
९. उपर्युक्त — खण्ड ९, ३९, ५–१३।
१०. उपर्युक्त — खण्ड ९, ३९, १४–२०।

विभूषणों में, रत्न में, वस्त्रों में, जल में, प्रतिमा में, मंगलघर में, संस्कृति के स्थानों में, माणिक में, मुक्ता की माला में, हीरे में, दुग्ध में, चन्दन में, नव वृक्ष-शाखाओं में तथा नये मेघ में इनका वास हो गया। इनकी सर्वप्रथम पूजा नारायण ने की[1]। ब्राह्मणों को भाद्रपद की अष्टमी के दिन इनका पूजन करना चाहिये तथा चैत्र, पौष तथा भाद्रपद में मंगलवार को पूजन करना चाहिये। पौष की संक्रान्ति को भी इनकी पूजा करनी चाहिये।[2]

लक्ष्मी का पृथ्वी पर सागर की कन्या के रूप में अवतरित होने का कारण यहाँ दुर्वासा का शाप कहा गया है[3] तथा इनकी पुनः प्राप्ति क्षीर-सागर के मन्थन से हुई[4], यह विवरण प्राप्त है। इनका ध्यान इस प्रकार वर्णित है—

"सहस्रदलपद्मस्थकर्णिकां वासनीं पराम्। शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभामुष्टिकरां पराम् . . . । प्रतप्तकाञ्चन-निभशोभाम् मूर्तिमतीं सतीम् रत्नभूषणभूषाढ्यां शोभितां पीतवाससा।। ईषद्धास्यां प्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिर-यौवनाम्[5]।"

इनकी पूजा में इनको कमला[6], कमलवासिनी[7], कमलालया[8], पद्मपत्रे क्षणायै पद्मस्थायै पद्मासनायै, पद्मिन्यै तथा वैष्णवी[9] के विशेषण दिये गये हैं। इनको अदिति भी कहा है[10]—"अदितिः देवमाता च कमला कमलालया"। इनको वसुन्धरा भी कहा है[11]। कुबेर से भी इनका सम्बन्ध यहाँ मिलता है (देवी भागवत, ६; ४२; ४३)। इनका मन्त्र—"ओं श्री लक्ष्मी कमलवासिन्यै स्वाहा" सिद्ध होने पर ये रत्न विभूषित विमान पर चढ़कर वर देने जाती हैं, जिससे सप्त द्वीपी यह पृथ्वी वैसे ही चमक जाती है, जैसे चन्द्र की किरण चाँदनी से—"रत्नेन्द्रसारनिर्माण विमानस्था वरप्रदा। सप्तद्वीपवतीम् पृथ्वीम् छादयन्ती चन्द्रसमप्रभाम्[12]"।

महिषासुर को मारनेवाली, शुम्भ, निशुम्भ को मारनेवाली देवताओं के तेज से उत्पन्न देवी को भी यह कहा है कि क्रम से ये सरस्वती तथा लक्ष्मी का स्वरूप धारण करती है—"काल्याश्चैव महालक्ष्म्याः सरस्वत्याः क्रमेण च[13]"।

यहाँ देवी आदिस्वरूपा, सर्वशक्तिमती, सबको उत्पन्न करनेवाली हैं जिनसे अनेकों लक्ष्मी, सरस्वती, ब्रह्मा, विष्णु उत्पन्न होते हैं, ये सब को प्रेरित करनेवाली कही गयी हैं। इन्हीं को सृष्टि का आदि कारण भी कहा गया है[14]। यह कदाचित् वही स्वरूप हैं, जिसकी भारत के आदिवासी पूजा करते थे और जो पीछे चलकर आर्यदेवी में परिणत हुईं।

---

१. देवी भागवत -- खण्ड ६, ३६, २१–२४।
२. उपर्युक्त -- खण्ड ६, ३६, २७–२६।
३. उपर्युक्त -- खण्ड ६, ४०, ४१।
४. उपर्युक्त -- ६, ४१, ५२, ङ५५।
५. उपर्युक्त -- ६, ४२, ८–१०।
६. उपर्युक्त -- ६, ४२, ३१।
७. उपर्युक्त -- ६, ४२, ४२।
८. उपर्युक्त -- ६, ४२, ५८।
६. उपर्युक्त -- ६, ४२, ५२।
१०. उपर्युक्त -- ६, ४२, ५८।
११. उपर्युक्त -- ६, ४२, ५६।
१२. उपर्युक्त -- ६, ४२, ४७।
१३. उपर्युक्त -- १०, १२, ८२।
१४. उपर्युक्त -- खण्ड ३, ३–१–६७।

हमें महालक्ष्मी व्रत की कथा भविष्योत्तर-पुराण में प्राप्त होती है। इसमें चिल्ल देवी तथा चोल देवी की कथा मिलती है। यहाँ लक्ष्मी के स्वरूप को चन्दन तथा अगर से बनाने की प्रक्रिया प्राप्त होती है। इसमें लक्ष्मी का स्वरूप निम्नांकित है--

"शुभ्रवस्त्र परिधानाम् मुक्ताभरणभूषिताम्। पद्मासनसंस्थानां स्मेराननसरोरुहाम्।।
शारदेन्दुकलाकान्तिस्निग्धनेत्रां चतुर्भुजाम्। पद्मयुग्मामभयदां वरव्यग्रकराम्बुजाम्।।
अभितौ गजयुग्मेन सिच्यमानां कराम्बुना[1]।"

अहिर्बुध्न्य-संहिता के मातृका चक्र में लक्ष्मी का ध्यान करने को कहा गया है[2], यह ध्यान इस प्रकार है--

"गोक्षीरशङ्खहिमदीधितिदेवसिन्धुकुन्दप्रभा विमलपङ्कज शङ्खहस्ता।
स्मेरप्रसन्नवदना कमलायताक्षी ध्येया स्वचक्रभवनोपरि मातृका सा।।
आलोलशूलदशकं त्रियुगाधिकं स्वैर्हस्तैर्द्विरष्टभिरथो दधती जपामा।
चिन्तामणिस्थितिमती नयनत्रयाढ्या शक्तिर्हरेरिति मुने मनसा विचिन्त्या।।
पूर्णेन्दुशीतलरुचिर्धृतबोधमुद्रा बाह्यान्तरस्थनिजबोधनपुस्तकाढ्या।
देवी परा परमपुरूषदिव्य शक्तिः चिन्त्या प्रसन्नवदना सरसीरुहाक्षी।।
पद्मारुणाभयवराङ्कुशपाशहस्ता रक्ताम्वरा विपुलवारिजपत्रनेत्रा।
सूक्ष्मप्रभास्थितपरावरतत्त्वजाता चिन्त्याऽदिशक्तिरपि सा च परावराख्या।।
बाहुस्थपाशवलिताखिलजीववर्गा बन्धूकपद्मकुसुमारुणदेहकान्तिः।
पीनस्तनी मदविघूर्णितनेत्रपद्मा लक्ष्मीशपार्श्वनिलयाऽखिलदेवतेयम्।।
वक्राग्रनासि निशिताङ्कुशकोलितेन नम्रेण जीवनिकरेण समीड्यमाना।
दिव्यकुंशस्तिमती हरिशक्तिराद्या ध्येया समाधिनिरतेन महाप्रभावा।।"

कालिका-पुराण में 'श्री' तथा इन्द्र के सम्बन्ध की कथा प्राप्त होती है[3]। अत्रि-संहिता या समूर्त अर्चनाधिकरणम् में[4] लक्ष्मी की अर्चना की विधि का निर्देश करने वाले चार ऋषियों के नाम मिलते हैं--अत्रि, मरीची, भृगु तथा काश्यप। ये सब ऋषि वैदिक काल के हैं तथा गोत्र प्रवर्तक भी माने गये हैं। इस कारण ऐसा अनुमान होता होता है कि इनके गोत्र में उत्पन्न ऋषियों ने इनकी अर्चना को आर्यों में प्रचलित करने का काम किया होगा। वैखानसीय काश्यप ज्ञान खण्ड[5] में हमें विष्णु तथा उनकी दो पत्नियों की मूर्तियों के बनाने के विषय में पूरी सामग्री प्राप्त होती है। अत्रि-संहिता के अनुसार यदि विष्णु के साथ उनकी पत्नियों की मूर्ति बनाई जाय तो सारे गाँव की समृद्धि होती है[6]। यदि विष्णु का विवाह मनाया जाय तो गाँव की स्त्रियों को पुत्र तथा पौत्र प्राप्त होंगे[7]।

---

१. महालक्ष्मी व्रत कथा -- लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस सं० १९७२ श्लोक ५९-६१।
२. अहिर्बुध्न्य संहिता -- देवशिखा मणिना रामानुजाचार्येण सम्पादिता तथा संशोधिता -- शका० १८३९ पूर्वार्धम् अध्याय २४-१४-१९।
३. कालिका पुराण -- १, ९, १०४।
४. सम्पादक -- पी० रघुनाथ चक्रवर्ती भट्टाचार्य 'श्री वेंकटेश्वर ओरियण्टल सीरीज ६ तिरूपति १९४३।
५. काश्यप संहिता सम्पादक -- श्री पार्थ सारथी भट्टाचार्य - तिरूपति - १९४८।
६. अत्रि संहिता -- ४, ३३।
७. अत्रि संहिता -- ३९, ५५ ऐसी एक मूर्ति काशी में मिली है फलक २०।

अत्रि-संहिता में यह लिखा है कि लक्ष्मी का पूजन एक निश्चित तिथि को करने से 'श्री' की प्राप्ति होती है। यही बात हमें काश्यपसंहित में भी मिलती है[१]। सुख की कामना करने वाले को शुक्रवार को 'श्री' की पूजा पुष्प, माला, सुगन्धित द्रव्य, तुलसी, केशर इत्यादि से करना चाहिये[२] ऐसा आदेश अत्रि-संहिता में है।

काश्यप संहिता में 'श्री' के दो स्वरूपों को भिन्न-भिन्न दिखाने का प्रयत्न किया गया है – एक राज्यश्री तथा दूसरी ब्रह्मश्री। राज्यश्री को धन समृद्धि का द्योतक बताया गया है तथा दूसरी ब्रह्मश्री को ज्ञान का[३]। जो ध्यान यहाँ 'श्री' का प्राप्त होता है वह एक सुन्दर स्त्री का है, जिसकी प्रभा पद्म की भाँति है, जिसके नेत्र पद्म की भाँति हैं, जो पद्म की माला धारण किये हुए है, हाथ में पद्म लिये हुए है, जो सर्वाभरण भूषिता है, जिसके स्तन सुवर्ण कुम्भ की भाँति हैं इत्यादि। इनके पर्व के पूजन के विषय में भी यहाँ प्रचुर मात्रा में सामग्री प्राप्त होती है[४]।

भक्तमाल में लक्ष्मी को कमला कहा गया है तथा वहाँ इनका निरूपण विष्णु की शक्ति के रूप में है[५]।

नीलमत-पुराण में जिसमें विशेष रूप से काश्मीर का विवरण प्राप्त है[६] लक्ष्मी केशव के साथ पूजित होती हुई दिखाई देती हैं।

"आराध्य केशवं चापि तथा लक्ष्मीम् चोदयत्[७]।"

इनमें और रमा में कोई अंतर नहीं है[८]। इनकी प्रार्थना निम्नांकित रूप में की गयी है तथा इनकी उत्पत्ति क्षीर सागर से कही गयी है––

"त्वमेव परमाशक्तिर्बहुभिर्मन्त्रिभिःस्तुता। क्षीरोदकन्ये विरजे पवित्रे मङ्गलास्पदे ॥३६८॥
त्वमेव देवी कश्मीरा त्वमेवोमा प्रकीर्तिता। त्वमेव सर्वदेवीनाम् मूर्तिभिर्देवि संस्थिता
न त्वया सादृशी काचिदिह देवी नमोऽस्तुते ॥३७०॥
प्रसीद मातर्जगदेकलक्ष्मि प्रसीद देवेशि जगन्निवासे। प्रसीद नारायणि शंकरेशि प्रसीद पद्मे कमलाङ्किते मे॥३७१॥
वैतस्तमम्भस्तव तोयमिश्रम् पीयूषयुक्तम् मधु चास्ति मातः।
स्नातस्त्वदम्भस्यपि पापमग्नाः सद्योविमुक्ता विमलीभवन्ति ॥"३७२॥

काश्मीर में 'श्री' वितस्ता के रूप में बहती है ––

"नदी भूत्वा च कश्मीरान् गच्छन्ती वाक्यमब्रवीत्[९]।"

---

१. अत्रि संहिता –– ४६, ५८, काश्यप संहिता –– परिच्छेद – ३८।
२. उपर्युक्त –– ४७, १६।
३. काश्यप संहिता –– परिच्छेद ८।
४. उपर्युक्त –– परिच्छेद –– ८–६०।
५. जी० ग्रियर्सन –– जे० आर० ए० एस० १६१० पृ० २७०।
६. नीलमत पुराण––राम लाल कंजीलाल तथा पं० जगद्धार जद्द––मोतीलाल बनारसी दास १६२४। वह ग्रन्थ छठवीं या सातवीं शताब्दी का ज्ञात होता है –– प्राकथन –– पृ० ७ : बूहलर की रिपोर्ट पृ० ४१।
७. उपर्युक्त ––पृष्ठ २६ श्लोक २ ३०७।
८. उपर्युक्त ––पृष्ठ ३० – ३६५, ३६६।
९. नीलमत पुराण ––पृ० ३१ – ३७४ तथा ३८०।

केशव से अलग हो कर इनको दुःख हुआ --

"केशवेनैवमुक्ता तु लक्ष्मीः शोकसमन्विता ।" ३६६

इस कारण वितस्ता नदी का पानी क्षीरसमुद्र के अमृत से युक्त है –

"वैतस्तमम्भः सह सैन्धवेन युक्तम् यया क्षीरमिवामृतेन[1] ।"

इनका स्वरूप कैसा है --

"लावण्यमुक्तं च यथैव रूपं शीलेन युक्तं च यथा श्रुतं स्यात् ।
शौर्यं यथा स्याद्विनयेन युक्तं धर्मेण यथा स्याद् द्रविणेन युक्तम् ।।
मूर्तिर्युता वा सजयैव राजन् कामो यथास्यान्मनसोपपन्नः ।
रत्नं यथा स्यात्कनकेन युक्तमायुर्यथा स्वस्तियुतं नृवीर ।
सम्मानयुक्तश्च यथैव लाभस्तथैव सा तत्र तदा बभूव[2] ।"

लक्ष्मी यहाँ कीर्ति, धृति, मेधा इत्यादि के साथ भी मिलती है --

"लक्ष्मीः कीर्तिर्धृतिर्मेधा तुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः[3] ।"

इनकी पूजा और देवी-देवताओं के साथ नव वर्ष के आरम्भ में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को 'श्री' की प्राप्ति के हेतु करने का विधान यहाँ मिलता है[4] । श्री पंचमी को 'श्री' की पूजा का विधान भी मिलता है, यह चैत्र शुक्ल पंचमी को होती है[5] । इसके पूजन से लक्ष्मी का कभी नाश नहीं होता ।

कार्तिक की अमावस्या को दीपमाला का भी विवरण यहाँ प्राप्त होता है जिसे आज हम दिवाली अथवा दीपावली का त्योहार मानते हैं । परन्तु इसमें लक्ष्मी पूजन का कहीं विवरण नहीं है । स्थान-स्थान पर दीपक रखने का विधान है । अपने को नये वस्त्र तथा अलंकारों से सुसज्जित करने को नीलमुनि कहते हैं तथा अच्छे-अच्छे भोजन पदार्थों को सेवन करने को कहते हैं । इत्यादि[6] । शुक्ल पक्ष की एकादशी के पूजन में एक हरि की प्रतिमा का वर्णन मिलता है जिसे आषाढ़ मास में बनाना चाहिये[7] । यह शेषशायी भगवान् की प्रतिमा है जिसमें लक्ष्मी भगवान् का चरण चाप रही हैं । यह प्रतिमा ताम्र की बने चाहे अरकूट की अथवा रजत की ।

"आषाढ़मासे प्रतिमां केशवस्य तु कारयेत् ।
सुप्तां च शेषपर्यङ्के शैलमृद्धेमदारुभिः ।।५१७।।
ताम्रारकूटरजतैः चित्रे वाऽपि निवेशयेत् ।
लक्ष्म्युत्सङ्गगतौपादौ तस्यां तस्य च कारयेत्।"५१८।।[8]

---

१. नीलमत पुराण -- पृ० ३२ – ३६० ।
२. उपर्युक्त -- पृ० ३२ – ३६०–३६२ ।
३. उपर्युक्त -- पृ० ५८ – ७०१ ।
४. उपर्युक्त -- पृ० ५६–३८५ ।
५. उपर्युक्त -- पृ० ६२–७६६ ।
६. उपर्युक्त -- पृ० ४२–५०५ से ५१५ ।
७. उपर्युक्त -- पृष्ठ ४३–५१७ ।
८. उपर्युक्त -- पृष्ठ ४३ ।

एकादशी की रात्रि को जागरण करना चाहिये तथा प्रतिमा का पूजन करना चाहिये । गीत, नृत्य, वाद्य का आयोजन हो, पुराण का पाठ हो । पुष्प, धूप, नैवैद्य इत्यादि से पूजा की जाय, दीप दान किया जाय। माल-पूआ, शाक, अच्छे-अच्छे फल इत्यादि नैवैद्य में रखे जायँ। रक्तसूत्र तथा चन्दन चढ़ाया जाय और दान किया जाय। पंच रात्रि पूजन का विधान करके इस प्रतिमा को नदी के तीर पर उत्सर्ग करना चाहिये।[1] इस प्रकार की गुप्त युग की कई प्रतिमाएँ मिली हैं जैसा हम आगे देखेंगे ।

पुराणों में लक्ष्मी तथा 'श्री' में कोई भेद नहीं ज्ञात होता । इनके स्वर्ग लक्ष्मी, गृह लक्ष्मी, राज्य लक्ष्मी इत्यादि रूप भी प्राप्त होते हैं, जैसा पहिले लिखा जा चुका है। यहाँ ये विष्णु पत्नी, नारायण की पत्नी, परम पुरुष की पत्नी के रूप में प्रायः मिलती हैं । पुराण काल तक इनका यक्षों से सम्बन्ध टूट चुका था, ऐसा पुराणों के देखने से ज्ञात होता है। यहाँ हमें इनका गज लक्ष्मी का स्वरूप, पद्म हस्ता, पद्म वासिनी का स्वरूप, विष्णुप्रिया का स्वरूप, शेषशायी भगवान् के साथ उनके चरण चापते हुए वैष्णवी का स्वरूप इत्यादि प्राप्त होता है। इनका सम्बन्ध शंख से, पद्म से, जल से, बिल्वफल से, कुंजरों से, अमृतघट से, धन से प्राप्त होता है। इन वस्तुओं का अर्थ भी यहाँ प्राप्त होता है ।

लक्ष्मी का वाहन आज उल्लू माना जाता है तथा विष्णु की पत्नी होने के नाते गरुड़ भी कहा जाता है, परन्तु ये कल्पनायें पीछे के काल की ज्ञात होती हैं क्योंकि पुराणों में इनका सम्बन्ध गरुड़ अथवा उल्लू से नहीं प्राप्त होता । पीछे की स्तुतियों में इनको 'गरुड़ारूढा' इत्यादि विष्णु की पत्नी होने के नाते कहा गया है ।

---

१. उपर्युक्त — पृष्ठ ४३-५२०-५३३ ।

: ६ :

प्राचीन संस्कृत-साहित्य में लक्ष्मी का स्वरूप

साहित्य से जीवन का सम्बन्ध बड़ा गम्भीर है। कवि की कल्पना का आधार भी यही संसार है। चाहे वह कितना भी ऊँचे उड़े उसकी कल्पना वास्तविक जगत् से सम्बद्ध अवश्य ही रहती है। साहित्य में स्थान-स्थान पर हमें तत्कालीन जीवन का जो दर्शन प्राप्त हो जाता है उसका यही कारण है। हमारे महाकाव्यों में रामायण तथा महाभारत सबसे प्राचीन ग्रन्थ माने जाते हैं।[1] इनके बहुत से अंश तो प्राचीन हैं ही, चाहे (यह सम्भव है कि) कुछ भाग पीछे से भी जोड़ दिये गये हैं। इनमें हमें देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं तथा लक्ष्मी का स्वरूप भी मिलता है जो आगे वर्णन किया जायगा। लक्ष्मी का सम्बन्ध यक्षराज कुबेर से इन महाकाव्यों में हमें मिलता है। ये ग्रंथ इतिहास पुराणों की भी कोटि में रखे जाते हैं तथा महाकाव्यों की भी। इनको यहाँ महाकाव्यों में ही रखा गया है।

भास तथा कालिदास के ग्रन्थों में जो सामग्री मिलती है उससे भी उस काल की लक्ष्मी के स्वरूप का कुछ परिचय मिलता है परन्तु बहुत अधिक सामग्री यहाँ नहीं मिलती। इसी प्रकार विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' में अथवा शिशुपाल-वध में भी बहुत ही थोड़ा मसाला प्राप्त होता है। अश्वघोष के 'बुद्ध चरित' तथा 'सौन्दरानन्द' की सामग्री बौद्ध और जैन साहित्य के अन्तर्गत रखी गयी है। यहाँ भी सभी ग्रन्थों को न लेकर केवल थोड़े ही से चुने हुए साहित्य का विवेचन किया गया है।

वाल्मीकि रामायण में सीता जी को लक्ष्मी की उपमा देते हुए कहा है कि सीता जी राम लक्ष्मण के मध्य में कैसी विराजती हैं जैसी लक्ष्मी विष्णु तथा वासव के बीच में।[2] इससे 'श्री' का इन्द्र तथा विष्णु दोनों से सम्बन्ध ज्ञात होता है। विष्णु को उप+इन्द्र=उपेन्द्र भी कहते हैं। युद्ध काण्ड में सीता को लक्ष्मी और राम को विष्णु भी कहा है —

"सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुः देवः कृष्णः प्रजापतिः" (युद्धकाण्ड १२०, २८)

रामायण में कुबेर के पुष्पक विमान पर 'श्री' के विग्रह के चित्र का वाल्मीकि जी ने वर्णन किया है। यह पद्महस्ता गजलक्ष्मी का स्वरूप है।[3] रामायण में एक और स्थान पर कुबेर से सम्बन्धित दिखाई गयी हैं[4]। इसी महाकाव्य में वरुण की भी कथा मिलती है जिससे लक्ष्मी का सम्बन्ध वरुण से ज्ञात होता है[5]।

---

१. केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया खण्ड, १, पृष्ठ २२८–२२९।

२. गोण्डा —एस्पेक्ट्स आफ विष्णुइज्म –पृष्ठ २२५।

३. रामायण — ५, ७, १४।

४. उपर्युक्त — ७, ७६, ३१; गोण्डा – उपर्युक्त –पृष्ठ २०८।

५. उपर्युक्त — ७, ५६, १२ तथा आगे; कुमार स्वामी – यक्षाज, खण्ड २ –पृष्ठ ३४ तथा इस्टर्न आर्ट, खण्ड १, पृष्ठ, १७५।

लक्ष्मी समुद्र मन्थन के समय उच्चैःश्रवा घोड़े, अमृत इत्यादि के साथ उत्पन्न हुई थीं तथा विष्णु को प्राप्त हुई। यह कथा तो महाभारत में भी प्राप्त होती है[1] परन्तु इसके साथ ही इनका सम्बन्ध कुबेर से भी कई स्थानों पर वर्णन किया गया है। कुबेर के दरबार में ये नलकूबर के साथ उपस्थित दिखाई गयी हैं।[2] पीछे चल कर इन्हें कुबेर की स्त्री के रूप में भी हम देखते हैं[3]। महाभारत में कुबेर को विष्णु की भाँति श्रीदः कहा है। यहाँ हमें अलक्ष्मी का रूप भी 'वन पर्व' के ६४ में प्राप्त होता है, जिसमें यह कथा मिलती है कि लक्ष्मी के देवताओं के पास चले जाने से और अलक्ष्मी के असुरों के पास जाने से असुर नष्ट हो जाते हैं। लक्ष्मी एक स्थान पर यह कहती हैं कि "मैं ही जय हूँ, मैं ही समृद्धि हूँ, मैं ही विजयी राजाओं के साथ रहती हूँ।"[4] महाभारत के एक स्थान पर ये हाथ में मकर लिये हुए वर्णित हैं। यह चिन्ह कामदेव का है तथा रुक्मिणी कामदेव की माता होने के कारण इस चिह्न को धारण कर सकती हैं। द्वापर में कामदेव का जन्म रुक्मिणी के गर्भ से वर्णित है (महाभारत – ३, २८१, ७)। रुक्मिणी लक्ष्मी का अवतार हैं, इस कारण लक्ष्मी का भी सम्बन्ध कामदेव से कर दिया गया और मकरध्वज कामदेव का मकर इनके हाथ में भी दिखाया गया[5]। विष्णु को श्रेयस् तथा श्रेष्ठ भी कहा है[6], जिससे इनका विष्णु से भी सम्बन्ध तो पुष्ट होता ही है। एक स्थान पर विष्णु के आयुधों सहित भी इनको दिखाया गया है तथा इनकी आभा सूर्य के समान कही गयी है[7]। इन्द्र से भी इनका सम्बन्ध महाभारत में प्राप्त होता है[8]। इन्द्र के पास ये स्वयं चली जाती हैं तथा इनके पीछे जया, आशा, श्रद्धा, धृति, क्षान्ति, विजिति, विनय, क्षमा इत्यादि अपने आप खिंची हुई पहुँच जाती हैं[9]। लक्ष्मी के समक्ष अभिमुख गजराज भी हमें महाभारत में प्राप्त होता है[10] तथा कौमुदी महोत्सव का भी चित्र यहाँ हमें दृष्टिगोचर होता है[11]। इनको

---

१. महाभारत -- १, १८, ४४; ५, १०२, १२; गोण्डा – उपर्युक्त, पृष्ठ २२३।
२. उपर्युक्त -- २, १०, १९; गोण्डा – उपर्युक्त पृष्ठ २२३।
३. उपर्युक्त -- ३, १६, १३, ये कुबेर शतपथ ब्राह्मण में राक्षस बताये गये हैं – कुमार स्वामी – यक्षाज -- १९२० पृष्ठ ५; जैमिनी ब्राह्मण में कुबेर यक्षों के राजा के रूप में आते हैं – जैमिनी ब्राह्मण ३, २०३, २७२। इस प्रकार कुबेर से सम्बन्धित सी थी, पर ये यक्षिणी भी कही जा सकती है। यक्षिणी का मन्दिर महाभारत में राजगृह में वर्णित मिलता है। कुमार स्वामी – यक्षाज, पृष्ठ ६।
४. उपर्युक्त -- १२, ८३, ४५ तथा आगे; डा० मोतीचन्द – आवर लेडी आफ ब्यूटी इत्यादि नेहरू बर्थ डे बुक, पृष्ठ ५०२।
५. उपर्युक्त -- १३, ११, ३; प्रद्युम्न कामदेव के अवतार हैं। इस कारण इनको मकरध्वज कहा है (महाभारत – ३, १७, २ तथा ८, ३, २५) कुमार स्वामी – अर्ली इण्डियन आइकोनोग्राफी ईस्टर्न आर्ट खण्ड १ पृष्ठ १७६; यक्षाज खण्ड २ पृष्ठ ४७–५२। वरुण वाहन मकर।
६. उपर्युक्त -- १३ अ, १४९। गोण्डा – उपर्युक्त – पृष्ठ २०८।
७. उपर्युक्त -- १२, २२८, १४। गोण्डा – उपर्युक्त पृष्ठ २२०।
८. उपर्युक्त -- १, १०७, १; गोण्डा – उपर्युक्त, पृष्ठ २२५।
९. उपर्युक्त -- १२, २२८, ८२; १२, २२८, ९०; गोण्डा – उपर्युक्त, पृष्ठ २२३।
१०. उपर्युक्त -- १, १८९, ६; गोण्डा – उपर्युक्त, पृष्ठ २२५।
११. उपर्युक्त -- १, १२१, १; गोण्डा – उपर्युक्त, पृष्ठ २२४।

हम अपना धर्म प्रतिपादन करते हुए महाभारत में पाते हैं, परन्तु इनका धर्म कठोर पन्थी नहीं है, जैसे सत्यवादन पर ये बहुत जोर नहीं देतीं (महाभारत – १३, ८२, ३)। ये तो भाग्य-प्रदाता हैं (महाभारत – ५, १५५, ५)। इनको स्थान-स्थान पर पद्मालया और पद्महस्ता कहा गया है, जिससे इनका पद्म से भी सम्बन्ध स्थापित होता है।

महाभारत में यह भी कथा मिलती है कि सावित्री को देखकर लोगों ने उसे देवकन्या या 'श्री' की जीवित प्रतिमा समझा[१]। इस कथन से यह ज्ञात होता है कि 'श्री' की प्रतिमा उस काल में बनने लग गयी थी। महाभारत में दीपावली उत्सव का विवरण भी प्राप्त होता है[२]। जिससे यह स्पष्ट है कि उस काल में लक्ष्मी-पूजन प्रारम्भ हो गया था।

'स्वप्न वासवदत्ता' में भास ने लक्ष्मी को पद्मावती कहा है[३]। यहाँ 'श्री' के दो भेद प्राप्त होते हैं, पद्म-श्री[४] और ब्रह्मश्री तथा नरेन्द्रश्री अर्थात् राज्यश्री[५]। एक स्थान पर 'श्री' के रूप से उपमा भी दी गयी है – 'रूपश्रिया'[६]।

भास के 'प्रतिमा' नाटक में राज्यश्री शब्द[७] "वल्कलैर्हृतराज्यश्रीः पदातिः सह भार्यया," पद में मिलता है तथा लक्ष्मी शब्द भी इसी भाव में दूसरे पद में मिलता है – 'मम मातः प्रियं कर्तुं येन लक्ष्मीर्विसर्जिता।'[८] 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' में भी 'श्री' शब्द राज्यश्री के अर्थ में शत्रु की 'श्री' शत्रोः श्रियं सुहृदां यशश्च हित्वा प्राप्तो जयश्च नृपतिश्च महांश्च शब्दः,' पद में प्राप्त होता है[९]। 'कर्णभार' में राज्यलक्ष्मी को तुरंग के समान ही साधने को लिखा है – 'रवितुरगसमा॑ राधनं राज्यलक्ष्म्याः'[१०] अर्थात् रवि के घोड़े के समान भागती हुई राज्यलक्ष्मी को बड़े यत्न से रक्खा जा सकता है।

कालिदास ने रघुवंश में 'श्री' को धनसमृद्धि का द्योतक माना है। उन्होंने सुरश्री और रिपुश्री की चर्चा की है[११]। 'श्री' को शोभा के अर्थ में[१२] तथा लक्ष्मी को कमल का छत्र हाथ में लिये हुए राज्यलक्ष्मी के रूप में[१३] वर्णन किया है।

---

१. उपर्युक्त — ३, २१३, २५ से आगे।
२. उपर्युक्त — अनुशासन पर्व, अध्याय ९८, ५१।
३. भास — स्वप्न वासवदत्ता – १, १।
४. वही — उपर्युक्त – ५, १।
५. वही — उपर्युक्त – ६, ७।
६. वही — उपर्युक्त – ५, २।
७. वही — प्रतिमा नाटक – अंक ३ – २०।
८. वही — प्रतिमा नाटक – अंक ४ – ३।
९. वही — प्रतिज्ञा यौगन्धरायण – अंक ४ – ६।
१०. वही — कर्णभार – प्रथम अंक – १९।
११. कालिदास — रघुवंश – ३–५६; ६–५५।
१२. वही — उपर्युक्त – ६–५,
१३. वही — उपर्युक्त – ४–५; १२–१५, १६; कुमार सम्भव – ७–८९, १४–३।

कालिदास ने 'श्री' और सरस्वती की लड़ाई का भी संकेत किया है – "निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थम-स्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च"[१] तथा लक्ष्मी के चंचला होने की बात मिलती है। [कालिदास कहते हैं कि लक्ष्मी को लोग चंचला का दोष लगाते हैं, परन्तु वह दोष उनका धुल गया जब से वे इनके साथ रहने लगीं, क्योंकि लक्ष्मी उसी पुरुष को छोड़कर चंचला हो जाती हैं जो व्यसनी होते हैं : "येन श्रियः संश्रयदोषरूपस्वभावलोलेत्ययशः प्रमृष्टम्।"[२] लक्ष्मी नारायण के स्वयम्वर की कथा भी रघुवंश में मिलती है (इन्दुमती ने अज को उसी प्रकार वरण कर लिया जैसे लक्ष्मी ने नारायण को कर लिया था)––

पद्मेव नारायणमन्यथासौ लभेत कान्तं कथमात्मतुल्यम्।

इसी प्रकार लक्ष्मी नारायण के स्वयम्वर के नाटक का भी विवरण विक्रमोर्वशी में है, यहाँ शेषशायी भगवान् की मूर्ति का भी विवरण मिलता है, जो देवगढ़ के विष्णु की प्रतिमा से बहुत कुछ मिलता है। यहाँ 'श्री' विष्णु के पास[३] कमल पर बैठी हुई उनका चरण गोद में रखे हुए पलोटती हुई वर्णित हैं। इनके कमर में मेखला तथा रेशमी वस्त्र हैं :

भोगिभोगासनासीनं ददृशुस्तं दिवौकसः।
तत्फणामण्डलोदर्चिर्मणिद्योतितविग्रहम्॥
श्रियः पद्मनिषण्णायाः क्षौमान्तरितमेखले।
अङ्के निक्षिप्तचरण आस्तीर्णकरपल्लवे॥[४]

जब रामचन्द्र जी गर्भ में आये तो दशरथ जी की रानियों को जो स्वप्न हुआ है उसका वर्णन करते हुए कालिदास जी कहते हैं––

विभ्रत्या कौस्तुभन्यासं स्तनान्तरविलम्बिनम्।
पर्युपास्यन्त लक्ष्म्या च पद्मव्यजनहस्तया[५]॥

यहाँ लक्ष्मी पंखा तथा पद्म हुए लिये दिखाई गयी हैं। पंखा लिये हुए शुंगकालीन कई मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिन्हें इस आधार पर लक्ष्मी समझा जा सकता है[६]।

कालिदास ने उर्वशी अप्सरा को[७] तथा मालविका को[८] लक्ष्मी रूपी कहा है––

मामियमभ्युत्तिष्ठति विनयादुपस्थिता प्रियया।
विस्तृतहस्तकमलया नरेन्द्रलक्ष्म्या वसुमतीव॥

---

१. वही –– उपर्युक्त – ६–२९ तथा विक्रमोर्वशी – पाँचवाँ अंक – २४।
२. वही –– उपर्युक्त – ६–४१, १७, ४६।
३. वही –– उपर्युक्त – ७–१३ – विक्रमोर्वशी – तीसरी अंक – गालव तथा पेलव।
४. वही –– उपर्युक्त – १०–७, ८।
५. वही –– उपर्युक्त – १०–६२।
६. एस० सी० काला –– टेराकोटा फिगुरीन्स फ्राम कौशाम्बी – प्लेट २३–ए।
७. कालिदास –– विक्रमोर्वशी – प्रथम अंक – रम्भा – 'महेन्दस्सपच्चादेसो रूपगव्विदाए सिरि-गोरिए अलंकारो सगस्स सगस्स साणो पिअसही उव्वसी।'
८. वही –– मालविकाग्निमित्र – अंक ५ – ६।

शूद्रक के लिखे हुए "मृच्छकटिक" नाटक में हमें बहुत थोड़ी सी समग्री प्राप्त होती है। नाटक के चतुर्थ अंक में शिवालिक मदनिका से कहता है कि 'साहसे श्रीः प्रतिवसति', जिससे यह तात्पर्य निकलता है कि जो जोखिम में नहीं पड़ना चाहता उसको लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं होती, आज भी यह धारणा प्रचलित है।

शूद्रक ने आगे चलकर अपनी नायिका वसन्तसेना की पद्मरहित 'श्री' के साथ तुलना की है 'अपद्मा श्रीरेव'[१] अर्थात् वसन्त सेना लक्ष्मी की भाँति सुन्दर है। यहाँ भी 'श्री' से पद्म का सम्बन्ध प्राप्त होता है। एक और लोकोक्ति हमें 'श्री' के विषय में पाँचवें अंक में प्राप्त होती है जैसे 'जिसे नया धन प्राप्त होता है वह अपना नित्य नवीन स्वरूप बनाता है' अर्थात् नये रईस की भाँति नित्य नये-नये वस्त्र इत्यादि पहिनता है, जिसमें उसे लोग धनवान समझें—

"उन्नमति नमति वर्षति गर्जति मेघः करोति तिमिरौधम्।
प्रथमश्रीरिव पुरुषः करोति रूपाण्यनेकानि[२]।"

दूसरी लोकोक्ति जो मिलती है वह यह है कि 'श्री' उसको छोड़ देती है जो शरणागत को छोड़ देता है। "त्यजति किल तं जयश्रीर्जहति च मित्राणि बन्धुवर्गश्च। भवति च सदोपहास्यो यः खलु शरणागतं त्यजति[३]।" ये शब्द गोप बालक आर्यक चन्दक से कहते हैं और चन्दक इनको बचा भी देता है (यहाँ हमें जयश्री शब्द भी प्राप्त होता है)।

विशाखदत्त के "मुद्रा-राक्षस" में, जो प्रायः छठवीं शताब्दी का ग्रंथ माना जाता है[४], कौमुदी महोत्सव का विशद वर्णन प्राप्त होता है[५]। यहाँ उस काल में इस महोत्सव की तैयारी इस प्रकार होती थी कि 'श्री' को प्रसन्न करने के हेतु खम्भों पर मालाएँ लटकायी जाती थीं तथा धूप की सुगन्धि चारों ओर दी जाती थी और पृथ्वी को चन्दन के जल से सींचा जाता था[६]। विटों (छैलों) के साथ वेश्याएँ धीरे-धीरे राजमार्ग पर चलती थीं[७] तथा नृत्य और गीत द्वारा पुरुषों का मन लुभाती थीं। यह महोत्सव वर्षा के अवसान पर शरत्पूर्णिमा को मनाया जाता था[८]।

लक्ष्मी का स्वभाव भी विशाखदत्त ने इन शब्दों में वर्णन किया है—

तीक्ष्णादुद्विजते, मृदौ परिभवत्रासान्न सन्तिष्ठते
मूर्खान् द्वेष्टि न गच्छति प्रणयितामत्यन्तविद्वत्स्वपि।
शूरेभ्योऽप्यधिकं बिभेत्युपहसत्येकान्तभीरूनपि
श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्या भृशम्॥ २; अंक ३, ५

अर्थात् लक्ष्मी अत्यन्त उग्र राजा से अलग हो जाती है, शत्रुकृत पराभव के भय से सहनशील राजा के पास भी नहीं ठहरती और मूर्ख राजाओं से द्वेष रखती है। अत्यन्त विद्वान् राजाओं से भी यह प्रेम नहीं करती तथा पराक्रमी

---

१. मृच्छकटिक—अंक ५-१२।
२. उपर्युक्त—अंक ५-२६।
३. उपर्युक्त—अंक ६-१८।
४. बलदेव उपाध्याय—संस्कृत साहित्य का इतिहास—(१९४८) पृष्ठ २३४।
५. विशाखदत्त—मुद्राराक्षस—३ अंक।
६. वही—उपर्युक्त—३, २।
७. वही—उपर्युक्त—३, १०।
८. वही—उपर्युक्त—३, ९।

राजाओं से बहुत डरती है। डरपोक राजाओं का तो उपहास ही करती रहती है। लक्ष्मी का प्रेम वारांगना की भाँति बहुत ही कष्ट से प्राप्त होता है। लक्ष्मी की एक और स्थान पर पुंश्चली स्त्री से उपमा दी गई है[१] .था यह कहा गया है—

"पतिं त्यक्त्वा देवं भुवनपतिमुच्चैरभिजनं, गताच्छिद्रेण श्रीर्वृषलमविनीतेव वृषली।
स्थिरीभूता चास्मिन् किमिह करवाम स्थिरमपि, प्रयत्नं नो येषां विफलयति दैवं द्विषदिव।।"

हे लक्ष्मी, तू दुश्चरित्र स्त्री के समान उच्चकुल में उत्पन्न नन्दरूप पति को छोड़ कर छल से चन्द्रगुप्त के पास चली गयी। केवल चली ही नहीं गयी परन्तु वहाँ जाकर स्थिर हो गयी।[२]

मौर्य लक्ष्मी, नन्दलक्ष्मी इत्यादि कई प्रकार की लक्ष्मी का वर्णन किया गया है। राज्यलक्ष्मी की हस्तिनी से[३] तथा आलिंगन करनेवाली माला से भी विशाखदत्त ने उपमा दी है[४]।

माघकृत शिशुपाल वधम् काव्य में वासुदेव को 'श्रियः पतिः' कहा है[५]। इस विश्वास में विष्णु पुराण की छाया मिलती है – 'राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि'। माघ ने 'श्री' को चंचला भी बताया है[६]। इनको मृग के समान द्रुत गति वाला कहा है[७] तथा चपला के साथ उपमा भी दी है[८]। इन्हें विष्णु की 'उरःस्थिता' कहा है तथा आनन्ददायिनी बताया है[९]। 'श्री' शब्द का माघ ने सौन्दर्य के अर्थ में भी प्रयोग किया है[१०]। माघ ने एक स्थान पर लक्ष्मी को 'निलयः' भी कहा है[११]। इससे यह ज्ञात होता है कि उस समय तक यह धारणा बन चुकी थी कि नीलम को पहिनने से 'श्री' की प्राप्ति होती है (यहाँ 'निलयः' का दो अर्थ प्रतीत होता है एक तो विष्णु तथा दूसरा नीलम)। इसी श्लोक में लक्ष्मी की जल से उत्पत्ति भी वर्णित है — 'यदेव जलजन्मतया।'

माघ ने स्त्री की सुन्दरता को लक्ष्मी से उपमा देते हुए कहा है[१२] —

प्रकटमलिनलक्ष्मी भ्रष्टपत्राङ्गुलीकैरधिगतरतशोभैः प्रत्युषः प्रषितश्रीः।

(रति के पश्चात् स्त्री की शोभा कैसी हो जाती है यहाँ इसी का वर्णन है।)

एक श्लोक में 'श्री' को विष्णु की पत्नी स्पष्ट रूप से कहा है, 'द्विजेन्द्रकान्तं श्रितवक्षसं श्रिया' यहाँ द्विजेन्द्र का अर्थ गरुड़ से किया गया तथा उसके कान्त विष्णु तो हैं ही।[१३] माघ के एक दूसरे श्लोक में पद्म तथा गज से भी 'श्री' का सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है[१४]।

---

१. वही — उपर्युक्त – ६, ५।
२. वही — उपर्युक्त – ६, ६ ।
३. वही — उपर्युक्त – २, ३ ।
४. वही — उपर्युक्त – २, २१।
५. माघ — शिशुपालवधम् – १, १ ।
६. वही — उपर्युक्त – १, ४४।
७. वही — उपर्युक्त – १२, ४२ ।
८. वही — उपर्युक्त – ६, १६ ।
९. वही — उपर्युक्त – ३, १३ ।
१०. वही — उपर्युक्त – ३, ५८, ३, ७१, ७, १।
११. वही — उपर्युक्त – ६, १६।
१२. वही — उपर्युक्त – ११, ३० ।
१३. वही — उपर्युक्त – १५, ३।
१४. वही — उपर्युक्त – १२, ६१ ।

भवभूति के 'मालती माधव' में सूर्य से प्रार्थना करते हुए यह कहा गया है कि 'सकल सौख्य सम्पादन समर्था लक्ष्मीं धेहि[१]।' यहाँ एक स्थान पर कपोलों की तुलना हिमांशु-लक्ष्मी के रंग से की गयी है जो निष्कलंक है। चन्द्रमा से समानता न देने का कारण यह बताया गया है कि चन्द्रमा में कलंक है[२]। परन्तु यहाँ 'श्री' के स्तन कनक-कुम्भ के समान कहे गये हैं[३]। इस प्रकार एक ओर इनका वर्णन श्वेत और दूसरी ओर पीत बताया गया है। लक्ष्मी को मंगलदायक भी बताया है – 'समग्र-सौभाग्यलक्ष्मीपरिग्रहैकमङ्गलम्[४]।'

हर्षचरित में लक्ष्मी का जो स्वरूप मिलता है उसी आकार से मिलती हुई मूर्तियाँ मथुरा में मिली हैं इससे इस विवरण का मूर्त स्वरूप हमें मिल जाता है।[६] यहाँ जो लक्ष्मी का स्वरूप मिलता है वह यों है—एक हाथ में कमल, नूपुर गुल्फ तक चढ़े हुए, नीचे के शरीर के भाग में घनी कटकावली, शरीर पर श्वेत अंशुकी वस्त्र जिसमें तरह-तरह के पुष्प तथा पक्षी बने हुए हैं—"बहुविधशकुनिशतशोभितात् पर्वतचलिततनुतरङ्गात् अतिस्वच्छादंशुकात्[७]" तथा "राजहंसमिथुन-लक्ष्मणी सदृशे दुकूले[८]।" हृदय पर हार, कान में दन्तपत्र कुण्डल, कान पर अशोक किसलय का अवतंश, मस्तक पर एक टिकुली, गले की एक माला धरती छूती हुई, पैरों में नूपुर, "प्रचलित लक्ष्मी नूपुर प्रसाद प्रतिमा[९]"। इसी ढंग की मूर्ति जो मथुरा से प्राप्त हुई है वह भी इसी प्रकार के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित है[१०]। लक्ष्मी का शंख से सम्बन्ध हमें हर्षचरित के प्रथम तथा तृतीय उच्छ्वास में प्राप्त होता है—"विविधरत्न-खण्डखचितेन शङ्खक्षीरफेनपाण्डुरेण क्षीरोदेनेव स्वयं लक्ष्मीं ददातु" तथा 'कमल लक्ष्मी प्रबोधमङ्गल शङ्खे-ष्विव।" ललाट पट्ट में 'श्री' का निवास समझा जाता था। उसकी भी झलक प्रथम उच्छ्वास में मिलती है—"सहजलक्ष्मीसमालिङ्गितस्य ललाटपट्टस्य।" विष्णु को लक्ष्मीनिवास भी अष्टम उच्छ्वास में कहा है—'अयं लक्ष्मीनिवासो जनार्दनः'। राज्यलक्ष्मी के स्वरूप में लक्ष्मी हम को चौथे उच्छ्वास में मिलती हैं—'मालवलक्ष्मी-लतापरशुः प्रभाकरवर्धनो नाम राजाधिराजः'। रणश्री का वर्णन भी हमें हर्षचरित में मिलता है—'वीर-गोष्ठीषु अनुरागसन्देशम् इव रणश्रियः श्रीवन्तम्[१०]।' यहाँ हमें उस 'श्री' पर्वत का नाम भी मिलता है जो आन्ध्र प्रदेश में है[११]।

---

१. भवभूति –– मालती माधव – १, ५।
२. वही –– उपर्युक्त – १, २५।
३. वही –– उपर्युक्त – ४, १०।
४. वही –– उपर्युक्त – ६, ८।
५. डा० वासुदेव शरण अग्रवाल –– हर्ष चरित – पृष्ठ ६१।
६. हर्षचरित – ११४। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल –– उपर्युक्त चित्र ३२।
७. उपर्युक्त – सातवाँ उच्छ्वास, पृष्ठ – २०२। 'धरणितलचुम्बिनीभिः कंठकुसुममालाभिः'
८. उपर्युक्त –– षष्ठ उच्छ्वास – पृष्ठ २००।
९. डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल – कैटलाग ऑफ कर्जन म्युजियम ऑफ आर्केआलाजी मथुरा फलक ६ – नं० ३१, ३२। मथुरा से गज लक्ष्मी की मूर्ति भी प्राप्त हुई है, जो शुंगकालीन है। फलक ९९।
१०. डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ १३।
११. वही –– उपर्युक्त – पृष्ठ ८।

श्री हर्ष द्वारा विरचित नैषध महाकाव्य में नल को अट्ठारह द्वीपों की जयश्री की प्राप्ति का वर्णन यहाँ मिलता है। यहाँ हमें 'नरेन्द्र श्री' का भी दर्शन होता है[१]। यहाँ 'श्री' की छटा से नल के मुख की छटा को इस कवि ने समानता दी है[२] तथा 'श्री' शब्द को कान्ति के अर्थ में कई प्रकार से प्रयोग किया है[३] जैसे मन्मथश्रिया, तनुश्रिया, स्फुटश्री, मुखश्री, रूपश्रिया, देहश्रिया, भुवश्री, युवतीश्रिया इत्यादि[४]। शोभा के अर्थ में 'श्री' शब्द का प्रयोग इस महाकाव्य में श्रीहर्ष ने किया है तथा धन के अर्थ में भी[५]। दमयन्ती के गुणों की समुद्र से उत्पन्न 'श्री' के साथ बड़े सुन्दर ढंग से समानता दर्शायी गयी है :

श्रियमेव परं धाराधिपाद् गुणसिन्धोरुदितामवेहि ताम्[६]।

दमयन्ती को अन्यत्र लक्ष्मी के समान रूपवती भी कहा है[७]। श्रीहर्ष ने 'श्री' को विष्णु की पत्नी कई स्थानों पर कहा है[८]। नल को विष्णु का अवतार मानते हुए दमन्यती को लक्ष्मी-स्वरूपा कह कर विवाह के पूर्व नल को आलिंगन करने पर भी उसके व्रत को अखण्ड मानने का वर्णन भी बड़ा रोचक है[९]—

श्रियस्तदालिङ्गनभूर्नभूता व्रतक्षतिः कापि पतिव्रतायाः।
समस्तभूतात्मतया न भूतं तद्भर्तुरीर्ष्याकलुषाणुनाऽपि।

नैषध में हमें समुद्र मन्थन से 'श्री' का जन्म[१०], प्रादुर्भाव के पश्चात् इनका चरण कुश द्वीप की पवित्र शिला पर पड़ना[११] तथा समुद्र का पुरुषोत्तम को लक्ष्मी का प्रदान करना[१२] और विष्णु का इनको पत्नी के रूप में पाना प्राप्त होता है। विष्णु को इन्द्र का भाई कहा है (यों भी विष्णु का एक नाम उपेन्द्र विष्णुसहस्रनाम में मिलता है)। इस प्रकार यह संकेत किया गया है इन्द्र को विवाह करने पर लक्ष्मी जो विष्णु पत्नी हैं वे दमयन्ती की सम्बन्धिनी हो जायगी[१३]। विष्णु को श्रीप्रिय तथा श्रीवत्स चिह्न धारण किये हुए, वर्णन किया गया है[१४]। आगे चलकर तो लक्ष्मी को विष्णु के वक्षस्थल पर स्थित वर्णन किया गया है—

---

१. श्री हर्ष — नैषध महाकाव्यम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, सं० २०१०, पूर्व १–५ तथा पृ० ३–३६।
२. वही — उपर्युक्त – पू० १–२४।
३. वही — उपर्युक्त – पू० १–२६, ३१, ३८, ५६।
४. वही — उपर्युक्त – पू० २–१८, १–११५, ३–३२, ६–५४, उत्तर १५–८७, १७–१२३, १८–३२।
५. वही — उपर्युक्त – पू० १–१२७ तथा पू० १०–१ 'श्रीजित यक्षराजः'
६. वही — उपर्युक्त – पू० २–१६।
७. वही — उपर्युक्त – पू० २–१०७, १०–११५, ७–५५।
८. वही — उपर्युक्त – पू० ६–५६।
९. वही — उपर्युक्त – पू० ३–३१।
१०. वही — उपर्युक्त – पू० ६–८०।
११. वही — उपर्युक्त – पू० ११–६०।
१२. वही — उपर्युक्त – उत्तर १६–१२ 'यथावदस्मै पुरुषोत्तमाय ताम् स साधु लक्ष्मीम् बहुवाहिनीश्वरः।'
१३. वही — उपर्युक्त – पू० ६–८३।
१४. वही — उपर्युक्त – उत्तर २१–८०।

तावकोरसि लसद्वनमाले श्रीफलद्विफलशाखिकयेव ।
स्थीयते कमलयात्वदजस्रस्पर्शकण्टकितयोत्कुचया च ।।[१]

यहाँ हमें क्षीर समुद्र में सोते हुए विष्णु और उनके चरणों को धीरे-धीरे दबाती हुई लक्ष्मी के चित्र का भी दर्शन होता है—

त्वद्रूपसम्पदवलोकनजातशङ्कपादाब्जयोरिह कराङ्गुलिलालनेन ।
भूयाश्चिराय कमलाकलितावधाना निद्रानुबन्धमनुरोधयितु धवस्य ।।[२]

लक्ष्मी का सम्बन्ध कमल से कई स्थानों पर यहाँ प्राप्त होता है। इन्हें पद्मा[३], कमला[४] इत्यादि कहा गया है। सरस्वती तथा लक्ष्मी दोनों ही विष्णु-पत्नी के रूप में हमें यहाँ मिलती हैं[५] यह धारणा पुराणों की कथा पर स्थित है, जैसा पहिले कहा जा चुका है।

इस महाकाव्य में लक्ष्मी शब्द हमें उसके मूल अर्थ लक्षण के रूप में भी मिलता है। यहाँ चन्द्रमा को 'लक्ष्मीक्रियते सुधांशु' कहा है—

'अन्तः सलक्ष्मीक्रियते सुधांशो रूपेण पश्ये हरिणेन पश्य।'[६]

श्रीहर्षदेव कृत नागानन्द नाटक में एक युक्ति में यह वर्णन मिलता है कि क्या विष्णु कभी अपने वक्ष-स्थल से लक्ष्मी को अलग कर सकते हैं[७], अर्थात् लक्ष्मी विष्णु के वक्षस्थल पर सदैव बनी रहती हैं। यहाँ हमें दिवाली के उत्सव का प्रकरण प्राप्त होता है तथा इस पर्व पर लोग जामाता तथा कन्या को उपहार भी देते थे, यह प्रथा भी मिलती है[८]। जलहस्ति के वर्णन से ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय तक ऐसी धारणा थी कि एक प्रकार का हाथी जल में भी रहता है जिसका पूर्वज ऐरावत था—'कवलितलवङ्गपल्लवकरिमकरोद्गारि सुरभिणा पयसा।'[९] इस नाटक में हर्ष ने जीमूतकेतु की रानी की उपमा श्री से दी है तथा उन्हें 'सुसुह-शीम्' कहा है। राजा की रानी राज्यलक्ष्मी की द्योतक होने के कारण श्री से उनको सम्बन्धित करना ठीक ही था, परन्तु श्री की सुन्दरता भी यहाँ वर्णित है।

चक्रवर्ती राजा को अभिषेक के समय रत्नजटित सुवर्ण के कुम्भों से स्नान कराया जाता था। इस क्रिया से उसको चक्रवर्ती पद पर प्रतिष्ठित समझते थे। इस क्रिया का प्रकरण यहाँ प्राप्त होता है।[१०]

---

१. वही — उपर्युक्त – उत्तर २१–८५; पू० ११–५७।
२. वही — उपर्युक्त – पू० ११–४२।
३. वही — उपर्युक्त – पू० ४६; ११–५७।
४. वही — उपर्युक्त – ११–४२।
५. वही — उपर्युक्त – पू० ७–४६।
६. वही — उपर्युक्त – उत्तर २२–१३२।
७. वही — नागानन्द द्वितीय अंक – चेती – कि मधुभहणीं मधुमहणी वच्छत्थलेण लच्छिम् अणुव्व-हंतोणिव्वुदो भोदि।
८. हर्ष — नागानन्द – चतुर्थ अंक – प्रतिहार – "आदिष्टोऽस्मि महाराज विश्वावसुना, यथा 'भो सुनन्द। गच्छ, मित्रावसुं ब्रूहि, अस्मिन्दीप प्रतिपदुत्सवे मलयवत्या यत् किंचित् प्रदीयते....।'
९. वही — उपर्युक्त – चतुर्थ अंक – ४।
१०. वही — उपर्युक्त – पंचम अंक – ३७।

गजलक्ष्मी की मूर्तियों में गज हेमकुम्भों से जो लक्ष्मी को स्नान कराते हैं वह भी राज्याभिषेक ही है, जैसा यहाँ देवी करती हैं।

नारायण भट्टकृत वेणीसंहार में राज्यश्री के अर्थ में लक्ष्मी शब्द का प्रयोग हुआ है। यहाँ कुरु लोगों की राज्य-लक्ष्मी के सम्बन्ध में कहा गया है कि यह चारों समुद्रों की सीमा तक फैली हुई है :[1]

लक्ष्मीरार्ये निषक्ता चतुरुदधिपयः सीमया सार्धमुर्व्या।

इसी नाटक में लक्ष्मी शब्द जयलक्ष्मी के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है।[2]

दण्डिकृत दशकुमार चरितम् में जयलक्ष्मी शब्द प्रयुक्त हुआ है—

'मालवनाथो जयलक्ष्मीसनाथो मगधराज्यम् प्राज्यं समाक्रम्य पुष्पपुरमध्यतिष्ठत्।'

यहाँ जयलक्ष्मी जीती हुई राज्यलक्ष्मी के अर्थ में आया है[3]। राज्यलक्ष्मी भी एक दूसरे स्थान पर मिलता है, कालिन्दी कहती है कुमार से कि 'लोकस्यास्य राजलक्ष्मीमङ्गीकृत्य मां सपत्नीम् करोति भवान्[4]।' पूर्व-पीठिका के चतुर्थ उच्छ्वास में बालचन्द्रिका तो लक्ष्मी को मूर्ति कहा है[5], जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि उस काल में लक्ष्मी के मन्दिर बनते थे। 'बालचन्द्रिकां नाम तरुणीरत्नं वणिङ्मन्दिरलक्ष्मीम् मूर्तमिवावलोक्य'। श्री शब्द यहाँ भी शोभा अथवा कान्ति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, यथा 'वपुःश्रीः, तस्य दुहिता-प्रत्यादेश इव श्रियः देहिनं श्रियः।'[6] लक्ष्मी के हेतु कमला शब्द भी प्रयुक्त हुआ।[7] तथा लक्ष्मी को कमल-धारिणी भी कहा है, 'चित्रीयाविष्टचित्तश्चाचिन्तयं किमियं लक्ष्मीः। नहि नहि तस्याः किल हस्ते विन्यस्तं कमलम्.....'[8] लक्ष्मी को दण्डी ने अम्बुजा भी कहा है, 'अम्बुजासनास्तनतटोपभुक्तमुरःस्थलमिदमालिङ्गयितुम्'।[9]

भर्तृहरि के नीतिशतक में लक्ष्मी शब्द धन का द्योतक है।[10] विजयश्री की प्राप्ति वीरों को तलवार से होती है, यह भी विवरण यहाँ मिलता है, 'विजयश्रीर्वीराणाम् व्युत्पन्नप्रौढ़वनितेव।[11]' सौभाग्य लक्ष्मी भी श्रृंगारशतक में प्राप्त होती है–'तन्वी नेत्रचकोरपारणविधौ सौभाग्यलक्ष्मीः निधौ, धन्यः कोऽपि न विक्रियां कलयति प्राप्ते नवे यौवने, [12]' यहाँ लक्ष्मी को श्वेतातपत्रोज्ज्वला भी कहा है। 'शुभ्रं सद्म सविभ्रमा युवतयः

१. नारायण भट्ट – वेणी संहार – अंक ६–३९।
२. वही –– उपर्युक्त – पंचम अंक २१, पृष्ठ ३१–३९।
३. दण्डिकृत दशकुमार चरितम्––निर्णय सागर प्रेस, शाके १८३५ पूर्व पीठिका, प्रथम उच्छ्वास, पृष्ठ ९।
४. दण्डि –– उपर्युक्त पूर्व पीठिका द्वितीय उच्छ्वास – पृष्ठ २६, राजलक्ष्मी – उत्तर – चतुर्थ उच्छ्वास, पृष्ठ १८४।
५. वही –– उपर्युक्त – पूर्व पीठिका, चतुर्थ उच्छ्वास, पृष्ठ ३८।
६. वही –– उपर्युक्त – उत्तर, तृतीय उच्छ्वास, पृष्ठ १४४; पंचमोच्छ्वास, पृष्ठ २००; सप्तमोच्छ्वास, पृष्ठ २४४।
७. वही –– उपर्युक्त – उत्तर तृतीय उच्छ्वास, पृष्ठ १६१।
८. दण्डि –– उपर्युक्त – उत्तर षष्ठ उच्छ्वास, पृष्ठ २०८।
९. वही –– उपर्युक्त – उत्तर – प्रथम उच्छ्वास – पृष्ठ ५७–५८।
१०. भर्तृहरि –– नीतिशतक – १५; ६४; ८४; वैराग्य शतक – ६९।
११. वही –– उपर्युक्त – १२६।
१२. वही –– श्रृंगार शतक – ७१।

श्वेतातपत्रोज्ज्वला, लक्ष्मीरित्यनुभूयते स्थिरमिव स्फीते शुभे कर्मणि ।'[१] लक्ष्मी को माता लक्ष्मी कह कर भी सम्बोधन किया है[२] तथा श्री को सकल काम की देनेवाली कहा है--'प्राप्ता श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं ।'[३] लक्ष्मी को चंचला कहा है[४] और कहा है कि यह वेश्या के सदृश राजा की भृकुटी के विलास पर काम करती है, 'चेतश्चिन्तय मा रमां सकृदिमामस्थायिनीमास्थया, भूपालभृकुटी विहरणव्यापारपण्याङ्गनाम्'।

श्री मुरारी कवि के अनर्घ राघव में प्रारम्भ में ही कमला अर्थात् लक्ष्मी को पुरुषोत्तम-प्रिया विष्णु की स्त्री कहा है ।[५] यहाँ ब्रह्मश्री को भी लक्ष्मी कहा है । कदाचित् इस काल तक ब्रह्मश्री और लक्ष्मी में भेद नहीं रह गया था । विश्वामित्र जी की श्री को देखकर रामचन्द्र जी कहते हैं--'तपस्तेजोमयीं लक्ष्मीमद्य पुष्णाति मे गुरुः ।'[६] रामचन्द्र जी के किये हुए पुण्यों की जो श्री अथवा कांति उनके मुख पर विराज रही है, उसको भी लक्ष्मी कहा है,[७] (पुण्य लक्ष्मीकयो) । रावण के प्रताप का वर्णन करते हुए यहाँ मुरारी ने कहा है कि इसके प्रासाद में चौदह लोकों की लक्ष्मी सुस्थित है । तथा त्रिभुवन की श्री भी इसके पास है ।[८] धनुष-यज्ञ के प्रकरण में सीता जी को त्रिभुवन-विजय-श्री की सपत्नी कहा है ।[९] लक्ष्मी से गज का भी सम्बन्ध यहाँ प्राप्त होता है ।[१०] राज्यलक्ष्मी का भी हमें यहाँ दर्शन होता है ।[११] तथा राक्षस-लक्ष्मी का भी ।[१२] लक्ष्मी से सागर का सम्बन्ध भी यहाँ प्राप्त होता है,[१३] (भगवान् अम्बुराशि कैसे हैं, 'लक्ष्मीरस्य हि यादः कृष्णोरःस्थापि सुभटभुजवसतिः) । तथा लक्ष्मी, अमृत इत्यादि की उत्पत्ति समुद्र से है इसकी कथा भी यहाँ प्राप्त होती है ।[१४]

ग्यारहवीं शताब्दी के भोजकृत समरांगण सूत्रधार में वास्तुशास्त्र के विविध विषयों के विवेचन के साथ हमें पुरनिवेश नाम के दसवें अध्याय में लक्ष्मी तथा वैश्रवण को द्वार पर बनाने का आदेश मिलता है।[१५] यह लक्ष्मी सौम्य मुखी होनी चाहिये । 'द्वारे द्वारे सौम्यमुखौ लक्ष्मीवैश्रवणौ शुभौ ।' इस काल तक गणेश की मूर्ति

---

१. वही -- श्रृंगार शतक - ९५ ।
२. वही -- वैराग्य शतक - ६० ।
३. वही -- उपर्युक्त - ६७ ।
४. वही -- उपर्युक्त - ११९ ।
५. मुरारी -- अनर्घराघव - सूत्रधार १-१ ।
६. वही -- उपर्युक्त - २, ३८ ।
७. वही -- उपर्युक्त - २, ३४ ।
८. वही -- उपर्युक्त - ३, शोष्कल - ३८ के ऊपर तथा ६-३ ।
९. वही -- उपर्युक्त - ३, ५८ ।
१०. वही -- उपर्युक्त - ४-२० ।
११. वही -- उपर्युक्त - ४-६६ ।
१२. वही -- उपर्युक्त - ६-१९ के ऊपर - मल्यवान ।
१३. वही -- उपर्युक्त - ७-१२ ।
१४. वही -- उपर्युक्त - ७, १३ ।
१५. समरांगणसूत्रधार -- एडिटेड बाई महामहोपाध्याय टी० गनपत शास्त्री, बड़ौदा सेण्ट्रल लाइब्रेरी - १९२४, पृष्ठ ४७, श्लोक १०४, खंड १ ।

के स्थान पर वैश्रवण अथवा कुबेर यक्ष की मूर्ति तथा लक्ष्मी की मूर्ति अंकित करने का जो आदेश है, उससे ऐसा ज्ञात होता है कि उस काल में लक्ष्मी और कुबेर में कुछ सम्बन्ध मानते थे। यों तो दोनों को धन के देवता मानते हैं, परन्तु इनका एक साथ प्रदर्शन कुछ अर्थ रखता है। खम्भों के रिंगार से भी कुबेर और श्री का सम्बन्ध मिलता है।[1]

श्री का सम्पदा के अर्थ में भी प्रयोग हुआ है।[2] आगे चलकर श्री की प्रतिमा बनाने का विवरण जो प्राप्त होता है, वह इस प्रकार है—

द्वारमण्डलमध्यस्था स्नाप्यमाना गजोत्तमैः।
पद्महस्ता श्रीश्च कार्या स्वलंकृता॥

यह चित्र गजलक्ष्मी का हुआ, इनके साथ—

वृषः सवत्सा धेनुर्वा सच्छत्रस्रग्विभूषणा॥
फलपत्रैर्बहुविधैराहारार्थं निवेदितैः।
नानापुष्पफलैर्नम्रैः शालैस्तिर्यगवस्थितैः॥[3]

यहाँ श्रीधरी वेदी बनाने का भी प्रकरण आया है, जो विवाह-कार्य में बनती है। यह सात हाथ के प्रमाण की होती है—

'श्रीधरी सप्त विज्ञेया हस्तमानेन वेदिका। श्रीधरी चापि विज्ञेया कोण-विंशतिसंयुता॥[4] इसका नाम श्रीधरी होने से ऐसा अनुमान होता है कि यह श्री को देनेवाली होती है। इस कारण इसको विवाह में बनाने के हेतु निर्देश है।[5]

विविध प्रकार के प्रासादों के नामों में हमें श्रीकूट, श्रीतरु, इत्यादि नाम मिलते हैं।[6] श्रीवत्स के चिह्न को शुभ मानते थे तथा श्रीनिवास प्रासाद को जय-श्री प्रदाता समझते थे।[7] एक प्रासाद को लक्ष्मी-धरा भी कहते थे।[8] इसको बनाने वाले को विजय प्राप्त होती थी।[9] लक्ष्मीधर प्रासाद के बनाने का विवरण इस प्रकार है—

अथ लक्ष्मीधरं ब्रूमो यं कृत्वा विजयं नरः॥
राज्यमायुष्यपूजां च गुणानाप्नोति चैश्वरान्।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भक्ते षोडशभिः पदैः॥
कर्त्तव्यः षट्पदः कन्दो गर्भसूत्रचतुष्पदः।
चतसृष्वपि दिक्षु स्यात् त्रिभिर्भागैर्भ्रमन्तिका॥

---

१. उपर्युक्त —पृष्ठ १५२ – श्लोक २, ३३, खण्ड १।
२. उपर्युक्त —पृष्ठ १२२, ८।
३. उपर्युक्त —पृष्ठ १९८–२८, २९, ३०, खण्ड १।
४. उपर्युक्त —पृष्ठ २४४–६, ८ खण्ड १।
५. उपर्युक्त —पृष्ठ २४५–१७ खण्ड १।
६. उपर्युक्त —पृष्ठ २५७–१०, ११।
७. उपर्युक्त —पृष्ठ १९–६४ खण्ड १, पृष्ठ ५४ – २०१, खण्ड २।
८. उपर्युक्त —पृष्ठ ३८–६ खण्ड २।
९. उपर्युक्त —पृष्ठ ६८, ६९।

द्विपदा बाह्यभित्तिः स्याच्छुभा कार्या चतुर्दिशम् ।
कर्णेषु शृङ्गमेकैकं द्वे द्वे शृङ्गे तु मध्यगे ।।
द्वयंशानि तानि विस्ताराद् दशशृङ्गाणि दिक्त्रये ।
षट् शालाश्च विधातव्याा शुभा दिक्षु तिसृष्वपि ।।
याम्येन च चतुर्भागा भागद्वितयनिर्गता ।
तलच्छन्दोऽयमुद्दिष्टो मण्डपः पुरतो भवेत् ।।
विस्ताराद् द्विगुणासासः प्रासादस्यास्य चोच्छ्रयः ।
स्यात् त्रयोदशभागोऽत्र प्रमाणेन तुलोदयः ।।
उर्ध्वं च विंशतिपदं वेदीबन्धः पदत्रयम् ।
उत्सेधात् षट्पदा जङ्घा भागेन भरणं भवेत् ।।
भागैस्त्रिभिर्मेखले द्वे शृङ्गे च कलशं त्रिभिः ।
उच्छ्रयेण विधातव्यः सिंहकर्णश्चतुष्पदः ।।
दश शृङ्गाणि कुर्वीत घण्टा पक्वं च दिक्त्रये ।
चतुर्दशांशविस्तारा पञ्चगा मूलमञ्जरी ।।
ऊर्ध्वं सप्तदशांशा च ग्रीवोच्छ्रायः पदद्वयम् ।
अण्डकं द्विपदं कार्यम् भागेनैकेन कर्परम् ।।
कलशं त्रिपदम् मूर्ध्नि वर्तयेत् सुमनोरमम् ।
लक्ष्मीधराख्यम् प्रासादं यः कुर्याद् वसुधातले ।।
अक्षये स पदे तत्त्वे लीयते नात्र संशयः ।[1]

और देवताओं के प्रासादों के साथ हमें "श्री" का भी गृह यहाँ मिलता है –

शम्भोर्हरेर्विरिञ्चस्य ग्रहाणामधिपस्य च ।
चण्डिकाया गणेशस्य श्रियाः सर्वदिवौकसाम् ।।[2]

इनके विमान का विवरण इस प्रकार है –

श्रीवत्समथ वक्ष्यामो दशधा तं विभाजयेत् ।
भागत्रयेण कुर्वीत शालां तत्र विचक्षणः ।।
सार्धभागप्रविस्तारौ रथकौ वामदक्षिणौ ।
मूलकर्णा भवन्त्यत्र भागद्वितयविस्तृताः ।।
प्रासादतरुमात्राभिः प्रत्येकम् भद्रनिर्गमः ।।
द्वयङ्गुलं त्र्यङ्गुलं वाऽपि चतुरङ्गुलमेव वा ।।
भलीमध्ये तु मञ्जर्यः कार्याः पद्मदलोपमाः ।
सर्वतः परिकर्म स्याद् रथिका कर्णसंश्रया ।।
आमलिश्चन्द्रशालाभिः स्कन्धान्तम् परिपूरयेत् ।
खुरपिण्डा च जङ्घा च कुम्भाग्रं शिखरादि च ।।

---

१. उपर्युक्त — पृष्ठ ६८–६९, खण्ड २ ।
२. उपर्युक्त — पृष्ठ १२८–१४३ से १४८ तक, खण्ड २ ।

यत्किंचित् तत् प्रमाणेन वर्धमानसमम् भवेत् ।[१]

श्रीवत्स प्रासाद के लक्षण भी यहाँ हमें मिलते हैं[२]। यहाँ भीत पर चित्र बनाने का भी निर्देश मिलता है ।[३]

मूर्ति बनाने के प्रसंग में हमें – "लक्ष्मास्मिन् कमलांकां लिङ्गे कमलजन्मनि" मिलता है ।[४] विष्णु की मूर्ति श्री के साथ बनाने का निर्देश मिलता है[५] तथा उनका वस्त्र पीत कहा गया है : 'विष्णुर्वैदूर्यसंकाराः पीतवासाः श्रिया कृतः ।[६] श्री की प्रतिमा के विषय में निम्नांकित श्लोक यहाँ मिलते हैं –

पूर्णचन्द्रमुखा शुभ्रा बिम्बोष्ठी चारुहासिनी ।
श्वेतवस्त्रधरा कान्ता दिव्यालंकारभूषिता ।।
कटिदेशनिविष्टेन वामहस्तेन शोभना ।
सपद्मेन वान्तेन दक्षिणेन शुचिस्मिता ।।
कर्तव्या श्रीः प्रसन्नास्या प्रथमे यौवने स्थिता ।[७]

प्रतिमा के चित्र बनाने के हेतु नाप इत्यादि भी इस ग्रंथ में प्राप्त होते हैं ।[८] रस दृष्टि लक्षण नामक अध्याय में चित्र-लिखित प्रतिमा से रस की अनुभूति कराने का विवरण प्राप्त होता है ।[९] इन मूर्तियों द्वारा नौवों रसों का प्रतिपादन किस प्रकार होता है, यहाँ नीचे लिखा है –

शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रप्रेयोभयानकाः ।
वीरप्रत्ययाक्षौ च बीभत्सं वाद्भुतस्तथा ।
शान्तश्चैकादशेत्युक्ता रसाश्चित्रविशारदैः ।।[१०]

इन रसों का विशेष रूप से प्रत्यक्षीकरण दृष्टि तथा भ्रू के द्वारा कराया जाता है ।

मानसार में[११] विष्णु के मन्दिर में विष्णु के परिवार का वर्णन करते हुए वायव्य कोण में लक्ष्मी को स्थापित करने का निर्देश प्राप्त होता है :[१२] 'वायव्ये च महालक्ष्मीं चेशान्ये च सुदर्शनम् ।' मानसार के गृह-प्रवेशविधान में भी लक्ष्मी की स्तुति करने का विधान है, यह इस प्रकार है –

लक्ष्मीं ततो नमस्कृत्य याचयेदिष्टमानकम् ।
हे लक्ष्मि गृहकर्तारम् पुत्रपौत्रधनादिभिः ।।

---

१. उपर्युक्त –– पृष्ठ १८०–१८६; १५ से
२. उपर्युक्त ––पृष्ठ११५, खण्ड २ ।
३. उपर्युक्त –– पृष्ठ १८३–४७ ।
४. उपर्युक्त –– पृष्ठ २४५–७० ।
५. उपर्युक्त –– पृष्ठ २७४ ।
६. उपर्युक्त –– पृष्ठ २७४–३६ ।
७. उपर्युक्त –– पृष्ठ २७४–५०, ५१, ५२ खण्ड २ ।
८. उपर्युक्त –– पृष्ठ २७६–२८५; १५–८८ खण्ड २ ।
९. उपर्युक्त –– पृष्ठ २६८–३०१ खण्ड २ ।
१०. उपर्युक्त –– पृष्ठ २६८–२, ३ ।
११. पी० के० आचार्या – मानसार आन आर्किटेक्चर एण्ड स्कल्पचर – दी आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन ।
१२. वही – उपर्युक्त – पृष्ठ १६७, परिवार विधानम्, अध्याय, ३२-७२ ।

सम्पूर्णं कुरु चायुष्यम् प्रार्थयामि नमोऽस्तु ते ।[१]

मूर्तियों के बनाने की सामग्री में हमें यहाँ पाषाण के अतिरिक्त हिरण्य, रजत, ताम्र, लकड़ी तथा मृतिका भी प्राप्त होती है।[२] विष्णु मूर्ति के साथ यहाँ श्री और भूमि की मूर्ति बनाने का विधान है – 'श्रीभूमिं दक्षिणे वामे स्थावरे जङ्गमेऽपि वा ।'[३]

मानसार में लक्ष्मी और महालक्ष्मी की मूर्ति के दो भेद किये गये हैं। महालक्ष्मी की मूर्ति का भी भेद है, एक चतुर्भुजी और दूसरी दो भुजावाली। चतुर्भुजी मूर्त्ति का विवरण निम्नांकित है –

रक्ताब्जम् पीठतश्चोर्ध्वे देवी पद्मासना भवेत् ।
चतुर्भुजं त्रिनेत्रं च मुकुटं कुन्तलम् भवेत् ।।
पीताम्बरधरां रक्तांशुकोपेताम् (भरणीम्) ।
विशालाक्षमायतं कुर्यादपाङ्गकोणे स्मिताननाम् ।।
दक्षिणे त्वभयम् पूर्वे डिण्डिमं वामहस्तके ।
अपरे दक्षिणे पद्मं चादामालामथापि वा ।।
वामे नीलोत्पलं वापि रक्तपद्मोद्धृतं तु वा ।
पीनोन्नस्तनतटाम् भाले भ्रमरकान्विताम् ।।
अथवा रत्नपट्टं स्यात्स्वर्णताटङ्कं कर्णयोः ।
मकरं कुण्डलं वापि कर्णयोः स्वर्णदामयुक् ।।
हारोपग्रीवसंयुक्तां ससूत्रैश्च सुमङ्गलीम् ।
कुचतटैश्च केकैश्च हेमपट्टविभूषिणीम् ।।
रत्नानि चन्द्रवीरं स्यात् स्वर्णरत्नोत्तरीययुक् ।
केयूरेकटकस्वर्णरत्नपूरिमसंयुताम् ।।
प्रकोष्ठवलयं रत्नैः कटकम् मणिबन्धकैः ।
रत्नेन कटिसूत्रं स्याद्रत्नक्षामादिभूषिणीम् ।।
रत्नहेमं च वस्त्रेण कुर्यान्नीव्यम् च लम्बयेत् ।
नलकान्तं त्रिलम्बं स्यात्सर्वरत्नानि शोभिताम् ।।
भुजङ्गाङ्गवलयम् पादौ चोर्ध्वाधो रत्नबन्धनम् ।
पादनूपुरसंयुक्ताङ्गुली रत्नाङ्गुलीयकाम् ।।
बाहुमूलादि संभूय सर्वाभरणभूषिणीम् ।[४]

द्विभुजा वाली मूर्ति का विवरण अधोलिखित है—

अथवा द्विभुजं चैव वामहस्ते च सन्धिमत् ।३०।
दक्षिणे रत्नपवनं स्याच्छेणं प्रागुक्तवन्नयेत् ।
एवम् प्रोक्ताम् महालक्ष्मीं स्थापयेत्सर्वहर्म्यके ।

---

१. पी० के० आचार्या –– उपर्युक्त––पृष्ठ २६३, गृह प्रवेश विधानम्, अध्याय ३७–३३, ३४, ३५ ।
२. वही –– उपर्युक्त – पृष्ठ ३३४, त्रिमूर्ति लक्षणम् – अध्याय ५१–१, २, ३, ४ ।
३. वही –– उपर्युक्त – पृष्ठ ३३६, त्रिमूर्ति लक्षणम् – अध्याय ५१–३२ ।
४. वही –– उपर्युक्त – पृष्ठ ३५६, ३५७, अध्याय ५४–१६–३१ ।

सामान्य लक्ष्मी को दो भुजा वाली बनाना है[1]।

सामान्यं लक्ष्मीं कुर्याद् द्विभुजां च द्विनेत्रकाम्।
रक्तपद्मोद्धृतौ हस्तौ सर्वाभरणभूषिणीम्॥
शेषं तु पूर्ववम् कुर्याद् देवीपार्श्वे विशेषतः।
ऐरावतद्वयोश्चैव कुर्यादाराधयेत्सुधीः॥
सर्वेषामालये द्वारे मध्याङ्गे तु पूजयेत्।
अथवा विष्णुपार्श्वे तु लक्ष्मीलक्षणमुच्यते॥

विष्णु के बगल में लक्ष्मी कैसी हों––

द्विभुजां च द्विनेत्रां च करण्डमुकुटान्विताम्।
अथवा केशबन्धं स्याद्वामहस्तोद्धृताब्जकम्॥
दक्षिणं हस्तं वरदं च अथवालम्बनम् भवेत्।
स्थानकं आसनं वापि स्थापयेद विष्णुदक्षिणे॥
कुर्यात्तु सर्वलक्ष्मीनाम् मध्यमं दशतालके।
सर्वाभरणसंयुक्तां हेमवर्णाङ्गिशोभिताम्॥[2]

इस प्रकार इस ग्रंथ में कुछ सामग्री लक्ष्मी की मूर्ति के विषय में मिलती है। इनकी मूर्ति दस ताल के बनाने का संकेत यहाँ प्राप्त होता है। उत्तम तथा मध्यम दस ताल के विधान पैंसठवें और छाछठवें अध्यायों में मिलते हैं।

मानसोल्लास में अथवा अभिलषितार्थ चिन्तामणि में जिसे कदाचित् राजा सोमेश्वर भूलोकमल्ल ने प्रायः ११३१ ईसवी में लिखवाया था[3] या लिखा था। इस ग्रंथ में पाँच प्रकरण हैं। प्रत्येक प्रकरण में २० अध्याय हैं। इसके प्रथम प्रकरण में देवता-भक्ति के सिलसिले में हमें धातु की मूर्ति बनाने की विधि प्राप्त होती है। इसी प्रकार कदाचित् हमारे कासे की बोगरा की श्री की मूर्ति तथा दीप लक्ष्मी की मूर्तियाँ बनी होंगी और इसी प्रकार नेवाड़ी कलाकारों ने काँसे की नैपाली लक्ष्मी की मूर्त्तियाँ बनाई होंगी।[4] यह विवरण इस प्रकार है––

नवतालप्रमाणेन लक्षणेन समन्विताः।
प्रतिमाः कारयेत् पूर्वमुदितेन विचक्षणः॥

सर्व्वावयवसम्पूर्णाः किंचित्पीनादृशोः प्रियाः।
यथोक्तैरायुधैर्युक्ताः बाहुभिश्च यथोदितैः॥

तत्पृष्ठे स्कन्धदेशे वा कृकाटचाम् मुकुटेऽथवा।
कासपुष्पनिभं दीर्घं नालकम् मदनोद्भवम्॥

स्थापयित्वा ततश्चार्चां लिम्पेत् संस्कृतया मृदा।
मर्षीं तुषमयीं घृष्ट्वा कार्पासं शतशः क्षतम्॥

---

१. वही –– उपर्युक्त – पृष्ठ ३५७–३०, ३१।

२. वही –– उपर्युक्त – पृष्ठ ३५७, ३२–३७।

३. यह मानसोल्लास के निम्नांकित श्लोक से अनुमान होता है जिसमें राजा सोमेश्वर को लेकर उपमा दी गयी है। प्रायः लेखक स्वयम् अपना उदाहरण नहीं उपस्थित करता। ये राजा पश्चिमी चालुक्यों के कल्याणी वंश के थे।

पक्षच्छेदभयायातभूभृद्रक्षाविधायिनः।
उपमाम् वहतः साक्षात् सोमेश्वरमहीभुजः॥

४. इनकी तिथि निश्चित् न होने से इन्हें इस अध्ययन में सम्मिलित नहीं किया गया है।

लवणं चूर्णितं श्लक्ष्णं स्वल्पं संयोजयेन् मृदा ।
पेषयेत् सर्व्वमेकत्र सुश्लक्ष्णे च शिलातले ।।
वारत्रयं तदावर्त्यं तेन लिम्पेत् समन्ततः ।
अच्छः स्यात् प्रथमो लेपः छायायां कृतशोषणः ।।
दिनद्वये व्यतीते तु द्वितीयः स्यात्ततः पुनः ।
तस्मिछ्ष्के तृतीयस्तु निविड़ो लेप इष्यते ।।
नालकस्य मुखं त्यक्त्वा सर्व्वमालेपयेन्मृदा ।
शोषयेत्तत् प्रयत्नेन युक्तिभिर्बुद्धिमान् नरः ।।
सिक्थकं तोलयेदादावर्च्चालग्नं विचक्षणः ।
रीत्या ताम्रेण रौप्येण हेम्ना वा कारयेत्तु ताम् ।।
सिक्थादक्षुण्णं ताम्रं रीतिद्रव्यं च कल्पयेत् ।
रजतं द्वादशगणं हेम स्यात् षोडशोत्तरम् ।।
मृदा संवेष्टयेद् द्रव्यम् यदिष्टं कनकादिकम् ।
नालिकेराकृतिं मूषां पूर्व्ववत् परिशोषयेत् ।।
वह्नौ प्रतापितामर्चां सिक्थं निःसारयेत्ततः ।
मूषाम् प्रतापयेत् पश्चात् पावकोच्छिष्टवह्निना ।।
रीतिस्ताम्रं च रसतां नवाङ्गारैर्व्रजेद् ध्रुवम् ।
तप्ताङ्गारैर्विनिक्षिप्तै रजतं रसतां व्रजेत् ।।
सुवर्णं रसतां याति पञ्चकृत्वः प्रदीपितैः ।
मूषामूर्द्धनि निर्म्माय रन्ध्रं लौहशलाकया ।।
सन्दंशेन दृढ़ं धृत्वा तप्तम् मूषां समुद्धरेत् ।
तप्तार्चानालकस्यास्ये वर्तिम् प्रज्वलितां न्यसेत् ।।
सन्दंशेन धृतां मूषां तापयित्वा प्रयत्नतः ।
रसं तु नालकस्यास्ये क्षिपेदच्छिन्नधारया ।।
नालकाननपर्यन्तं सम्पूर्य विरमेत्ततः ।
स्फोटयेत्तत्समीपस्थम् पावकं तापशान्तये ।।
शीतलत्वं च यातायाम् प्रतिमायां स्वभावतः ।
स्फोटयेन्मृत्तिकां दग्धां विदग्धो लघुहस्तकः ।।
ततो द्रव्यमयी साऽर्चा यथा मदननिर्मिता ।
जायते तादृशी साक्षादङ्गोपाङ्गोपशोभिता ।।
यत्र क्वाप्यधिकम् पश्येच्चारणैस्तत् प्रशान्तये (त्) ।
नालकं छेदयेच्चापि पश्चादुज्ज्वलतां नयेत् ।।
अनेन विधिना सम्यग् विधायार्चां शुभे तिथौ ।
विधिवत्ताम् प्रतिष्ठाप्य पूजयेत् प्रत्यहं नृपः ।।[२]

श्री की मूर्ति का स्वरूप इस ग्रंथ में इस प्रकार मिलता है—

श्रियं देवीम् प्रवक्ष्यामि नवयौवनशालिनीम् ।

सुलोचनां चारुवक्त्रां गौराङ्गीमरुणाधराम् ।।
सीमन्तम् बिभ्रतीं शीर्षे मणिकुण्डलधारिणीम् ।
श्रीफलं दक्षिणे पाणौ वामे पद्मं तु बिभ्रतीम् ।।
श्वेतपद्मासनासीनां श्वेतवस्त्रविभूषिताम् ।
कञ्चुकाबद्धगात्रीं च मुक्ताहारविभूषिताम् ।।
चामरैर्वीज्यमानां च योषिद्भ्याम् पार्श्वयोर्द्वयोः ।
सामजैःस्नाप्यमानां च शृङ्गारसलिलोत्करैः ।।[१]

इस ग्रंथ में मातृकाओं में वैष्णवी अलग से मिलती है—

मातृणाम् लक्षणं वक्ष्ये ब्रह्माणी वैष्णवी तथा ।।
माहेश्वरी च कौमारी वाराही वासवी तथा ।
सप्तमी नारसिंही च तत्तद्रूपायुधैः समाः ।
तत्तद्वाहनसंयुक्ताः कर्त्तव्या मातरो बुधैः ।।
वीरेश्वरो विधातव्यो मातृणामग्रतस्तथा ।।
वीणात्रिशूलहस्तश्च वृषारूढो जटाधरः ।[३]

यहाँ हमें लक्ष्मी की उत्पत्ति ऐरावत, सुधा इत्यादि के साथ समुद्र से मिलती है[४] तथा इस धारणा का भी संकेत मिलता है कि अच्छे सुवर्ण को कोश में रखने से आयु तथा लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।[५]

सोलहवीं शताब्दी के श्रीकुमार के शिल्परत्न में श्री की मूर्ति का ध्यान इस प्रकार मिलता है—

अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुञ्जवर्णा,
करकमलवृतेष्टाभीतियुग्माम्बुजा च ।
मणिमुकुटविचित्राऽलङ्कृता कल्पजालै-
र्भवतु भुवनमाता सन्ततं श्रीः श्रिये वः ।।[६]

इस प्रकार हमें संस्कृत के साहित्य के ग्रंथों में लक्ष्मी के सम्बन्ध में बहुत सी बातें मिलती हैं जो उन ग्रंथकारों के समय जनता में प्रचलित थीं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे संस्कृत-साहित्य में लक्ष्मी तथा श्री शब्द प्रायः पर्य्यायवाची हैं । लक्ष्मी के स्वरूप की कल्पना एक अति सुन्दर स्त्री के रूप में की गयी है । ये धन तथा राज्य की देवी मानी गयी हैं । इनकी मूर्ति की कल्पना विष्णु की मूर्ति के साथ तथा गजलक्ष्मी के रूप में और कमल पर स्थित कमल धारण किये हुए यहाँ मिलती है । इनके विषय में प्रचलित पौराणिक गाथाओं का संकेत मिलता है ।

१. सोमेश्वर दत्त — मानलोल्लास-प्रथम प्रकरण ७७-६७, सरसी कुमार सरस्वती—एन एनशण्ट टेक्स्ट आन दी कास्टिंग ऑफ मेटल इमेजेज—जे० इ० एस० ओ० ए०, ख० ४-२-१६३६, पृष्ठ १३६-१४३ ।

२. वही — मानसोल्लास, द्वितीय भाग, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा १६३६, पृष्ठ ७०, ७६६-८०३; अभिलषितार्थ चिन्तामणि – सोमेश्वर देव – मैसूर १६२६, पृष्ठ २७० ।

३. सोमदेव — मानसोल्लास – द्वितीय भाग – उपर्युक्त – पृष्ठ ६६-७१६-७१६ ।

४. वही — मानसोल्लास – प्रथम भाग – अभिलषितार्थ चिन्तामणि, पृ० ७७-३७४ ।

५. वही — उपर्युक्त, पृष्ठ ८०-४०१ ।

६. श्रीकुमार — शिल्परत्न – सम्पादक के. साम्बशिव शास्त्री, ट्रिवाण्डरम संस्कृत सीरीज नं० ६८ श्री सेतु लक्ष्मी प्रसाद माला नं० १०, १६२६, खण्ड २०, अध्याय २४, श्लोक ६३, पृष्ठ १४३, ४४ ।

: ७ :

भारतीय मुद्राओं और मोहरों पर तथा अभिलेखों में लक्ष्मी तथा श्री

ऐसा अनुमान होता है कि ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी तक जन-साधारण में यह धारणा पूर्ण रूप से घर कर गयी थी कि लक्ष्मी ही सौभाग्य-प्रदात्री देवी है और इस कारण इनकी पूजा होना स्वाभाविक था। ऐसा भी प्रतीत होता है कि इनको राजा के ऐश्वर्य का प्रतीक भी इस काल तक मानने लगे थे, इसी कारण इस काल के आसपास के सिक्कों पर इनकी मूर्ति भी बनने लग गयी थी। ऐसा विश्वास होता है कि राजा अपने सिक्कों पर इनकी मूर्ति इस कारण अंकित कराता था कि उसकी राज्यलक्ष्मी उसके राज्यकोष में सुरक्षित रहे, क्योंकि जन-विश्वास के अनुसार लक्ष्मी स्वभाव से चंचला थीं।

इस प्रकार के सबसे प्राचीन सिक्के जिन पर लक्ष्मी की मूर्ति अंकित है, वह उज्जैन के हैं। इन पर एक ओर सूर्य अंकित ध्वजा लिये हुए पुरुष अंकित है और दूसरी ओर गजलक्ष्मी की पद्म पर खड़ी मूर्तियाँ हैं। इनके एक हाथ में पद्म है। यह ताम्बे के ढाले हुए सिक्के प्रायः ईसा पूर्व पहिली अथवा द्वितीय शताब्दी के हैं।[1] कौशाम्बी से भी एक ऐसा ही सिक्का मिला है जिस पर किसी राजा का नाम नहीं अंकित है, उसके पीछे गजलक्ष्मी की खड़ी मूर्ति है।[2] इसी से मिलती-जुलती मुद्रा पांचाल राजा अग्निमित्र तथा भद्रघोष की है जो प्रायः ईसा पूर्व पहिली या द्वितीय शताब्दी की है, इस पर भी लक्ष्मी की मूर्ति अंकित है।[3] पांचाल राज्य के फाल्गुनी मित्र के ताम्बे के सिक्के पर भी एक ओर लक्ष्मी देवी की मूर्ति अंकित है। ये कमल के विकसित पुष्प पर खड़ी हैं। एक हाथ इनका कटि पर है, दूसरा ऊपर उठा हुआ है। उठे हुए दक्षिण कर में कमल है। इनके मस्तक पर पंखों का एक मुकुट है। कानों में गोल बाली है। उत्तरीय कन्धों पर से होता हुआ पैरों तक लटक रहा है, दूसरे वस्त्र स्पष्ट नहीं हैं। इनके दक्षिण ओर वज्र के आकार का एक चिह्न है।[4] इनके मुकुट में लगा पंख सम्भवतः यह संकेत करता है कि इस देवी का सम्पर्क जनजातियों से भी था। यह सिक्का भी प्रायः पहिली या द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व का है (फलक २५ क)। अयोध्या के विशाखदेश, शिवदत्त तथा वासुदेव के सिक्कों पर भी हमें गज-लक्ष्मी की मूर्ति प्राप्त होती है। ये सिक्के भी प्रायः ईसा पूर्व पहिली या दूसरी शताब्दी के हैं।[5]

भारतीय यूनानी राजाओं ने जो सिक्के भारत में चलाये उनमें पण्टालिओन तथा अगाथाक्लीज के सिक्कों पर जो नाचती हुई स्त्री बताई जाती है उसे कुमार स्वामी ने लक्ष्मी माना है[6] (फलक २५ ख, ग)। इस

---

१. डॉ० मोतीचन्द्र -- आवर लेडी ऑफ ब्यूटी एण्ड अबंडन्स – पद्मश्री नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ – पृष्ठ ५०५; विंशेण्ट स्मिथ – कैटलाग ऑफ दी क्वायन्स इन दी इण्डियन म्यूजियम – खण्ड १, पृष्ठ १५३, प्लेट १९, सं० २०।

२. जे० एन० बैनर्जी -- डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी – पृष्ठ ११०।

३. डॉ० मोतीचन्द्र -- उपर्युक्त – पृष्ठ ५०५; कैटलाग ऑफ दी क्वायन्स इन दी इण्डियन म्यूजियम, पृष्ठ १८६–१८७।

४. सी० जे० ब्राउन -- दी क्वायन्स ऑफ इण्डिया – दी हेरिटेज ऑफ इण्डिया सीरीज – प्लेट १०, संख्या ४।

५. विंशेण्ट स्मिथ -- कैटलाग ऑफ दी क्वायन्स इन दी इण्डियन म्युजियम – पृ० १४८-१४९।

६. डॉ० मोती चन्द्र -- उपर्युक्त-पृष्ठ ५०५।

मूर्ति की वेषभूषा यूनानी है, जिससे ऐसा ज्ञात होता है, कि इस मूर्ति की कल्पना यूनानी कारीगरों ने की थी।[१] शक या इण्डो-परथियन राजाओं के अजेज के सिक्के पर भी लक्ष्मी की मूर्ति हमें प्राप्त होती है। यहाँ भी लक्ष्मी एक हाथ में कमल लिये खड़ी दिखाई गई हैं (फलक घ)।[२] इसी प्रकार गजलक्ष्मी की मूर्ति हमें अभिलिषर (अजि-लिसेज) की मुद्रा पर प्राप्त होती है।[३] इसने दस प्रकार के चाँदी के सिक्के निकाले थे, इनमें छठवें प्रकार के सिक्के पर एक ओर घोड़े पर सवार राजा की मूर्ति है, दूसरी ओर लक्ष्मी की खड़ी मूर्ति है।[४] यहाँ देवी सामने मुख कर के विकसित कमल के फूल पर खड़ी दिखाई गयी है। इनका एक हाथ वक्षस्थल पर है, दूसरा बाईं ओर लटक रहा है। मस्तक पर मुकुट है, कानों में कुण्डल है। नीचे के अंग में धोती है, जिसकी दो छोरें दोनों ओर लटक रही हैं। पैर में नूपुर हैं और वस्त्राभूषण के चिह्न स्पष्ट नहीं हैं क्योंकि यह सिक्का घिस गया है। कमल के फूल के पास से दो कमल की डंडियाँ निकलती हुई दिखाई गयी हैं। इनमें दो कमल लगे हैं, जिन पर दो हाथी खड़े होकर इनको लम्बे ग्रीवावाले बर्तनों से अभिषेक कर रहे हैं (फलक ९ ख तथा फलक २५ ङ)। इसी प्रकार कुणिन्दु महाराजा अमोघभूति के सिक्के पर हमें लक्ष्मी की खड़ी मूर्ति प्राप्त होती है। इसमें लक्ष्मी एक हाथ में पद्म लिये खड़ी हैं, इनके दाहिनी ओर एक हिरन बना है। इस सिक्के पर खरोष्टी अक्षरों में 'अमघ भुतस महरजस कुणदस' लिखा है। (फलक २५ च)। इसमें लक्ष्मी के पैर और उनके उत्तरीय स्पष्ट दिखाई देते हैं।[५] इसी प्रकार के एक दूसरे सिक्के पर लक्ष्मी दोहरे कड़े पहिने कमल पर स्थित हैं (छ)। राजन्य जनपद के सिक्के पर भी हमें लक्ष्मी की मूर्ति मिलती है (ज)।[६]

मथुरा से प्राप्त सूर्यमित्र, विष्णुमित्र, पुरुषदत्त, उत्तमदत्त, बलभूति, रामदत्त तथा कामदत्त के सिक्कों पर भी हमें लक्ष्मी की मूर्ति मिलती है।[७]

इसी प्रकार मथुरा से प्राप्त राजवुल के पुत्र सोडास के ताम्बे के एक सिक्के पर गजलक्ष्मी की मूर्ति अंकित मिलती है।[८] यह प्रायः ११० ई० पू० की है। एक ओर देवी की मूर्ति है, दूसरी ओर गजलक्ष्मी की खड़ी मूर्ति है। इसमें देवी का दक्षिण हाथ ऊपर उठा हुआ है और बाँया हाथ बगल में लटका है, दोनों ओर हाथी कमल के फूलों पर खड़े इन्हें स्नान करा रहे हैं। लक्ष्मी एक प्रकार का छोटा लहँगा पहिने हुए हैं। कान में कुण्डल है। दूसरे आभूषण तथा वस्त्र घिस जाने के कारण दिखाई नहीं देते। यह सिक्का ताँबे का है। देवी दोनों पैरों की एड़ी मिलाये हुए पैर फैला कर खड़ी हैं। (फलक २५ झ)

यौधेय राजा स्वामी ब्रह्मण्यदेव के सिक्कों पर पीछे की ओर एक लक्ष्मी की सामने की ओर मुख किये खड़ी मूर्ति मिलती है। ये सिक्के प्रायः ईसा की पहिली शताब्दी के माने जाते हैं। यह मूर्ति पद्म पर स्थित है

---

१. आर० बी० ह्वाइट हेड -- कैटलाग ऑफ क्वायन्स इन दी पंजाब म्यूजियम, लाहौर, खण्ड १, पृष्ठ १६, प्लेट २, संख्या ३५ तथा विंशेण्ट स्मिथ – क्वायन्स इन दी इण्डियन म्युजियम – प्लेट २, २।
२. आर० बी० ह्वाइट हेड – उपर्युक्त – पृष्ठ १२० प्लेट १२ संख्या ३०८।
३. वही -- उपर्युक्त – खण्ड १ पृष्ठ ३३२–३३३ प्लेट १३ संख्या ३३२–३३३।
४. राखाल दास बनर्जी -- प्राचीन मुद्रा – नागरी प्रचारिणी सभा – संवत् १९८१ पृष्ठ ९०-९१।
५. विंशेण्ट स्मिथ -- उपर्युक्त – प्लेट २० संख्या ११, १२।
६. वही -- उपर्युक्त – प्लेट २१ संख्या ११।
७. डॉ० मोतीचन्द्र -- उपर्युक्त – पृष्ठ ५०५।
८. विंशेण्ट स्मिथ -- कैटलाग ऑफ क्वायन्स इन दी इण्डियन म्युजियम, कलकत्ता – पृष्ठ १९६–१९७, प्लेट २२, संख्या १३।

एक हाथ ऊपर उठा हुआ है । बायें हाथ में कमल है जो कटि पर है । इनके बायीं ओर कल्पतरु है और दाहिनी ओर मेरु पर्वत है । इनके कानों के गोल कुण्डल तथा पैरों के नूपुर स्पष्ट हैं और आभूषण दिखाई नहीं देते । मस्तक पर परों का मुकुट है ।[१] (फलक २५ ञ) इसी प्रकार के कुछेक सिक्के और मिले हैं, इनमें यौधेय लिखा है ।[२] इसमें एक ओर राजा की ध्वजाधारी मूर्ति अंकित है और दूसरी ओर दक्षिण मुख किये लक्ष्मी की मूर्ति अंकित है । इनके सामने पूर्ण घट है और पीछे श्रीवत्स का चिह्न है (फलक २५ ट) ।

सिंहल के राजाओं ने एक प्रकार के सिक्के इसी काल में बनवाये । इन पर एक ओर लक्ष्मी की मूर्ति है । यह लक्ष्मी खड़ी हैं, दोनों ओर दो हाथी इनको स्नान करा रहे हैं ।[३] आन्ध्र राज्य कुल के गौतमीपुत्र राजा यज्ञ श्रीशातकर्णी के एक प्रकार के जस्ते के सिक्के पर एक ओर हाथी की खड़ी मूर्ति प्राप्त होती है और दूसरी ओर लक्ष्मी की खड़ी मूर्ति (फलक २५ ठ) । इस देवी के दोनों ओर कठघरे बने हैं । इनके दोनों हाथ में कमलनाल है जिसके पुष्प पर दो हाथी स्थित हैं । कठघरों से ऐसा ज्ञात होता है कि यह मन्दिर में प्रतिष्ठित देवी को यहाँ अंकित करने का प्रयत्न है । यह सिक्का प्रायः ईसा की दूसरी शताब्दी का है ।[४]

कुषाण काल के कनिष्क और हुविष्क के सिक्कों के दूसरी ओर आरडोक्षसो की खड़ी मूर्ति मिलती है परन्तु वसु या वसुदेव के सिक्कों पर सिंहासन पर बैठी हुई आरडोक्षसो की मूर्ति प्राप्त होती है । इस बैठी हुई मूर्त्ति के दक्षिण हाथ में पाश है और बायें में अनाज की बाल सहित जुठ्ठा है । ऐसा अनुमान होता है कि वसुदेव के काल तक यह आरडोक्षो या आरडोक्षसो देवी का भारतीयकरण हो गया था तथा इन्हें लक्ष्मी का स्वरूप दे दिया गया था । वसुदेव के सिक्कों पर ये अधोभाग में धोती पहिने हुए हैं, ऊपर के अंग में इनके चोली है और मस्तक पर केश-विन्यास भी भारतीय ही है । एक ओर जूड़ा है और उसको एक बन्दी से लपेटा गया है । गले और हाथ में आभूषण भी दिखाई देते हैं ।[५] केदार कुषाण के एक प्रकार के सिक्कों पर जो लक्ष्मी की मूर्ति दिखाई देती है उसमें देवी के हाथ में कमल का फूल है और वह सिंहासन पर स्थित हैं । कुछ विद्वानों का मत है कि इसी आरडोक्षसो की मूर्ति का रूपान्तर लक्ष्मी के रूप में हम गुप्त काल के सिक्कों पर देखते हैं ।[६] यों गुप्त-साम्राज्य के मुख्य तीन ध्येय थे । यथा – राजाओं पर विजय और साम्राज्य का संगठन, व्यापार द्वारा धन का उपार्जन तथा सौन्दर्य की पूजा है । इन तीनों ध्येयों की प्राप्ति देवी लक्ष्मी से ही सम्भव थी । इस कारण विशेष रूप से इनका मुद्राओं पर अंकन इस काल में स्वाभाविक था । चन्द्रगुप्त प्रथम के सिक्के पर जिसमें एक ओर चन्द्रगुप्त और कुमार देवी की मूर्त्ति बनी हुई है और दूसरी ओर सिंह पर लक्ष्मी की बैठी हुई मूर्त्ति दिखाई देती है ।[७] इनके एक हाथ में पाश तथा दूसरे में नाल सहित कमलगट्टा का छत्ता है, जैसा वसुदेव के सिक्कों पर

१. वही –– उपर्युक्त – पृष्ठ १८१ प्लेट २१ संख्या १५ ।
२. वही –– उपर्युक्त – प्लेट २१, संख्या १८–२० ।
३. ए० कुमार स्वामी –– अर्ली इण्डियन आइकोनोग्राफी – श्रीलक्ष्मी – ईस्टर्न आर्ट, खण्ड १, प्लेट २०
४. विंशेण्ट स्मिथ –– उपर्युक्त – पृष्ठ २१२, प्लेट २३, संख्या २१ ।
५. आर० बी० ह्वाइट हेड –– कैटलाग ऑफ क्वायन्स इन दी पंजाब म्युजियम, लाहौर, ऑक्सफोर्ड प्रेस १९१४ – प्लेट १९, संख्या २३६, २३७ ।
६. जे० आलन – कैटलाग ऑफ दी क्वायन्स ऑफ दी गुप्त डाइनेस्टीज एण्ड ऑफ ससांक, किंग ऑफ गौड़ – ब्रिटिश म्युजियम – १९१४ – पृष्ठ २८ प्रस्तावना, अल्तेकर – कारपस ऑफ इण्डियन क्वायन्स – दी क्वायनेज ऑफ दी गुप्ता इम्पायर – पृष्ठ १५ ।
७. राखाल दास बैनर्जी – प्राचीन मुद्रा – पृष्ठ १५३; आलन – उपर्युक्त – प्लेट ३, संख्या ६ ।

बनी लक्ष्मी के हाथ में है।[१] ये कन्धों पर उत्तरीय ओढ़े हैं, नीचे के अंग में धोती और ऊपर के अंग में चोली पहिने हुए हैं, गले में मोतियों की माला, हाथ में कंकण, पैर में नूपुर और कानों में कुण्डल हैं (फलक २६ ड)। इनका पैर कमल के पुष्प पर है।[२] इसी प्रकार की मूर्ति कनिष्कों के सिक्कों पर एक देवी की दिखाई देती हैं।[२]

समुद्रगुप्त के पराक्रम से सम्बन्धित सिक्कों के पीछे लक्ष्मी सिंहासन पर पैर नीचे लटका कर बैठी हैं।[३] इनके एक हाथ में पाश और दूसरे में नाल सहित कमलगट्टा है। इनके दोनों पैर कमल के विकसित फूल पर स्थित हैं। इनके ऊपर के अंग में चोली, कन्धों पर उत्तरीय और नीचे के अंग में धोती है। कुषाणों की आरडोक्षो देवी से ये यों भिन्न हैं कि इनके पैर कमल पर स्थित हैं, गले में एकावली है, कानों में कुण्डल और हाथ में वलय है। कमर की करधनी स्पष्ट नहीं दिखाई देती। पैरों में नूपुर हैं। मस्तक पर बिन्दी देकर मोती की बन्दी दिखाई गयी है। इनका बायाँ हाथ कमर पर, दाहिना कुछ उठा हुआ है; जो हाथ कमर पर है उसी में ये कमलगट्टा नाल सहित पकड़े हुए हैं (ढ)। समुद्रगुप्त के वीणा बजाते हुए सिक्कों के पीछे लक्ष्मी एक मोढ़े पर तिक्खे बैठी हुई मिलती हैं।[४] वस्त्राभूषण उपर्युक्त हैं (ण)। समुद्रगुप्त के काचा ग्राम वाले सिक्कों पर लक्ष्मी की खड़ी मूर्ति है (फलक २६ त)। इनके बायें हाथ में कमलगट्टा और दाहिने हाथ में फूल है।[५] ये भी पद्म पर खड़ी हैं। और सिक्कों पर प्रायः जहाँ लक्ष्मी अंकित की गयी हैं, वे बैठी हुई हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय के प्राचीनतम धनुर्धारी सिक्कों पर लक्ष्मी उसी भाँति अंकित हैं जैसे समुद्रगुप्त के ध्वजाधारी सिक्कों पर, परन्तु चन्द्रगुप्त द्वितीय के सिंहासनारूढ़ सिक्कों के पीछे बनी हुई लक्ष्मी की मूर्ति में तथा समुद्रगुप्त के सिक्कोंवाली लक्ष्मी में केवल इतना अन्तर है कि इनके दोनों हाथ ऊपर उठे हुए हैं (थ)।[६] इसी प्रकार का एक धनुषधारी सिक्का भी है (द)। पीछे के चन्द्रगुप्त द्वितीय के धनुर्धारी सिक्कों पर ये सामने मुख कर के सिंहासन के स्थान पर योगासन में पद्म पर स्थित दिखाई गयी हैं, इनके दोनों बाहू फैले हुए हैं। एक हाथ में कमल और दूसरे में पाश है। इस पाश का क्या अभिप्राय था, यह कहना कठिन है। इनके मस्तक पर बन्दी, कानों में कुण्डल, बाहू पर अंगद, मणिबन्धों पर वलय, गले में एकावली, कमर में करधनी है तथा पैरों में नूपुर हैं, वक्षस्थल पर चोली, कन्धों पर उत्तरीय है तथा नीचे के अंग में धोती है। इस प्रकार के सिक्कों पर पुराणों में वर्णित लक्ष्मी का रूप मिलने लगता है (फलक २४ तथा फलक २५ ध)। इनके बैठने का ढंग भी भारतीय हो जाता है।[७] इसी प्रकार के और धनुषधारी सिक्कों पर बायाँ हाथ जंघे पर स्थित दिखाया गया है, परन्तु दक्षिण हाथ फैला हुआ है।[८] दाहिने हाथ में पाश है और बायें में कमलनाल, जिसमें से फूल निकल रहा है। कमल जिस पर लक्ष्मी स्थित हैं वह प्रायः सप्तदल का है।

छत्रधारी चन्द्रगुप्त द्वितीय के सिक्कों के पीछे खड़ी लक्ष्मी का रूप व्यक्त किया गया है। इसमें कुछ में लक्ष्मी सामने मुख करके खड़ी हैं और कुछ में ये तिक्खे खड़ी हैं (न) वस्त्राभूषण दोनों प्रकार की मूर्तियों में समान हैं, परन्तु सामने मुख किये खड़ी लक्ष्मी के मस्तक पर एक मुकुट दिखाई देता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के सिंह-वध

---

१. ह्वाइट हेड -- उपर्युक्त - प्लेट १९ संख्या २३६।
२. आलतेकर -- कारपस - प्लेट १, संख्या ७।
३. राखाल दास बैनर्जी -- उपर्युक्त - पृष्ठ १५८; आलेन - कैटलॉग - प्लेट २ सं० ३।
४. आलेन -- कैटलॉग - प्लेट ५-६।
५. आलेन -- कैटलॉग - प्लेट २-९।
६. जे० आलेन -- उपर्युक्त - प्लेट ६ संख्या ८, ९।
७. वही -- उपर्युक्त - प्लेट ६ संख्या १०, १२-१६ इत्यादि।
८. वही -- उपर्युक्त - प्लेट ७ संख्या १-४, ६-१९।

की मुद्राओं में लक्ष्मी को सिंह पर आरूढ़ दिखाया गया है (फलक २६ प) ।[१] इस प्रकार की मुद्राओं में कहीं इनको सुख आसन में सिंह पर बैठी दिखाया गया है,[२] तो कहीं योगासन में ।[३] किसी-किसी सिक्के में ये दोनों पैर नीचे किये हुए सिंह पर बैठी हुई दिखाई गयी हैं[४] और किसी में सिंह पर घोड़े की भाँति सवार हैं । इन मूर्तियों में इनके मस्तक पर एक जूड़ा है । अश्वारोही चन्द्रगुप्त द्वितीय के सिक्कों के पीछे लक्ष्मी एक मोढ़े पर स्थित दिखाई गई हैं, वस्त्राभूषण पूर्वोक्त हैं (फलक २७ फ) । चन्द्रगुप्त के चक्र विक्रम पर लक्ष्मी एक विकसित कमल के ऊपर सामने मुँह करके खड़ी हैं ।[५] इस विग्रह में इनके बायें हाथ में कमल है और दायाँ हाथ दान मुद्रा में उठा हुआ है । दाहिने हाथ के नीचे शंख बना है । कानों में कुण्डल, हाथ में वलय दिखाई देते हैं । ऊपर का उत्तरीय कन्धों पर से होता हुआ पैरों तक लटक रहा है । ऊपर के अंग में चोली और नीचे धोती है (ब) ।

कुमारगुप्त प्रथम के धनुषधारी सिक्कों पर ये सात पंखड़ी वाले कमल के फूल पर स्थित हैं; बायें हाथ में पाश है, जो उठा हुआ है । दक्षिण कर कटि पर है, जिसमें कमल के फूल की नाल है । इस प्रकार के कुमारगुप्त के सिक्कों पर लक्ष्मी का वही स्वरूप मिलता है जो चन्द्रगुप्त के सिक्कों पर । यहाँ ये सुखासन में बैठी हैं[६] । इसी प्रकार के कुछ सिक्कों में देवी का कमलवाला बायाँ हाथ भी उठा हुआ है ।[७] अश्वारोही सिक्कों के पीछे लक्ष्मी एक मोढ़े पर बैठी हुई एक मोर को कुछ खिलाती हुई दिखाई गयी हैं (फलक २६ भ) । इनके बायें हाथ में कमल है ।[८] सिंह के आखेट वाले सिक्कों पर ये सिंह के ऊपर स्थित दिखाई गयी हैं । इन सिक्कों में जिनमें सिंह राजा के बाईं ओर दिखाया गया है, उनके पीछे लक्ष्मी सिंह के ऊपर अर्ध-परियंक आसन में बैठी हैं । इनमें कुछ के ऊपर लक्ष्मी के दक्षिण कर में पाश है और कुछ में ये दाहिने हाथ से मुद्राएँ गिरा रही हैं । ये मुद्राएँ गोल हैं और कदाचित् गुप्त स्वर्ण सिक्कों के प्रतिरूप हैं[९]; परन्तु सिंह आखेट वाले उन सिक्कों पर, जिसमें सिंह राजा के दाहिनी ओर है, ये मोर को खिलाती हुई दिखाई गयी हैं (फलक २७ म) । प्रताप अथवा अप्रतिघ सिक्कों पर इनके दक्षिण कर में पद्म है और ये एक पद्म के फूल पर स्थित हैं; बायाँ कर कटि पर है (फलक २७ य) । यहाँ भी इनके मस्तक पर एक जूड़ा है ।[१०] गज आरोही मुद्रा के पीछे की लक्ष्मी कमल पर खड़ी दिखाई गयी हैं, इनके दक्षिण कर में कमल-नाल है, जो नीचे के तालाब में से निकल रहा है और बायें हाथ के नीचे भी कमल है । इनकी बाईं ओर कल्पवृक्ष है (फलक २७ र) ।[११] कुमारगुप्त के राजा-रानी सिक्के के पीछे लक्ष्मी सिंह पर अर्ध-परियंक आसन पर बैठी

---

१. वही — उपर्युक्त – प्लेट ८ संख्या ५ तथा ६ ।
२. वही — उपर्युक्त – प्लेट ६, संख्या ५, ८, ६ ।
३. वही — उपर्युक्त – प्लेट ८ संख्या १४, १५ ।
४. जे० आलन — उपर्युक्त – प्लेट ६, संख्या १३ ।
५. आल्तेकर — कारपस – प्लेट ६, संख्या ६; विष्णु धर्मोत्तर पुराण में शंख का सम्बन्ध लक्ष्मी से मिलता है ।
६. जे० आलन — उपर्युक्त – प्लेट १२, संख्या १, ३ ।
७. वही — उपर्युक्त – प्लेट १२, संख्या ११, १२ ।
८. वही — उपर्युक्त – प्लेट १३, संख्या १३, १४ ।
९. वही — उपक्र्युत – प्लेट १४, संख्या १०, ११ ।
१०. वही — उपर्युक्त – प्लेट १५, संख्या १५ ।
११. जे० आलन — उपर्युक्त – प्लेट १५, संख्या १६ ।

हैं, बायें हाथ में कमल है और दक्षिण कर में पाश है।[1] वीणा बजाते हुए कुमार गुप्त के सिक्के पर लक्ष्मी सिंहासन पर तिक्खी बैठी हैं। एक पैर पर दूसरा पैर है, बायाँ हाथ सिंहासन पर है और दक्षिण कर में कमल है। नेत्र कमल की ओर है। वस्त्राभूषण पूर्ववत् हैं।[2] कुमारगुप्त के छत्रधारी प्रकार के सिक्कों के पीछे लक्ष्मी दक्षिण हाथ में पाश और बायें में कमल लिये दाहिने मुँह किये खड़ी दिखायी गयी हैं। इनके कान में गोल बाली, गले में एकावली, बाहू पर केयूर, मणिबन्धों में कड़ा, और पैरों में भी कड़े हैं। जूड़ा पीछे की ओर लटक रहा है। मस्तक पर बन्दी तथा माँग में मोती की लड़ी दिखाई देती है। ऊपर का उत्तरीय नीचे तक लटक रहा है।[3] एक ओर विचित्र सिक्के में कुमारगुप्त एक गैण्डे को तलवार से मारते दिखाये गये हैं। इस मुद्रा के पीछे जो लक्ष्मी की मूर्त्ति है, वह अद्वितीय है। यहाँ देवी पर एक यक्ष छत्र लगाये खड़ा है और देवी को एक हाथी के सूँड़-वाला मगर अपनी सूँड़ से कमल अर्पित कर रहा है। (इस देवी को कुछ विद्वानों ने गंगा कहा है परन्तु कमल से सम्बन्धित होने से इन्हें लक्ष्मी कहना अधिक उपयुक्त होगा)।[4]

स्कन्दगुप्त के धनुषधारी सिक्कों में लक्ष्मी कमल पर स्थित हैं। बायें हाथ में कमल और दक्षिण कर में पाश है। आभूषण इत्यादि पहिले के चन्द्रगुप्त द्वितीय के धनुषधारी सिक्कों के पीछे की लक्ष्मी की भाँति हैं (फलक २७ ल)। एक विशेषता यह अवश्य मिलती है कि कमल की पंखड़ियों में एक पंक्ति के नीचे दूसरी पंक्ति भी कमल की पंखड़ियों की दिखायी गयी हैं।[5] स्कन्दगुप्त के राजा-रानी वाले या लक्ष्मी-राजा वाले[6] सिक्के के पीछे की लक्ष्मी में धनुर्धारी सिक्कों से कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता। केवल इनके बाहू में बहुत-सी चूड़ियाँ दिखाई देती हैं (फलक २७ व)। छत्रधारी सिक्कों के पीछे की लक्ष्मी दक्षिण मुँह कर खड़ी दिखाई गई हैं।[7] इनके एक हाथ में पाश है और दूसरे में कमल है, बायाँ हाथ नीचे की ओर लटका हुआ है। गले में एकावली, कानों में बाली, बाहु पर केयूर तथा मणिबन्ध पर कड़े हैं, पैरों में नूपुर भी दिखाई देते हैं और वस्त्र पूर्ववत् है। मस्तक के पीछे के जूड़े में मोती लगे हैं। स्कन्दगुप्त के अश्वारोही सिक्के के पीछे की लक्ष्मी मोढ़े पर बैठी दिखाई गई हैं।[8] इनके दक्षिण कर में पाश और बायें में कमल है। इनके आभूषणों में गले की एकावली के साथ एक तौक दिखाई देता है तथा यह एक विशेषता है कि नीचे का मोढ़ा भी नाव के आकार का है। घटोत्कच्छ का एक सिक्का मिला है[9] इसमें राजा धनुर्धारी के रूप में खड़े हैं, पीछे लक्ष्मी की मूर्ति कमल पर स्थित है। इनके गले में भी एक एकावली के साथ तौक दिखाई देता है। बाहु पर केयूर है[10], कानों के कुण्डल लम्बे दिखाई देते हैं और वस्त्राभूषण यथावत् हैं। इस प्रकार का अभी तक एक ही सिक्का मिला है जो इस समय लेनिनग्राड के संग्रहालय में सुरक्षित है।[11]

---

१. आल्तेकर -- कारपस - प्लेट १४-४।
२. वही -- उपर्युक्त - प्लेट १४-५।
३. वही -- उपर्युक्त - प्लेट १३-१५।
४. वही -- उपर्युक्त - प्लेट १३-४५ पृष्ठ १९८।
५. वही -- उपर्युक्त - प्लेट १४-८, ९, १०।
६. वही -- उपर्युक्त - प्लेट १४-१२, १३, पृष्ठ २४४, २४५।
७. वही -- उपर्युक्त - प्लेट १४-१४, पृष्ठ २४८।
८. वही -- उपर्युक्त - प्लेट १४-१५, पृष्ठ २४९।
९. वही -- उपर्युक्त - पृष्ठ २४८।
१०. वही -- उपर्युक्त - प्लेट १४-१६।
११. वही -- उपर्युक्त - पृष्ठ २४८।

स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारियों के सिक्कों के पीछे बनी लक्ष्मी की मूर्ति प्रायः एक ही प्रकार की है। नरसिंहगुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय, बुद्धगुप्त, विष्णुगुप्त, विनयगुप्त, प्रकाशादित्य इत्यादि की मुद्राओं पर लक्ष्मी कमल पर स्थित बायें हाथ में कमल तथा दक्षिण हाथ में पाश है। ससांक के सिक्कों पर लक्ष्मी का एक पैर दूसरे के ऊपर है (श)।[१] कुछ सिक्कों में जो और पीछे चलकर गुप्तों के साम्राज्य नष्ट होने पर निकले, उनमें अष्ट-भुजा लक्ष्मी खड़ी दिखाई गयी हैं।[२] (फलक २७ ष)। यह विशेषता इसके पहिले के काल की लक्ष्मी-मूर्ति पर नहीं दिखाई देती।

छठवीं शताब्दी के काश्मीर के राजा तोरमान के सिक्कों के पीछे लक्ष्मी की बैठी हुई मूर्ति है। यहाँ देवी पैर मोड़ कर तिक्खे बैठी हैं। इनके बायें हाथ में कमल की नाल है फूल कन्धे के पास है। इनके सामने की ओर एक घट है। कानों में कुण्डल, हाथ में मोती के वलय तथा पैरों में नूपुर दिखाई देते हैं। ये एक प्रकार का छोटा लहँगा पहिने हुए हैं जिसमें से फुन्ने लटक रहे हैं।[३] तोरमान के एक और सिक्के पर लक्ष्मी एक पैर लटकाये और एक कुछ मोड़े अर्ध परियंक आसन में सामने मुख किये हुए सिंहासन पर स्थित हैं। बायाँ हाथ जंघे पर तथा दक्षिण उठा हुआ है। प्रायः यह गुप्त सिक्कों की भाँति की प्रतिमा लगती है।[४]

प्रतापादित्य द्वितीय, यशोवर्मन, विनयादित्य (जयापीड़) विग्रह इत्यादि के सिक्कों पर एक ओर लक्ष्मी की सिंहासन पर बैठी मूर्त्ति है। इन सिक्कों में प्रायः मूर्त्ति का मस्तक नहीं अंकित हो पाया है। यों ये सिक्के बहुत भद्दे बने हुए हैं।[५] जैसे इस काल तक मुद्राओं पर मूर्तियाँ अंकित करने की कला ही नष्टप्राय हो गयी थी।

प्रायः ११ वीं शताब्दी के गांगेय देव के स्वर्ण के सिक्कों के पीछे लक्ष्मी की बैठी हुई मूर्ति मिलती है (फलक २८ ह)। इनके चार हाथ हैं। ये सुखासन में बैठी हैं। इनके मस्तक पर मुकुट, कानों में कुण्डल, हाथों में वलय, कटि में करधनी और पैरों में कड़े हैं।[६] इसी से मिलती-जुलती मूर्ति बुन्देलखण्ड के चंदेल राजा वीर वर्मा देव के सिक्कों पर (फलक २८ अ) तथा गहड़वार राजा गोविन्द चन्द्र के सिक्कों पर भी मिलती है।[७]

काश्मीर के पार्थ, क्षेमेन्द्रगुप्त (इ), अभिमन्युगुप्त, नन्दीगुप्त, त्रिभुवन गुप्त, भीमगुप्त, दीद्दा रानी की मुद्राओं पर, जिनका राज्यकाल प्रायः ९०६ ई० से १००३ तक चला, हमें लक्ष्मी की मूर्त्ति प्राप्त होती है (पार्थ-फलक २८ या क्षेमेन्द्र गुप्त २८ इ)। रानी दिद्दा की मुद्राओं पर तो एक ओर 'श्री' भी लिखा मिलता है (९८०-१००३)।[८] इन सिक्कों पर लक्ष्मी की मूर्त्ति प्रायः बैठी हुई दिखाई गयी है तथा गज दोनों ओर से स्नान करा रहे हैं। इनमें क्षेमेन्द्र गुप्त की मुद्राओं पर जो लक्ष्मी बनी हैं, उनके चार हाथ दिखाये गये हैं। इनके मुकुट के ऊपर तीन कलगी हैं, कानों में कुण्डल, गले में चुहादंती तौक, नीचे के अंग में झालरदार लहँगा है।[९] इनको दो गज

---

१. जे० आलन -- कैटलॉग - प्लेट २३, संख्या १४, १५, १६।
२. वही -- कैटलॉग - प्लेट २४, संख्या १७, १८, १९।
३. वही -- उपर्युक्त - पृष्ठ २५२ प्लेट २६ संख्या ७।
४. वही -- उपर्युक्त - प्लेट २७-४।
५. वही -- उपर्युक्त - पृष्ठ २७, संख्या ५, ६, ७, ८।
६. वही -- उपर्युक्त - पृष्ठ २७, संख्या २, ३।
७. वही -- उपर्युक्त - पृष्ठ २६, संख्या ९ तथा १९।
८. वही -- उपर्युक्त - पृष्ठ २७०-२७१, प्लेट २७ संख्या ९, १०, ११, १२, १३ - कल्हण की राज तरंगिणी।
९. विंशेण्ट स्मिथ -- कैटलाग - प्लेट २७, संख्या १० - कल्हण की राजतरंगिणी।

दोनों ओर से स्नान करा रहे हैं। प्रायः इसी वेष-भूषा में और दूसरी मुद्राओं पर भी इनका दर्शन होता है। इसी से मिलती-जुलती मुद्रा प्रथम लोहार घराने के राजा संग्राम, अनन्त, कलश तथा हर्ष ने भी प्रसारित की (संग्राम-फलक २८ ई)। इन राजाओं का राज्यकाल प्रायः १००३-११०१ ई० तक माना जाता है। इन मुद्राओं पर भी एक ओर गज लक्ष्मी की बैठी हुई मूर्ति अंकित है। दूसरे लोहार राजघराने के सुस्सल, जयसिंह देव, नागदेव के सिक्कों पर जिनका राज्यकाल १११२-१२१४ ई० तक माना जाता है, लक्ष्मी सिंहासन पर स्थित नीचे योरोपीय ढंग से पैर लटकाये हुए दिखाई गयी हैं। इनमें जागदेव के सिक्के पर यह भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इनके मुकुट पर एक कलँगी है, गले में चूहादन्ती वाला तोक पहिने हैं। तथा इन्हें दोनों ओर से दो गज स्नान करा रहे हैं[1]।

लंका के पराक्रम बाहु (११५३-८६ ई०) से लेकर भुवनैक बाहु (१२९६ ई०) तक के सिक्के चोल राजा राजराज के ढंग के हैं। इनमें एक ओर राजा की खड़ी मूर्ति और दूसरी ओर लक्ष्मी की मूर्ति है।[1] इनके बायें हाथ में कमल है। ये मूर्तियाँ बहुत भोंड़ी बनी हुई हैं।

कान्यकुब्ज के जयचन्द को परास्त करने के पश्चात् जो सिक्के मोहम्मद बिन साम ने भारत के मध्यदेश में चलाये वे गहड़वाल राजाओं के सिक्कों के ही ढंग के थे। ये स्वर्ण के हैं, इन पर एक ओर मोहम्मद बिन साम नागरी अक्षरों में लिखा है और दूसरी ओर लक्ष्मी देवी की (ऊ) चार हाथ वाली मूर्ति बनी है[2] (फलक २८ ऊ)।

नेपाल के प्राचीन सिक्के यौधेय जाति के सिक्कों के समानान्तर ही दिखाई देते हैं। कदाचित् इन्हें कुषाण वंश के राजाओं ने सिक्कों के आधार पर ही बनाया गया, इस कारण भी यह समानता दृष्टिगोचर होती है।[3] मानांक, गुणांक, वैश्रवण, अंशुवर्मा, जिष्णुगुप्त, पशुपति की प्राचीन मुद्रायें नेपाल से हमें प्राप्त हुई हैं। इनमें मानांक या मानदेव के सिक्कों पर एक ओर पद्मासना लक्ष्मी की मूर्ति है और श्री भोगनी लिखा है और दूसरी ओर सिंह की मूर्ति है तथा मानांक लिखा है।[4] गुणांक के सिक्कों पर एक ओर पद्मासना लक्ष्मी की मूर्ति है और दूसरी ओर हाथी की मूर्ति है। लक्ष्मी की मूर्ति के बगल में श्री गुणांक लिखा है।[5] गुणांक का नाम नैपाल की राजवंशावली में गुण कामदेव मिलता है।[6]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय मुद्राओं पर लक्ष्मी के विविध रूप हमें प्राप्त होते हैं। जैसे पद्महस्ता स्वरूप, पद्मवासनी स्वरूप, गज लक्ष्मी का स्वरूप इत्यादि। लक्ष्मी का चतुर्भुज रूप तो केवल ९वीं शताब्दी से मिलने लगता है। सम्भवतः यह रूप पीछे चलकर भारत में अपनाया गया था, भुजाओं की संख्या बढ़ा कर दिखाने का कारण कदाचित् यह था कि इन्हें विष्णु की पत्नी के रूप में लोग भजने लगे थे और वैष्णवी के रूप में इनको चार भुजाओं वाली दिखाने का आदेश विष्णु धर्मोत्तर पुराण में मिलता है। या ऐसा विश्वास भी हो गया

---

१. वही -- कैटलाग - पृष्ठ २७२, २७३ - प्लेट २७ - १७ कल्हण की राजतरंगिणी।
२. राखालदास बैनर्जी -- प्राचीन मुद्रा - पृष्ठ २२६। इण्डियन म्युजियम कैटलॉग - खण्ड २, प्लेट १, संख्या १।
३. वही -- प्राचीन मुद्रा - पृष्ठ २६५; क्वायन्स ऑफ मिडिवल इंडिया - पृष्ठ ८६, संख्या १२।
४. विंसेण्ट स्मिथ -- कैटलॉग ऑफ क्वायन्स इन दी इंडियन म्युजियम, पृष्ठ २८३।
५. राखालदास बैनर्जी -- प्राचीन मुद्रा - पृष्ठ २६६-२६७; रापसन - क्वायन्स ऑफ एनशण्ट इण्डिया - पृष्ठ ११६, प्लेट १३, संख्या २।
६. हरप्रसाद शास्त्री -- कैटलाग ऑफ पाम लीफ एंड सेलेक्टेड पेपर मान्सुस्क्रप्ट्स दरबार लाइब्रेरी, नेपाल - इण्ट्रोडक्शन बाई प्रो० सी० वेण्डाल - पृष्ठ २१।

था कि देवताओं की अधिक भुजायें उनके महान् शक्ति की द्योतक हैं और मनुष्यों की मूर्त्ति से पृथक् करने के हेतु इनकी यह विशेषता मूर्त्ति में दिखाना आवश्यक है।

मोहरों पर लक्ष्मी की सर्वप्रथम मूर्त्ति, जो सिन्धु घाटी की सभ्यता के पश्चात् प्राप्त होती है, वह है बसाढ़ से प्राप्त एक मुहर पर की कुषाणकालीन खड़ी मूर्ति, ।[1] इस विग्रह में लक्ष्मी दायाँ हाथ उठाये हुए हैं और बायें में कमलनाल पकड़े हुए हैं तथा सामने की ओर मुँह करके खड़ी हैं। दक्षिण कर से मुद्रा गिर रही है। इनके कान के कुण्डल तथा गले का तौक स्पष्ट दिखाई देते हैं। ऊपर के अंग में ब्लाउज की भाँति की कुर्ती है और नीचे के अंग में धोती है। इनके दोनों ओर कमल के फूल दिखाये गये हैं। पैर के नीचे लेख है जो स्पष्ट न होने के कारण पढ़ा नहीं जाता। कदाचित् यह लेख खरोष्टी में है। इसी प्रकार की एक मोहर पुरक्षजभस्य है[2] (फलक २९ क)। इसमें भी लक्ष्मी मुद्राएँ अपने दक्षिण कर से गिरा रही हैं। एक और मोहर पर भी लक्ष्मी की खड़ी मूर्त्ति है जिसमें बायें हाथ में नाल सहित कमल का पुष्प है।[3] यह भी बसाढ़ से प्राप्त हुई है। एक और लक्ष्मी की मूर्त्ति बसाढ़ से प्राप्त एक ओर मोहर पर दिखाई देती है। इसमें लक्ष्मी को एक नाव पर खड़ा दिखाया गया है। इस नाव में दोनों ओर दो-दो खम्बे दिखाई देते हैं, जो कदाचित् मस्तूल के प्रतीक हैं, बीच में एक पावेदार चौकी है, उस पर देवी एक हाथ में कमल लिये हुए और दूसरा कटि पर रखे खड़ी हैं। ये नीचे के अंग में धोती पहिने हुए हैं। बायीं ओर एक शंख है, उसके पश्चात् कदाचित् गरुड़ है[4]। दूसरी ओर कुछ और नहीं अंकित है (फलक २ ग)। गुप्तकाल के पहिले से ही भारतीयों की यह धारणा थी कि 'व्यापारे वसते लक्ष्मीः' और उस काल में और उसके बहुत पूर्व से भी भारतीय व्यापारी दूर-दूर तक समुद्र-यात्रा करते थे जिसके प्रमाण मिल चुके हैं[5]। इस कारण लक्ष्मी को नाव पर समुद्र मार्ग से लाने की कल्पना कुछ अद्भुत नहीं रही होगी[6]। इसी के पास इसी गहराई से एक मोहर हस्ति देव की प्राप्त हुई है[7], जिस पर लिखा हुआ लेख कुषाणकालीन है। यह मोहर लक्ष्मी वाली मोहर को भी कुषाणकालीन होने का संकेत करती है। यों कुछ विद्वानों ने इसे गुप्तकालीन माना है।

गजलक्ष्मी की मूर्ति अंकित मोहरें गुप्तकाल के स्तरों से कई प्राचीन स्थानों से खादाई में प्राप्त हुई हैं। मुजफ्फरपुर के बसाढ़ (वैशाली) से १९०३-०४ की खादई में इस प्रकार की सौ से ऊपर मोहरें प्राप्त हुई हैं। इस खोदाई में बसाढ़ की एक मोहर पर एक खड़ी लक्ष्मी की मूर्ति भी प्राप्त हुई है। यहाँ गज नहीं दिखाये गये हैं।[8] इसमें भी ये सामने मुख किये हुए कमलों के बीच खड़ी हैं, इनका बायाँ हाथ कमर पर है और दाहिना हाथ दान

---

१. डी० बी० स्पूनर -- एक्सकवेशन्स एट बसाढ़ - ए० एस० आई० आर०, १९१३-१४, प्लेट ४७, संख्या ३१२ तथा प्लेट ४८ संख्या ४४२।
२. उपर्युक्त -- प्लेट ४९, संख्या ६०३।
३. उपर्युक्त -- प्लेट ५०, संख्या ७७९।
४. उपर्युक्त -- पृष्ठ १३०, पर कहते हैं कि कदाचित् यह वृषभ या पंख सहित सिंह है। कोवेल जातक ख. ३, पृ० १२६-१२७।
५. बावेरू जातक, सुप्पारक जातक नं०...। कोवेल - जातक ख. ४, पृ० १३०-१४२।
६. उपर्युक्त -- प्लेट ४६ संख्या ९३।
७. उपर्युक्त -- पृष्ठ १३० संख्या ९४; दोनों ही १५॥ फुट की निचाई के आसपास प्राप्त हुई हैं।
८. टी० ब्लाच - एक्सकवेशन्स एट बसाढ़ - आर्केआलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट १९०३-०४ - प्लेट ४२, संख्या ५६।

मुद्रा में। इनमें एक प्रकार की मोहरों पर लक्ष्मी को पेड़ों के बीच खड़ा दिखाया गया है। इनके दोनों ओर दो हाथी इन्हें घटों से स्नान करा रहे हैं तथा इनके दोनों ओर दो खड़े यक्ष घट में से मुद्रा गिराते हुए दिखाये गये हैं। लक्ष्मी सम भाव से खड़ी हैं, इनके बायें हाथ में नाल सहित कमल का फूल है। कानों के कुण्डल, गले की एकावली, कमर की करधनी तथा पैरों के कड़े स्पष्ट दिखाई देते हैं। कन्धे पर उत्तरीय है जो हाथों पर से होता हुआ नीचे लटक रहा है। शरीर के अधोभाग में धोती है। ऊपर के अंग में चोली दिखाई देती है। लक्ष्मी के पैर के नीचे एक रेखा खिंची हुई है उसके नीचे 'कुमारामात्याधिकरणस्य' लिखा हुआ है।[१] इसी प्रकार की एक और मुहर पर 'कुमारामात्याधिकरणस्य' के साथ 'श्रेष्ठी सार्थवाह कुलिक निगम'[२] लिखा है। दूसरे प्रकार की मोहरों पर केवल गजलक्ष्मी की मूर्त्ति बनी है, उसमें यक्ष नहीं दिखाये गये हैं। इसमें लक्ष्मी के दोनों ओर कमल के फूल और कलियाँ हैं। लक्ष्मी का बायाँ हाथ कमर पर है और उसी में नाल सहित कमल है। इसके नीचे 'युवराजपादीय कुमारामात्याधिकर्णस्य'[३] लिखा है। (फलक २९ ख) इसी प्रकार की एक और मुहर पर 'श्री पर (-मभट्टारक) पादीय कुमारामात्याधिकरणस्य'[४] लिखा है (फलक २९ ग)। एक दूसरी प्रकार की मोहरों में खड़ी गजलक्ष्मी की मूर्त्ति के साथ बैठे हुए यक्ष दिखाये गये हैं। इसमें लक्ष्मी का बायाँ हाथ उठा हुआ है और उसमें छः पंखड़ियों वाला कमल है, दक्षिण कर दान मुद्रा में है। लक्ष्मी के मस्तक पर मुकुट है, कानों में कुण्डल है, कटि में करधनी है। नीचे की धोती स्पष्ट है, ऊपर के वस्त्रों का पता नहीं लगता। इसमें गज स्पष्ट रूप से कमल के फूलों पर खड़े दिखाये गये हैं। यक्षों के समक्ष चौकी पर पात्र रखे हैं, जिनमें से गोल सिक्के नीचे गिर रहे हैं। नीचे 'श्री युवराज भट्टारक पादीय कुमारामात्याधिकर्णस्य' लिखा है।[५] यक्षों का बायाँ हाथ उठा हुआ है दक्षिण जंघे पर स्थित है, आधी पल्थी लगाए हैं, एक पैर उठा है इनके मस्तक पर जटाजूट है (फलक २९ य)। एक ओर गजलक्ष्मी अंकित मोहर पर 'श्रीरणभांडागार अधिकर्णस्य' लिखा है।[६] इसमें यक्ष खड़े हैं और एक हाथ में पात्र को पकड़ कर दूसरे से मुद्रायें गिरा रहे हैं (फलक २९ ङ तथा फलक ८ क)। दूसरी इसी प्रकार यक्षों सहित लक्ष्मी की मूर्ति एक ओर मोहर पर अंकित है, इसमें लक्ष्मी का दोनों हाथ नीचे की ओर है तथा बायें में कमल का फूल है। यक्ष पीछे की ओर झुके हुए खड़े हैं। इनका एक पैर आगे और एक पीछे है (फलक २९ च)। इस मोहर पर 'तीरभुक्तौविनयस्थितिस्थाप (का) धिकर्ण (स्य)।'[७] इसी प्रकार की एक दूसरी मोहर भी यहीं से मिली है जिस पर लक्ष्मी के हाथ में आठ पंखड़ियों वाला कमल है। इस पर 'तीरभुक्तथ उपरिकाधिकरणस्य' लिखा है। एक ओर मोहर पर लक्ष्मी की मूर्ति मिलती है, जिसमें 'युवराज पादीय-कुमारामात्याधिकरणस्य' लिखा है। इसमें लक्ष्मी के दक्षिण कर में कमल है और वे एक चौकी पर स्थित हैं। इनके दोनों ओर के हाथी नहीं दिखाई देते (फलक २९ छ)। यक्ष अवश्य घट से रुपये गिरा रहे हैं।[८] सन्

---

१. एक्सकवेशन्स एट बसाढ़ – आर्केआलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, आनुवल रिपोर्ट १००३-०४, पृष्ठ १०७।
२. वही -- उपर्युक्त – प्लेट...पृष्ठ १०७ (५)।
३. वही -- उपर्क्युत – प्लेट ४०, संख्या १०।
४. वही -- उपर्युक्त, – प्लेट...पृष्ठ १०८-(८)।
५. एक्सकवेशन्स एट बसाढ़ -- प्लेट ४०, संख्या ११, पृष्ठ १०७।
६. वही -- प्लेट ४० संख्या ७।
७. वही -- प्लेट ४० संख्या १३।
८. वही -- प्लेट ४० संख्या ४।

सन् १९१३-१४ की खोदाई में श्री स्पूनर को बसाढ़ से एक गजलक्ष्मी की अंकित मुहर प्राप्त हुई थी, उसमें लक्ष्मी समपाद भाव में सामने मुख करके एक चौकी पर खड़ी दिखाई गयी हैं। अपने बाँये हाथ में ये पुष्प सहित एक कमल-नाल पकड़े हैं परन्तु इनके दाहिने हाथ में कुछ नहीं है। दो गज इन्हें स्नान करा रहे हैं। इनके मस्तक पर ललाटिका है, कानों में कुण्डल, गले में स्तनमित्र हार, बाहू पर केयूर तथा कटि में करधनी है। ऊपर के अंग में उत्तरीय तथा नीचे के अंग में धोती है। इनके बाईं ओर शंख[1] नहीं है। यह कल्पवृक्ष ज्ञात होता है और दाहिनी ओर पूर्ण घट है[2], नीचे 'वैशाली-नामकुण्डे कुमारामात्याधिकरण (स्य)' लिखा है।

इलाहाबाद के भीटा से जिसका प्राचीन नाम विच्छी या विच्छीग्राम था, सर जान मार्शल को कई मोहरें ऐसी प्राप्त हुई हैं जिन पर गजलक्ष्मी की मूर्ति अंकित है। इनमें एक मोहर पर जो गजलक्ष्मी बनी है। वे अपना मस्तक दाहिनी ओर झुकाये हुए, दाहिना पैर आगे और बाँया पीछे किये हुए खड़ी हैं। कमल के फूल और कलियाँ, इनके दोनों ओर बनी हैं। हाथी कमल पर स्थित इन्हें स्नान करा रहे हैं। इनका बायाँ हाथ एक पक्षी के मस्तक पर है। दक्षिण कर उठा हुआ अभय मुद्रा में है। कानों के कर्णाभरण, गले का स्तनमित्र हार, बाहू के केयूर, कटि की मेखला, पैरों के नूपुर स्पष्ट दिखाई देते हैं। इसी प्रकार उत्तरीय तथा दोनों पैरों से लिपटी हुई धोती भी बड़ी सुन्दरता से अंकित की गयी है। इनकी बाँईं ओर गरुड़ अंकित हैं (फलक २९ ज)। नीचे की पंक्ति में 'महाश्वपति – महादण्डनायकविष्णुरक्षितपदानुगृहीतकुमारामात्याधिकरणस्य' अंकित है। इस मोहर का व्यास १$\frac{3}{8}$ इंच का है।[3]

भीटा से प्राप्त एक दूसरी मोहर पर भी गजलक्ष्मी की मूर्ति अंकित है। इसमें देवी कमल के फूल पर समपद भाव में खड़ी हैं। इनके दक्षिण कर मे कमल है और बांयें से ये मुद्रायें गिरा रही हैं। इनके दोनों ओर दो यक्ष हाथ जोड़े उकड़ू कमल पर बैठे हैं। गज गोल घड़े से लक्ष्मी को स्नान करा रहे हैं। इस मोहर पर भी गज-लक्ष्मी की मूर्त्ति कुछ बसाढ़ की उन मोहरों पर की लक्ष्मी से मिलती हुई है जिनमें यक्ष इनके दोनों ओर दिखाये गये हैं। अन्तर केवल इतना है कि यहाँ यक्ष कमल पर उकड़ू बैठे हैं और लक्ष्मी भी कमल पर स्थित हैं। बसाढ़ की मोहरों पर यक्ष कमल पर स्थित नहीं दिखाये गये हैं। नीचे की पंक्ति में '(कु) मारामात्याधिकरणस्य' लिखा है। लक्ष्मी पूर्ववत् वस्त्राभूषणों से सुशोभित हैं (फलक २९ झ)। ऐसा ज्ञात होता है कि इस मूर्ति को किसी मन्दिर में स्थित दिखाया गया है।[4] एक और मूर्ति पर गजलक्ष्मी अंकित हैं, परन्तु उसमें यक्ष नहीं दिखाये गये हैं। लक्ष्मी कमल पर सामने मुख करके खड़ी हैं और कमल उसी स्थान पर निकल रहे हैं। इनके दोनों हाथ कोहनी पर से उठे हुए हैं। दक्षिण कर में शंख तथा बाँयें में गरुड़ दिखायी देता है। इनके मस्तक पर मुकुट और कानों में कुण्डल स्पष्ट दिखाई देते हैं। नीचे का वस्त्र घुटनों तक ही दिखाया गया है। (फलक २९ ञ) नीचे की पंक्ति में 'सामाहर्संविशयाधिकरणस्य' लिखा है।[5] तेरसे, जो महाराष्ट्र का एक नगर था, एक गुप्तकाल की मोहर प्राप्त हुई है, जिस पर एक गजलक्ष्मी की खड़ी मूर्त्ति दिखाई देती है।[6]

---

१. डॉ० स्पूनर -- एक्सकवेशन्स एट बसाढ़ – ए० एस० आर० १९१३-१४, पृष्ठ १३४, संख्या २००।
२. उपर्युक्त -- प्लेट ४७, संख्या २००।
३. सर जॉन मार्शल -- एक्सकवेशन्स एट भीटा – ए० एस० आर० – १९१२-१२, पृष्ठ ५२, प्लेट १०, संख्या ३२।
४. एक्सकवेशन्स एट भीटा – प्लेट १९ संख्या ३५।
५. वही -- प्लेट १९, संख्या ४२, पृष्ठ ५४।
६. वही -- प्लेट १९, संख्या १३।

अहिच्छत्र से भी एक ऐसी ही मोहर प्राप्त हुई है जिस पर गजलक्ष्मी की मूर्त्ति है। यहाँ इनके दोनों हाथ नीचे की ओर दिखाये गये हैं। बायें हाथ में कमल का पुष्प है और दाहिने से मुद्राएँ गिरा रही हैं। इनके दोनों ओर दो हाथी इन्हें अभिषेक कर रहे हैं। दोनों ओर दो यक्ष टेढ़े खड़े हैं, जैसे ये हमें बसाढ़ की एक मोहर पर दिखाई देते हैं।[1] अन्तर इन दोनों में इतना है कि यहाँ ये दोनों हाथ मस्तक के ऊपर ले जाकर नमस्कार कर रहे हैं और वहाँ ये घट का संरक्षण कर रहे हैं। लक्ष्मी जिस कमल पर स्थित हैं उसके भी दोनों ओर कमल बने हैं। देवी का वस्त्राभूषण पूर्ववत् ही दिखाया गया है (फलक २९ त)।

इसी प्रकार की एक गजलक्ष्मी की अंकित मोहर नालन्दा से भी मिली है।[2] इस पर दो गज जो कमल-पुष्पों पर दिखाये गये हैं, उनके हाथ मनुष्यों जैसे प्रतीत होते हैं। लक्ष्मी के दोनों ओर दो घट हैं। बाँयें हाथ से देवी एक कमल के पुष्प की नाल पकड़े हैं और इनका दाहिना हाथ घट के ऊपर दिखाया गया है। देवी के मस्तक के चारों ओर प्रभा-मण्डल है। गले में एक तौक दिखाई देता है तथा मस्तक के ऊपर एक जूड़ा दिखाई देता है। कटि में इनके करधनी का आभास मिलता है, परन्तु और वस्त्राभूषण स्पष्ट नहीं हैं। नीचे के लेख से यह उत्तर गुप्त काल की मोहर प्रतीत होती है (फलक २९ थ)। इसी के आसपास के काल की एक मोहर पूर्वी बंगाल की रियासत टिपरा में मिली थी।[3] यह मोहर एक ताम्रपत्र के साथ लगी थी। ताम्रपत्र प्रायः नवीं या दसवीं शताब्दी की लिखावट में है, परन्तु यह मुहर उससे कुछ ही पहिले की है। इस पर भी 'कुमारा-मात्याधिकर्णस्य' लिखा है। परन्तु इसकी लिपि में और बसाढ़ की मोहरों की लिपि में अन्तर है। इसमें लक्ष्मी कमल पर खड़ी हैं। इनके हाथ में बिल्वफल है, दाहिना हाथ दान मुद्रा में है। दोनों ओर कमल के फूल और कमल की कलियाँ हैं। इनके मस्तक पर मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में चूहादन्ती हार, मणिबन्धों पर वलय तथा कटि में करधनी है। दोनों ओर दो उपासक मुकुट, कुण्डल और हँसली पहिने बैठे हैं। इनके हाथों में पात्र है, जिसमें से कुछ मुद्रायें स्वयम् बाहर निकल रही हैं (फलक २९ द)।

इन मोहरों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कुषाण काल से ही आर्यों में लक्ष्मी की पूजा राज्यलक्ष्मी के रूप में होने लगी थी। मोहरों पर इनका पहिले पद्महस्ता स्वरूप अंकित होता था तथा पीछे चलकर गज अभिषेक स्वरूप अंकित होने लगा।

(क) फाल्गुनी मित्र
(ख) पण्टालियोन
(ग) अगथाक्लीज
(घ) अज़ेज
(ङ) अज़िलिसेज़
(च) अमोघभूति
(छ) अमोघभूति
(ज) राज़न्य

---

१. हैण्ड बुक टू दी सेन्टेनरी एक्जिविशन – आर्के आर्केआलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया – दिसम्बर १९६१, प्लेट १४, संख्या ६।

२. उपर्युक्त –– प्लेट १४, संख्या २।

३. टी० ब्लाच – आर्केआलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया – एनुअल रिपोर्ट – १९०३-०४, पृष्ठ १२१, फिगर १६।

(झ) सोगस
(ञ) ब्रह्मण्यदेव
(ट) यौधेय
(ठ) यज्ञ श्री
(ड) चन्द्रगुप्त प्रथम
(ढ) समुद्रगुप्त पराक्रम
(ण) ,, वीणा
(त) ,, काचा
(थ) चन्द्रगुप्त द्वितीय सिंहासनारूढ़
(द) ,, ,, धनुषधारी
(ध) ,, ,, ,,
(न) ,, ,, छत्रप
(प) ,, ,, सिंह वध
(फ) ,, ,, अश्वारोही
(ब) ,, ,, चक्र विक्रम
(भ) कुमारगुप्त अश्वारोही
(म) ,, सिंह वध
(य) ,, प्रताप
(र) ,, गजारोही
(ल) स्कन्ध गुप्त धनुषधारी
(व) ,, राजा-रानी
(श) ससांक – वृषभ पर स्थित
(ष) पीछे के काल के गुप्त राजा
(ह) गांगेय देव
(अ) वीर वर्म देव
(आ) पार्थ
(इ) क्षेमेन्द्र गुप्त
(ई) संग्राम
(उ) जागदेव
(ऊ) मोहम्मद बिन साम

: ८ :

भारतीय अभिलेखों में लक्ष्मी

भारतीय अभिलेख जो मोहनजोदड़ो इत्यादि सिन्धु घाटी की सभ्यता के प्राचीन स्थानों से प्राप्त हुए हैं, वे अभी तक समुचित रूप से पढ़े नहीं गये, न उनको पढ़ने की कोई कुंजी प्राप्त हुई है जैसी मिश्र के अभिलेखों को पढ़ने की मिल गयी है। इस कारण यह कहना कठिन है कि उनमें लक्ष्मी शब्द है या नहीं।

अशोक के लेख जो पढ़े गये हैं उनमें लक्ष्मी शब्द का अभाव ही है। मौर्य काल के (ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी) महास्थान (बंगाल) के एक लेख में पाषाण के एक टुकड़े पर अंकित 'सुलखिते' (सुलक्ष्मीतः) शब्द प्राप्त होता है।[1] इसका अर्थ यहाँ 'ऋद्धिमतः' करना समीचीन ज्ञात होता है। इस प्रकार इस काल तक तो ऐसा ज्ञात होता है कि यह शब्द किसी देवी का द्योतक नहीं था। सोह गोरा के ताम्र पत्र के लेख में सि [f] ल माते अथवा श्रीमते (या श्रीमान्)[2] शब्द मिलता है, जो धनवान का द्योतक ज्ञात होता है। कुषाण काल में कुछ स्त्रियों के ऐसे नाम मिलते हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि श्री शब्द का अर्थ समृद्धि के रूप में प्रयोग होने लगा था, जैसे––धान्य श्री[3] (धान्य की देवी) यह लेख प्रायः १२६ ईसवी का माना जाता है। पश्चिम भारत के नाना घाट के शातकर्णी प्रथम के अभिलेखों में श्री शब्द नाम के साथ प्रयुक्त होने लगा था। एक कुमार का नाम भी यहाँ शक्तिश्री मिलता है[4] तथा यहीं के दूसरे लेख में एक दूसरे कुमार का नाम स्कन्धश्रियः मिलता है।[5] नासिकवाली विजय प्रशस्ति में श्री शातकर्णी को श्री-अधिष्ठान कहा है। सिरियअधिठानस तथा कुल विपुलसिरिकास भी कहा है। इनकी माता का नाम बाल श्री मिलता है[6]। लक्ष्मी शब्द हाथी गुम्फा की गुफा के लेख में मिलता है[7]। यह शब्द 'जठर-लक्ष्मील गोपुरणि' सम्बन्ध में मिलता है (यह लेख ईसा पूर्व पहिली शताब्दी का माना जाता है)। यहाँ ऐसा ज्ञात होता है कि लक्ष्मी गोपुर में बनी हुई थी। नागार्जुन कोण्ड के लेखों में विविध स्त्रियों के नाम प्राप्त होते हैं। उनमें हमें हर्म्य श्री (खिड़की की शोभा), वप्पी श्री (वापी की शोभा), स्कन्ध श्री इत्यादि नाम प्राप्त होते हैं[8]। ये लेख प्रायः ईसवी तीसरी शताब्दी के हैं। यहाँ श्री पर्वत का नाम भी मिलता है, जो पुराणों की सामग्री के साथ वर्णन होगा।[9]

---

१. दिनेश चन्द्र सरकार –– सेलेक्ट इन्सक्रिपशन्स बेअरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलिजेशन, युनिवर्सिटी ऑफ कालकाटा – १९४२, पृष्ठ ८३।

२. वही –– उपर्युक्त – पृष्ठ ८६।

३. वही –– उपर्युक्त – पृष्ठ १५१–१५२।

४. वही –– उपर्युक्त – पृष्ठ १८५।

५. वही –– उपर्युक्त – पृष्ठ १८९।

६. श्री कृष्ण दत्त वाजपेयी – गौतमी पुत्र श्री शातकर्णी की विजय प्रशस्ति नागरी प्रचारिणी पत्रिका विक्रमांक...वैशाख – माघ-पृष्ठ १३४–१३६।

७. सरकार –– उपर्युक्त – पृष्ठ २०९, २१२।

८. जैसे मुगल काल में नूर महल, नूरेजहाँ इत्यादि मिलते हैं।

९. सरकार –– उपर्युक्त – पृष्ठ २१९–२२५।

गुप्त कालीन लेखों में श्री और लक्ष्मी शब्द स्थान-स्थान पर प्राप्त होते हैं, जैसे--रुद्र दमन प्रथम के जूनागढ़ के अभिलेख में राज लक्ष्मी के रूप में[१] अथवा शोभा के अर्थ में तथा चन्द्र राजा के महरौली लौह स्तूप के लेख में[२] इत्यादि। स्कन्द गुप्त के लेखों में लक्ष्मी का विशिष्ट रूप प्राप्त होता है। जूनागढ़ के लेख में (४५७-४५८ ई०) स्कन्दगुप्त को 'श्रियम् अभिभूतभोग्याम्' (जिसने लक्ष्मी का पूर्ण भोग किया है)[३] कहा है तथा 'पृथु श्री' भी कहा है। यहाँ लक्ष्मी के ध्यान का वर्णन तथा उनका विष्णु से सम्बन्ध भी प्राप्त होता है –

कमल निलयनायः शाश्वतं धाम लक्ष्म्यः,
स जयति विजितार्तिर्विष्णुरत्यन्तजिष्णुः।
तदनु जयति शश्वत् परिक्षिप्तवक्षाः,
स्वभुजजनित वीर्यो राजाधिराजः।[४]

लक्ष्मी शब्द यहाँ सम्पत्ति के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है, 'व्यपेत्य सर्व्वान मनुजेन्द्रपुत्रान् ल्लक्ष्मीः स्वयम् यं वरयांचकार।' भितरी के अभिलेख में कुल लक्ष्मी मिलती है (विचलित कुल लक्ष्मी स्तम्भनायोद्यतेन) तथा वंश लक्ष्मी भी।[५] सागर के ईरान के प्रस्तर खम्भ पर उत्कीर्ण बुद्ध गुप्त के (ई० ४८४) श्री शब्द कान्ति के अर्थ में और लक्ष्मी शब्द राज्यलक्ष्मी के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। लक्ष्मी से समुद्र के सम्बन्ध का भी संकेत किया गया है (स्वयभवरयेव राजलक्ष्म्याधिगतेन चतुःसमुद्रपर्यन्तप्रथितयशसा...)[६] श्रीवत्स चिह्न विष्णु के वक्ष-स्थल पर अंकित है, यह धारणा हमें मानदेव के छांगु नारायण के प्रस्तर स्तम्भ के लेख में मिलती है (ई० ४६४) (श्री वत्सांकित दीप्त चारु विपुल प्रोदृ – वक्षस्थलः)[७]। इसी लेख में मानदेव की स्त्री को श्री की भाँति कहा है (श्रीरेवानुगता)। मध्य प्रदेश के सागर स्थित ईरान के तोरमाण के लेख में भी बुद्ध गुप्त के लेख की भाँति 'स्वयम् वरयेव राजलक्ष्म्याधिगतस्य चतुःसमुद्र पर्यन्त प्रथित यशसः' शब्द प्राप्त होते हैं।[८]

श्री मिहिर कुल के ग्वालियर के प्रस्तर लेख में[९] श्री को वहाँ के गिरि पर स्थित कहा है –

यावच्चोरसि नीलनीरवनिभे विष्णुर्ब्बिभर्त्युज्ज्वलाम्।
श्रीमंस्तावद्गिरि – मूर्ध्नि तिष्ठति शिला-प्रासाद मुख्योरमे।।[९]

पूना के प्रभावती गुप्ता के ताम्र पत्र के अभिलेख में जो पाँचवीं शताब्दी का है 'नृपश्रियः' शब्द प्राप्त होते हैं। यह भी लेख पाँचवीं शताब्दी का है।[१०] इसी प्रकार नृपश्रियः शब्द प्रवरसेन प्रभावती गुप्त के पुत्र के इलीचपुर के लेख में भी मिलते हैं।[११]

---

१. वही –– उपर्युक्त पृष्ठ – १७० ।
२. जयचन्द्र विद्यालंकार –– उत्कीर्ण लेखांजली – २०, पृष्ठ २८ ।
३. दिनेशचन्द्र सरकार –– उपर्युक्त – पृष्ठ ३०० ।
४. वही –– उपर्युक्त, – पृष्ठ ३०१ ।
५. वही –– उपर्युक्त, – पृष्ठ ३१४ ।
६. वही –– उपर्युक्त, – पृष्ठ ३२७ ।
७. वही –– उपर्युक्त, – पृष्ठ ३६७ ।
८. वही –– उपर्युक्त, – पृष्ठ ३६७ ।
९. वही –– उपर्युक्त, – पृष्ठ ४०२ ।
१०. वही –– उपर्युक्त, – पृष्ठ ४११ ।
११. वही –– उपर्युक्त, – पृष्ठ ४१८ ।

अजन्ता के हरिषेण के लेख में हमें निर्जित्य श्री मिलता है, जिसका अर्थ है कि उस राजा की राज्यश्री कभी जीती नहीं गयी थी ।[1] इसी लेख में हमें विष्णु का नाम श्रीपति भी मिलता है, "श्रीपतिना शरा निकुंजे" ।[2] यह लेख ईसा पश्चात् चतुर्थ शताब्दी का है । ताल गुण्डा के प्रस्तर खम्भ के श्री शान्ति वर्मा के लेख में श्री पर्वत का विवरण प्राप्त होता है ।[3] इस लेख में पृथु श्री तथा लक्ष्मी शब्द सुन्दरता के अर्थ में मिलते हैं – 'लक्ष्म्यङ्गना धृतिमति ।' यह लेख प्राय: ईसा पश्चात् पाँचवीं शताब्दी का है । दिल्ली के कोटला फिरोज शाह के बीसलदेव के लेख में समुद्र से उत्पन्न लक्ष्मी का विवरण मिलता है । यह लेख प्राय: ईसा पश्चात् १२२० का है ।[4] यह विवरण पुराणों के विवरण से बहुत कुछ मिलता है ।

इस प्रकार लक्ष्मी का स्वरूप, जो अभिलेख में मिलता है, वह यहाँ दिया गया है । यह रूप पुराणों से बहुत भिन्न नहीं है और प्राय: उन्हीं पर आधारित प्रतीत होता है ।

---

१. वही –– उपर्युक्त – पृष्ठ ४२७ ।

२. वही –– उपर्युक्त – पृष्ठ ४३० ।

३. वही –– उपर्युक्त – पृष्ठ ४५२ – यह नलमल्लूर पहाड़ियों की शृंखला में है ।

४. जयचन्द्र विद्यालंकार –– उत्कीर्ण लेखांजलि : २, पृष्ठ ५८ ।

: ६ :

कतिपय तन्त्र-ग्रन्थों में देवी लक्ष्मी का स्वरूप

अनादि काल से मनुष्य की यह प्रवृत्ति रही है कि शीघ्रातिशीघ्र उसको मनवांछित फल प्राप्त हो जाय। इसी इच्छा के फलस्वरूप विविध देशों में जादू-टोना इत्यादि का आविष्कार हुआ। भारत में आज भी सत्तर फी सदी ऐसे लोग हैं जिन्हें इस प्रकार की क्रियाओं में विश्वास है। उन लोगों की संख्या बहुत थोड़ी है, जो किसी-न-किसी रूप में चमत्कार से न प्रभावित होते हों। बाहर के देशों में भी इस प्रकार की धारणाएँ हैं, चाहे उनका परिष्कृत रूप ही हमारे सामने आता हो। तावीज और गण्डे आज भी योरप में दिये जाते हैं तथा स्वर्ग में सीधे जाने के परवाने आज भी शव के साथ दफनाये जाते हैं। ऐसा अनुमान होता है कि भारत में आदिवासियों में इस प्रकार के जादू-टोने का विशेष रूप से प्रचार था। आर्य जब यहाँ के आदिवासियों के सम्पर्क में आये, तो उन्हें यहाँ के देवी-देवताओं को अपनाना पड़ा और उनकी पूजा-पद्धति का अपने धर्म में समन्वय करना पड़ा, जिसका स्वरूप हमें अथर्ववेद में दिखाई देता है। फिर भी आर्यों ने इस प्रकार के तन्त्र इत्यादि को विशेष महत्त्व नहीं प्रदान किया। अनार्यों के पुरोहित जो झाड़-फूँक इत्यादि करते थे, वे अपना कार्य करते ही रहे। बौद्ध-धर्म, जो ज्ञानमूलक था और जैन धर्म, जो त्यागमूलक था, इन्हें भी बाध्य होकर इस जादू-टोने को अपनाना ही पड़ा। बौद्ध धर्म में तो तन्त्र का इतना प्रचार बढ़ा कि वज्रयान इत्यादि धर्म की अलग-अलग शाखाएँ ही बन गयीं। हिन्दुओं ने जब इस जादू-टोने का संस्कार किया, तो उसे अपने उपनिषदों की विचारधारा से मिला कर एक स्वतन्त्र रूप दे दिया और इन ग्रंथों को आगम का नाम दिया।

इसका स्वरूप इस प्रकार खड़ा किया गया कि शिव ने द्रवीभूत होकर मनुष्यों के कल्याण के निमित्त कुछ उपदेश दिये जो यामल, डामर, शिव सूत्र तथा तन्त्रों में संग्रहीत किये गये। तन्त्र विशेष रूप से देवता तथा शक्ति के संवाद के रूप में पाये जाते हैं।[१] गायत्री तन्त्र में ऐसी कथा मिलती है कि सर्वप्रथम देव योनि को गणेश ने कैलाश पर तन्त्र का उपदेश किया।[२] महानिर्वाण तन्त्र के अनुसार पार्वती के प्रश्न पर सर्वप्रथम शिव ने तन्त्र का उपदेश किया। शिव भारत के आदिवासियों के देवता थे[३], जिनका आदि रूप हमें मोहनजुदाड़ो की मुहरों पर प्राप्त होता है।[४] इनका सम्बन्ध आर्यों के देवता रुद्र से बहुत बाद में हुआ, क्योंकि ऋग्वेद में तो शिश्न-पूजकों को आर्यों के अग्नि देवता से दूर ही रखने को कहा गया है।[५] गणेश का अलग एक पंथ था, जैसा मलिन्द पन्ह को देखने से ज्ञात होता है।[६] ये भी पहिले यक्ष के रूप में पूजित होते थे और जापान में जहाँ इनकी अब भी पूजा होती है, इनको मदिरा भोग लगाई जाती है।[७] इससे ऐसा अनुमान होता है कि गणेश को गणपति

---

१. सर जॉन उडरफ — इन्ट्रोडक्शन टू तन्त्रशास्त्र, पृष्ठ २, ३।

२. गायत्री तन्त्र — अध्याय १०।

३. ड ला वाले पसाँ — इण्डो योरोपियाँ ए इण्डो आरिया, ल आण्ड जुस्क वेर त्वा सा अवी जीजू क्री (पारी १९२४) पृष्ठ ३०४, ३१५, ३१६, ३२० इत्यादि।

४. मांके — फरदर एक्सकवेशन्स एट मोहनजोदाड़ो — प्लेट १००, न० एफ।

५. कुमार स्वामी — यक्षाज — ख० १, पृष्ठ ३।

६. वही — यक्षाज — ख० २, पृ० ११ अणज मलिन्द पन्ह — १९१।

७. वही — यक्षाज — ख० २, पृ० ४।

के रूप में परिवर्तित करने की क्रिया बाद में हुई। तन्त्रों के यामल, डामर नाम भी तो यही बताते हैं कि यह अनार्यों की विद्या है।

शिव का निवास तन्त्र में सहस्रदल कमल पर कहा गया है[1]। पद्म भारत के आदिवासियों का चिह्न रहा है और यह हड़प्पा तथा मोहनजुदाड़ो में विविध रूपों में प्राप्त होता है।[2] इससे शिव का सम्बन्ध यदि हमें बाद के ग्रंथों में प्राप्त होता है, तो यह प्राचीन विचारधारा की ओर संकेत करता है जो किसी-न-किसी रूप में इस उर्वरा भूमि में जीवित चली आयी।

आर्यों द्वारा तन्त्र को अपनाये जाने का फल यह हुआ कि उपनिषदों के "एकं ब्रह्म द्वितीयं नास्ति" के सिद्धान्त को तन्त्र में भी स्थान दिया गया और ब्रह्म को परम निर्वाण शक्ति कहा गया। (यह नाम बौद्धों से सम्बन्धित ज्ञात होता है)। इस शक्ति की इच्छा हुई – 'अहम् बहुस्याम् प्रजायेय।' इसी से नाद की उत्पत्ति हुई और नाद से बिन्दु की। कहीं-कहीं यह भी कहा गया है कि शिव तथा शक्ति का संगम 'पराङ्ग बिन्दु' है। यह बिन्दु एक वृत्त द्वारा व्यक्त किया जाता है, जिसके बीच में ब्रह्म पाद है, जो प्रकृति-पुरुष का द्योतक है। इस वृत्त की बाहरी रेखा को माया कहा है—"मायाबन्धनाच्छादितप्रकृतिपुरुषपराङ्गबिन्दु।" इसे शब्द ब्रह्म भी कहा है।[3] शब्द ब्रह्म द्वारा ज्ञान शक्ति, इच्छा शक्ति और क्रिया शक्ति का प्रादुर्भाव होता है जो तामस, सत्व तथा राजस गुणों की द्योतक हैं। यही देवी का स्वरूप है। देवी को इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति तथा क्रिया शक्ति स्वरूपिणी कहा है।[4] जब यन्त्रों का निर्माण इस आधार पर होता है, उस समय बीच का बिन्दु पुरुष का द्योतक तथा त्रिकोण देवी का तथा त्रिकोण के चारों ओर का वृत्त माया का द्योतक होता है। शब्द ब्रह्म से शक्ति की उत्पत्ति होती है, इस कारण चक्र में अक्षर भी लिखे जाते हैं (जैसे श्री चक्र में फलक २१)। यदि उपनिषदों की विचारधारा के आवरण को हटा कर देखा जाय, तो यह लिंग तथा योनि की उपासना ही का परिष्कृत स्वरूप प्रतीत होगा।

कुब्जिका तन्त्र में ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र को कर्ता नहीं माना है (जो पुरुषप्रधान आर्य धर्म के बिलकुल विपरीत है)। इनके स्थान पर ब्राह्मी, वैष्णवी तथा रुद्राणी को सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता तथा संहारकर्ता माना है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव को इनकी शक्तियों के सामने शव के समान माना है।[5]

देवी के तीन रूप कहे गये हैं : एक परा, दूसरा सूक्ष्म तथा तीसरा स्थूल। विष्णु यामल के अनुसार परा रूप को कोई नहीं जानता[6]—"मातस्तावत् परं रूपं तन्न जानाति कश्चन'। सूक्ष्म स्वरूप मन्त्र है परन्तु इन निर्विकार स्वरूप पर मन स्थिर नहीं हो सकता, इस कारण इनके स्थूल स्वरूप का निर्माण होता है। देवी का स्वरूप माता के रूप में प्रादुर्भूत होता है। यह सब यन्त्र तथा तन्त्र की देवी हैं, इन्हें ललिता सहस्र नाम में सर्व-

---

१. भास्कर राय ने ललिता सहस्र नाम की टीका में त्रिपुरासार का हवाला देते हुए यह विवेचन किया है – श्लोक १७।

२. वत्स –– एक्सकवेशन्स एट हड़प्पा, प्लेट १३९-७; मॉके – फरदर एक्सकवेशन्स इत्यादि प्लेट १०६–३४।

३. शारदा तिलक –– अध्याय १।

४. माया का रूप देवी पुराण के चौदहवें अध्याय में इसी भाँति दिया है।

५. कुब्जिका तन्त्र –– अध्याय १; कर्पूरादि स्तोत्रम् – प्रकाशक अरबर अविलोन, १९२२, पृष्ठ १९, श्लोक १२।

६. उडरफ –– इण्ट्रोडक्शन टू तन्त्र शास्त्र, पृष्ठ १४।

तन्त्र रूपा सर्व यन्त्रात्मिका' कहा है।[१] इनका स्वरूप एक परम सुन्दर स्त्री के रूप में कल्पित किया जाता है। इनको 'कृशोदरीं पीनोन्नतपयोधराम् नितम्बजितभूधराम्' इत्यादि कहा है। शाक्तानन्द तरंगिणी के अनुसार महादेवी के अनेक रूप हैं : जैसे सरस्वती, लक्ष्मी, गायत्री, दुर्गा, त्रिपुरा, सुन्दरी, अन्नपूर्णा इत्यादि। इस प्रकार लक्ष्मी महादेवी एक विशिष्ट शक्ति के रूप में हमें यहाँ प्राप्त होती हैं।[२]

लक्ष्मी के पाँच स्वरूपों का विश्लेषण हमें दक्षिण मूर्ति संहिता में प्राप्त होता है--

श्रीः विद्या च तथा लक्ष्मीर्महालक्ष्मीस्तथैव च।
त्रिशक्तिः सर्वसाम्राज्यलक्ष्मीः पञ्च कीर्तिताः।[३]

इनका ध्यान यहाँ इस प्रकार दिया है--

ध्यायेततः श्रियः रम्याम् सर्वदेवनमस्कृताम्।
तप्तकार्त्तस्वराभासां दिव्यरत्नविभूषिताम्॥
आसिच्यमानाममृतैर्मुक्तारत्नगवैरपि।
शुभ्राभ्रामेयुग्मेन मुहुर्मुहुरपि प्रिये॥
रत्नौघमूर्द्धमुकुटां शुद्धक्षौमाङ्गरागिणीम्।
पद्माक्षीम् पद्मनाभेन हृदि चिन्त्यां स्मरेद् बुधः॥
एवं ध्यात्वार्च्चयेद्देवीम् पद्मपुष्पधरां सदा।
वरदाभयशोभाढ्यां चतुर्बाहुं सुलोचनाम्॥[४]

अर्थात् इनका ध्यान एक परम सुन्दरी स्त्री के रूप में करना चाहिए, जिनके शरीर की आभा तप्त सोने के भाँति है तथा जो दिव्य रत्नों से विभूषित हैं, जिनके मस्तक पर रत्न-जटित मुकुट है, जिनकी आँखें पद्म दल के आकार की हैं, जिनके हाथ में पद्म का पुष्प है, जिनका एक कर वरद मुद्रा में है, जो चतुर्बाहु हैं, जो दो हाथियों द्वारा अमृत से स्नान कराई जा रही हैं, इत्यादि।

इनकी पूजा, गन्ध, पुष्प इत्यादि से करनी चाहिए[५] तथा इनको योनि मुद्रा, सुरभी मुद्रा इत्यादि से आवाहन करना चाहिए[६], ऐसे निर्देश प्राप्त होते हैं। इनका यहाँ और एक ध्यान मिलता है जो महालक्ष्मी का स्वरूप है--

अङ्गानि पूर्ववद्देवि न्यसेन्मन्त्री समाहितः।
रत्नोद्यतसुपात्रन्तु पद्मयुग्मं च हेमजम्।
अग्ररत्ना वलीराजदादर्शं दधतीम् परम्॥
चतुर्भुजाम् स्फुरद्रत्ननूपुराम् मुकुटोज्ज्वलाम्।
ग्रैवेयाङ्गदहाराढ्यां कंकती रत्न कुण्डलाम्॥

---

१. ललिता सहस्रनाम -- श्लोक ५८।
२. शाक्तानन्द तरंगिणी -- अध्याय ३।
३. दक्षिण मूर्ति संहिता -- पटल १; ७।
४. उपर्युक्त -- पटल १; १५-१८।
५. उपर्युक्त -- पटल १; १४-१५।
६. उपर्युक्त -- पटल १

पद्ममासनसमासीनां दूतीभिर्मण्डितां सदा ।
शुक्लाङ्गरागवसनाम् महादिव्याङ्गनानताम् ।।
एवं ध्यात्वाऽर्चयेद्देवीम् पूर्वयन्त्रे च पूर्ववत् ।[1]

अर्थात् अंग इनका पूर्व में जैसा कहा गया है वैसा ही होना चाहिए । पात्र रत्नों से जटित होना चाहिए तथा हाथी पद्मों पर खड़े हों । ये चतुर्भुज हों, मुकुट मस्तक पर हो, गले में एकावली रत्नों की हो, ग्रैवेयक अर्थात् तौक तथा हार भी गले में हों, रत्नों के कुण्डल कान में हों, रत्न-जटित नूपुर हों । सफेद अंगराग हों और सफेद वस्त्र हों तथा पद्म के आसन पर बैठी हों, इत्यादि । इनके मन्दिर में महागज तथा घोड़ों की आकृतियाँ बनानी चाहिए तथा साधक या उपासक को स्वयम् भी सुवर्ण तथा रत्नों के आभूषण धारण करके इनकी पूजा करनी चाहिए ।[2] यहीं श्री यन्त्र बनाने की भी विधि प्राप्त होती है तथा उसकी पूजा करने का प्रयोग भी मिलता है ।[3]

त्रिपुरा रहस्य में शेषशायी नारायण का ध्यान प्राप्त होता है, जिसमें भगवान् क्षीर समुद्र में शेष के ऊपर शयन कर रहे हैं और लक्ष्मी जी उनका चरण दबा रही हैं--"श्रिया लालितपदाब्जयुगलातिविराजितः ।"[4] इसमें एक लक्ष्मी की प्रार्थना भी मिलती है, जिसमें उनका स्वरूप स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है--

अथ ते पुरुहूताद्यास्तुहिनाद्रितटे स्थिताः ।
स्वर्धुनीसविधे पद्मां तुष्टुवुर्हरिवल्लभाम् ।।
नमो लक्ष्म्यै महादेव्यै पद्मायै सततं नमः ।
नमो विष्णुविलासिन्ये पद्मस्थायै नमोनमः ।।
त्वं साक्षाद्धरिवक्षःस्था सुरज्येष्ठा वरोद्भवा ।
पद्माक्षी पद्मसंस्थाना पद्महस्ता परामयी ।।
सम्राज्या सर्वसुखदा निधिनाथा निधिप्रदा ।
निधीशपूज्या निगमस्तुता नित्यमहोन्नतिः ।।
अनन्त कोटितड़िताम् पुञ्जीभूतसमप्रभा ।
दलद्रक्तोत्पलामाङ्गी तप्तहेमाम्बराऽन्विता ।।
करपद्मलसच्छूनदलपद्मचतुष्टया ।
हेमकुम्भप्रभाक्षेपतुङ्गवक्षोजशोभिता ।।
पक्वविद्रुमन्यक्कारिमृदुदन्तच्छदान्विता ।
मुखामोदसमाहूतभृङ्गी संकारमध्यगा ।।
इन्दीवरसुसौभाग्यवदना कर्णलोचना ।
कस्तूरीतिलकाख्यातमुखरागेन्दुलाञ्छना ।।
अनर्घ्यरत्नप्रत्युप्तभूषणौघविभूषिता ।
एवंविधां रमां दृष्ट्वा दण्डवत्प्रणताः सुराः ।।[5]

---

१. उपर्युक्त -- पटल २; ६-१० ।
२. दक्षिणामूर्ति संहिता -- पटल २; १५ ।
३. उपर्युक्त -- पटल ३, १-६ ।
४. त्रिपुरा रहस्य : माहात्म्य खण्ड -- अध्याय ७-१५ ।
५. उपर्युक्त -- माहात्म्य खण्ड -- अध्याय १२; १-१२ ।

इस ग्रंथ में लक्ष्मी के युद्ध का विवरण भी प्राप्त होता है[1] और इनकी देवताओं पर विजय होने के पश्चात् ब्रह्मा इत्यादि देवताओं को इनकी स्तुति करते भी हम यहाँ पाते हैं--

जय लक्ष्मि महादेवि जय सम्पदधीश्वरि।
जय पद्मालये मातर्जय नारायणप्रिये जय।...इत्यादि
पद्मास्ये पद्मनिलये पद्मकिञ्जल्कवर्णिनि।
पद्मप्रिये पद्मपदे नारायणि नमोऽस्तु ते ।।[2]

लक्ष्मी के पद्मा नदी के रूप में सरस्वती के शाप के कारण अवतरित होने की कथा भी यहाँ मिलती है[3] और इनके आवाहन का मन्त्र भी।[4] तारक के द्वारा लक्ष्मी की प्राप्ति के प्रयत्न की, तथा लक्ष्मी और तारक के युद्ध की कथाएँ यहाँ मिलती हैं[5]।

सौन्दर्यलहरी में श्री विद्या का विवरण प्राप्त होता है। यह स्वरूप महात्रिपुर सुन्दरी का है। श्री-विद्या को चन्द्रकला विद्या भी कहते हैं, क्योंकि चन्द्रमा में सोलह कलाएँ हैं उसी प्रकार इनमें भी सोलह नित्य कलाएँ हैं तथा सोलह अक्षर हैं। यहाँ यन्त्र और जप की विधि मिलती है।[6] श्रीविद्या के दो स्वरूप कहे गये हैं, हादि और कादि। हादि विद्या मोक्षदायिका है और कादि विद्या भोग या सम्पदा-प्रदायिनी है। कादि विद्या सपर्या-पद्धति, श्री चक्र पूजन, न्यास, बहिरनुष्ठान, जप और होम इत्यादि से संयुक्त है। हादि को केवल मन्त्र और जप की आवश्यकता है। मंत्र के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है और शक्ति के जागरण से आत्म-ज्ञान का उदय होता है। इस कारण मन्त्र योग को महायोग कहते हैं, इत्यादि। कादि विद्या का श्लोक यह है--

स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमादौ तव तनो
र्निधायाङ्के नित्यं निरवधिमहाभोगरसिकाः।
भजन्ति त्वां चिन्तामणिगुणनिबद्धाक्षवलयाः
शिवाग्नौ जुह्वन्तः सुरभिघृतधाराहुतिशतैः ।।

सौन्दर्यलहरी में श्रीचक्र बनाने की विधि भी दी है। यह यों है--

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि
प्रभिन्नाभिः शंभोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः।
चतुश्चत्वारिंशद्वसुदलकलाभिस्त्रिवलय---
त्रिरेखाभिः सार्धं तव शरणकोणाः परिणताः ।।[7]

अर्थात् चार श्रीकण्ठ और पाँच शिवयुवतियाँ, इन नौ मूल प्रकृतियों के रहने से तैंतालीस त्रिकोण बनते हैं। एक शम्भु का बिन्दु स्थान होता है तथा तीन वृत्तों से युक्त तथा दो रेखाओं पर आठ और सोलह कमल बनते हैं (फलक २२)। यह सोलह की संख्या लक्ष्मी से विशेष रूप से सम्बन्धित ज्ञात होती है।

---

१. उपर्युक्त -- अध्याय २१।
२. उपर्युक्त -- अध्याय २१; ७८-८२।
३. उपर्युक्त -- अध्याय २२; ११-१४।
४. उपर्युक्त -- अध्याय २४; ५०-५३।
५. उपर्युक्त -- अध्याय २७-२५-४६।
६. सौन्दर्य लहरी -- श्लोक ३२, ३३।
७. उपर्युक्त -- श्लोक ११।

विष्णु यामल, लक्ष्मी यामल तथा लक्ष्मी मत में उपर्युक्त लक्ष्मी के स्वरूपों से कोई भिन्न स्वरूप नहीं मिलता।

इन तन्त्रों को देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि श्री शंकराचार्य ने बौद्धों के वज्रयान इत्यादि पर जनता की श्रद्धा देखकर उनका परिष्कार करके अपने हिन्दू धर्म के अनुरूप बनाया और उसकी एक विचारधारा बनायी। प्राचीन जादू-टोना जिसका कुछ स्वरूप हमें अथर्ववेद में मिलता है, उसे वहीं छोड़ दिया। इस कारण इस आठवीं शताब्दी वाले तन्त्र तथा प्राचीन आदिवासियों में प्रचलित क्रियाओं में विशेष सामंजस्य दृष्टिगोचर नहीं होता। यों यक्षिणी तन्त्र वीनाख्या में मिलता है तथा कुल चूड़ामणि में मारण, उच्चाटन इत्यादि की भी प्रक्रिया प्राप्त होती है, जिसका सम्बन्ध जन-साधारण में प्रचलित झाड़ने-फूँकने से और वीर और यक्ष पूजा से है।

ब्रह्म यामल तथा पिंगल मत में, जिसकी हस्तलिखित प्रतियाँ नेपाल दरबार के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं[1], देवी-देवताओं की प्रतिमाओं की मान्यताएँ प्राप्त होती हैं। इनमें देवियों की मूर्तियों में महालक्ष्मी की भी मूर्ति प्राप्त होती है[2]। इनकी मूर्ति अष्ट ताल की बनाने का विधान है। इन ग्रंथों में एक ताल की नाप बारह अंगुल निर्धारित है। इस प्रकार आठ ताल का अर्थ हुआ ९६ अंगुल। इस आधार पर दिव्य नारियों की मूर्तियों के शरीर का प्रमाण इस प्रकार मिलता है : दोनों चरणों की लम्बाई एड़ी से अंगूठे तक ग्यारह अंगुल बतायी गयी है (६ कला), चरणों की मोटाई चार अंगुल (२ कला), अंगूठे की लम्बाई छब्बीस यव (डेढ़ कला में दो यव कम), मोटाई ६ यव (½ कला में दो यव कम), अंगूठे की बगल की उँगली की लम्बाई छब्बीस यव अर्थात् वह अँगूठे से बाहर निकली रहनी चाहिये। यह सामुद्रिक लक्षण सौभाग्यशालिनी के लक्षणों में एक माना जाता है। इस अँगुली की मोटाई ६ यव, उसके बगल की दूसरी अँगुली चौदह यव लम्बी और चौथी बारह यव। इनके दोनों अँगुलियों की मोटाई ६ यव होनी चाहिए।[3] इन अँगुलियों के जोड़ प्रत्येक दो यव चौड़े होने चाहिए, इन्हें कलापिका कहते हैं। नितम्ब चौंतीस अंगुल (१७ कला) तथा कटि चौदह अंगुल अर्थात् सात कला तथा नाभि प्रदेश दो अंगुल (१ कला), नाभि के ऊपर की त्रिवली का पहिला भाग दो अंगुल (१ कला), दूसरा चौदह यव (एक कला में दो यव कम) तथा तीसरा दो अंगुल (१कला) होना चाहिए। स्तनों की चौड़ाई १३ अंगुल (साढ़े छः कला) तथा स्तनों से गले तक के भाग के बीच का अंतर दस अंगुल (५ कला) रखना चाहिए। छातीं की बाहुओं को लिये हुए चौड़ाई बाईस अंगुल होनी चाहिए (११ कला)। बाहुओं की चौड़ाई ४ अंगुल तथा ग्रीवा की ५ अंगुल होनी चाहिए। इन देवस्त्रियों के ऊपरी भाग कदाचित् देवताओं की भाँति बनाने का निर्देश है। देवताओं के चेहरे की नाप ठुड्डी से मस्तक तक चौदह अंगुल बनायी जाती थी तथा कान से कान तक चौड़ाई सोलह अंगुल रहती थी, ललाट चार अंगुल ऊँचा, मस्तक दो अंगुल, नाक चार अंगुल, चिबुक दो अंगुल ऊँचा, मुँह दो अंगुल चौड़ा, आँख की लम्बाई एक अंगुल, चौड़ाई दो अंगुल, आँख और बरौनी की लम्बाई दो अंगुल तथा चौड़ाई दो यव। आँख और बरौनी के अन्दर का छेद तीन यव, मणि पाँच यव लम्बी, नीचे का लटकन पाँच यव मोटा, मुँह की फैलावट चार अंगुल तथा ग्रीवा पाँच अंगुल लम्बी और ६ अंगुल मोटी होनी चाहिए। बाहु कन्धे से कुहनी (कूबर) तक १८ अंगुल, कुहनी दो अंगुल, कुहनी से मणिबन्ध तक १८ अंगुल, मणिबन्ध से अँगुलियों के अन्त तक चौदह अंगुल, अंगूठा जोड़ से अन्त तक सात अंगुल, तर्जनी पाँच अंगुल, मध्यमा ६ अंगुल, अनामिका पाँच अंगुल तथा कनिष्ठिका चार अंगुल होनी चाहिए।।[4] इस प्रकार ब्रह्म यामल में, जो नेपाली

---

१. पी० सी० बागची —— ब्रह्मयामल तंत्र, चैप्टर ४ ए न्यु टेक्स्ट ऑन प्रतिमा लक्षण, जरनल ऑफ दी इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियण्टल आर्ट, दिसम्बर १९३५, खण्ड ३, सं० २, पृष्ठ ९०।

२. पी० सी० बागची —— उपर्युक्त – पृष्ठ ९३।

३. पी० सी० बागची —— उपर्युक्त – पृष्ठ ९७।

४. वही —— उपर्युक्त – पृष्ठ ९८ तथा ९६।

सम्वत् १७२ अर्थात् १०५२ ईसवी का लिखा हुआ है तथा पिंगलमत जो नेपाली सम्वत् २९४ का अर्थात् ११७४ ईसवी का लिखा हुआ है, प्रतिमाओं के विधान मिलते हैं।

ब्रह्म यामल तन्त्र अध्याय ४

दिव्याधिकानां शक्तीनां लक्षणम्–[२]
पादौ तु षट्कलं ज्ञेयौ स्त्रीणां चैव वरानने।
पार्ष्णी प्रोत्थेन कर्तव्या स्त्रीणां पञ्चाङ्गुलं तथा।।
षडङ्गुलं भवेत् पुंसां पादाग्रतलकं तथा।
सप्ताङ्गुलं भवेत् पुंसां नारीणां च षडङ्गुलम्।।
अङ्गुष्ठं द्व्यङ्गुलं स्त्रीणां कलार्द्धेनाधिकं तथा।
प्रोत्थेनाङ्गुष्ठकौ कार्यौ पादूनान्तु कला प्रिये।।
तर्जनी तु कलासार्द्धं देर्घ्येण तु प्रकीर्त्तिता।
प्रोत्थेन तु कलार्द्धं स्यान् मध्यमा तु कला स्मृता।।
प्रोत्थेनार्द्धकला चैव यवूनान्तु प्रकीर्त्तिता।
अनामिकाप्रमाणं तु कलार्द्धं त्रियवाधिकम्।।
प्रोत्थनार्द्धकला चैव द्वियवूणां प्रकीर्त्तिता।
कनिष्ठिका प्रमाणेन कलार्द्धं द्वियवाधिकम्।।
द्वियवानां तथा चैव प्रोत्थेनार्द्धकला स्मृताः।
जङ्घकलापिका देवि कला सार्द्धा प्रकीर्तिता।।
परिणाहस्तथा प्रोक्ता कलासप्त न संशयः।
परिणाहे तथा पुंसां कला चैवार्द्धपञ्चमम्।।
अष्टादश कला स्त्रीणां नितम्बम् परिकीर्तितम्।
स्तनयोर्मध्यदेशन्तु कला चैवार्द्धपञ्चमम्।।
कला चत्वारि सर्वास्तु परिणाहे तयोः स्मृतः।
कण्ठस्तनान्तरं चैव कला सार्द्धम् प्रकीर्तितम्।।
सबाहुवक्षः प्रोत्थेत कला चैव चतुर्दश।
बह्वो अंशकाधस्तात् प्रोत्थेन द्विकलौ स्मृतौ।।
परिणाहे तथा देवि षट्कलौ परिकीर्त्तितौ।
पुरुषस्य तथा ध्येतौ सार्द्धं चैव कलाद्वयम्।।
कलापिकाथ प्रोत्थेन कला संपरिकीर्त्तिता।
पुंसस्तु द्विकला ज्ञेया परिणाहाः त्रिगुणाः स्मृताः।।
शेषं देवि प्रमाणं स्यात् समान नारिपुंसयोः।
हस्तस्य तु तलं चैव षट्कलम् परिकीर्त्तितम्।।
आयत्वेन य नारीणाम् प्रोत्थेन द्विकलम् भवेत्।
कलाद्वयं तथा चार्द्धमङ्गुष्ठौ परिकीर्त्तितौ।।

---

२. हरिप्रसाद शास्त्री — कैटलॉग ऑफ मैनुस्क्रिप्ट्स इन दी दरबार लाइब्रेरी, खण्ड २, पृष्ठ ६१ (नैपाल)।

यवूनां च तथा प्रोत्था स्वभानेनाङ्गुलम् भवेत् ।
तर्जनी तु भवेद्दीर्घा कलाद्वयतथार्द्धकः ।।
मध्यमा तु भवेच्चैव पादूनान्तु कलात्रयम् ।
षड्यवा तु तथा प्रोत्था भवेद्वै वङ्गुलिद्वयम् ।।
अनामिका तथा दैर्घ्यं सार्द्धं चैव कलाद्वयम् ।
चतुर्यवा भवेत् प्रोत्था कनिष्ठी द्विकला स्मृताः ।।
दैर्घ्येण प्रोत्थतश्चापि अर्द्धाङ्गुलमिता भवेत् ।
अङ्गुष्ठे मूलिमा पर्वं कला ज्ञेयं यवाधिकम् ।।
अर्द्धाङ्गुलं कला चैव द्वितीयम् पर्वकम् भवेत् ।
तृतीयं चाङ्गुलम् प्रोक्तं त्रियवा च समासतः ।।
पर्वार्द्धेन नखाः प्रोक्ताः सर्वेषां नात्र संशयः ।
तर्जन्यायान्तथाद्यन्तु सपादा तु कला स्मृता ।।
द्वियवूनां द्वितीया स्यात् कला चैव प्रकीर्त्तिता ।
तृतीयं चाङ्गुलम् प्रोक्तम् द्वियवाधिकपर्वकम् ।।
मध्यमायां तथाद्यन्तु कला च षड्यवास्तथा ।
द्वितीयन्तु भवेत् पूर्वं द्वियवूनां कला तथा ।।
तृतीयं तथा पर्वम् पादूनां तु कला भवेत् ।
अनामयां तथाद्यन्तु कला तु षड्यवास्तथा ।
द्वितीयन्तु कला प्रोक्ता तृतीयं त्रियवाधिकम् ।
अङ्गुलस्तु भवेद्देवि सप्रमाणेन नान्यथा ।।
प्रोत्थन्तु चाग्रपर्वस्यादङ्गुलीनाम् प्रकीर्तितम् ।
शेषं तु कारयेत् ज्ञानी यथाशोभं न संशयः ।।
मूले स्थूला तथा चाग्रे क्रमेणैव तु श्लक्ष्णकाः ।
अङ्गुल्यः कारयेत् सर्वान् स्वमानेन सुशोभनाम् ।।
अङ्गुष्ठस्य तथा प्रोत्थमग्रे संपरिकीर्त्तितम् ।
मूले श्लक्ष्णं प्रकर्त्तव्यं यथाशोभं प्रमाणतः ।।
पुरुषस्य तथा प्रोत्था भवेत् करतले प्रिये ।
कलात्रयं न सन्देहो दैर्घ्येण तु कलात्रयम् ।।
तथा चार्द्धकलाधिक्यं भवते नात्र संशयः ।
मुद्रामन्त्रधराः सर्वे नानाभरणभूषिताः ।।
दिव्याधिकानां संप्रोक्तम् प्रमाणं वरवर्णिनि ।

दिव्याधिक्य पुरुष मूर्तियों के समान शक्तियों के भी अवयव बनाने चाहिए—

दिव्याधिकं तु तद्रूपं तदेकादशतालकम् ।।
अङ्गुलानि भवेत्तालम् द्वादशं च प्रमाणतः ।[1]
आदावेवं समाख्यातो मस्तकश्चतुरङ्गुलम् ।।

---

१. इस प्रकार मूर्त्ति की पूरी नाप १३२ अंगुल हुई ।

चतुरङ्गुला स्मृता नासा ललाटं चतुरङ्गुलम् ।
मुखन्तु त्र्यङ्गुलम् प्रोक्तं चिबुकं द्वयङ्गुलं भवेत् ।।
सृक्किण्यां तु तथा चास्याः विस्तारं चतुरङ्गुलम् ।
नासापुटौ तथा ज्ञेयौ द्व्यङ्गुलौ तु प्रमाणतः ।।
नासाग्रं द्व्यङ्गुलम् प्रोक्तम् विस्तरेण महाशये ।
दैर्घ्ये अक्ष्णौ तथा ज्ञेयं त्र्यङ्गुलन्तु प्रमाणतः ।।
प्रोत्थन्तु द्वयङ्गुलम् प्रोक्तम् तारकश्चाङ्गुलम् भवेत् ।
अक्ष्णोः चैव पुटौ कार्यौ यथा उभौ प्रमाणतः ।।
चतुरङ्गुलौ भ्रुवौ ख्यातौ द्वयङ्गुलं तु भ्रुवोत्तरम् ।
अक्ष्णौ चैव भ्रुवौ देवि कलावार्द्धान्तिरम् भवेत् ।।
भ्रुवोपरि महादेवि ललाटं चतुरङ्गुलम् ।
कर्णयोश्च भ्रुवोश्चैव अन्तरा त्रिकलम् भवेत् ।।
सृक्किण्याक्षणन्तरं चैव सार्द्धं देवि कलाद्वयम् ।
श्रवणयोश्च पुटौ प्रोत्थम् अङ्गुलौ परिकीर्तितौ ।।
दैर्ध्येण च कला सार्द्धम् भवेच्चोपरिमात्मनि ।
प्रोत्थेन अङ्गुलं ज्ञेयं यथाशोभं व्यवस्थितम् ।।
कर्णमूलान्ततोच्छ्रया सार्द्धं चेवाङ्गुलम् भवेत् ।
दैर्ध्येण कण्ठदेशे तु भवेत् पञ्चाङ्गुलम् भवेत् ।।
चतुः कलः समाख्यातः प्रोत्थेन तु न संशयः ।
कर्णन्तु हृदयं चैव भवेदष्टकलं तथा ।।
विस्तरेण तु वक्षः स्याद्वात्रिंशांगुलकम् भवेत् ।

इस प्रकार दोनों दिव्याधिक पुरुष तथा स्त्रियों की मूर्तियाँ की इस तन्त्र की मान्यताओं को मिला देने से प्रतिमा बन जाती है । यह तन्त्र पीछे का है परन्तु ये मान्यताएँ पहिले से ही चली आ रही थीं जिन्हें यहाँ लिपि-बद्ध किया गया है ।

तन्त्रों में इस प्रकार लक्ष्मी का विष्णु की शक्ति के रूप में स्वरूप प्राप्त होता है परन्तु तन्त्ररास में भी भुवनेश्वरी को आदिशक्ति के रूप में निरूपण किया है और उनकी प्रार्थना में उनको लक्ष्मी-स्वरूपा भी कहा है और इस स्वरूप का वर्णन करते हुए यह कहा है कि इनको चार हाथी सूड़ों में घट लिये हुए अमृताभिषेक कर रहे हैं ।[1] जो गजलक्ष्मी का स्वरूप है ।[2]

लक्ष्मी का स्वरूप बौद्ध तन्त्र-ग्रंथ साधनमाला[3] में नहीं मिलता, कदाचित् इस कारण से कि इनको जैनियों ने अपना लिया था[4], परन्तु महासरस्वती का स्वरूप जो यहाँ प्राप्त होता है वह बहुत कुछ लक्ष्मी से मिलता है ।

---

१. आनन्द कुमार स्वामी -- अर्ली इण्डियन लाइकोनाग्राफी श्रीलक्ष्मी, ईस्टर्न आर्ट, पृष्ठ १८५ ।
२. ऐसा स्वरूप हमें ममल्लीपुर में गजलक्ष्मी का प्राप्त होता है जहाँ चार हाथी इनको स्नान करा रहे हैं
३. साधन माला -- विनयतोष भट्टाचार्य - गायकवाड़ आरियण्टल सीरीज, खण्ड २ ।
४. विनयतोष भट्टाचार्य -- दी इण्डियन आइकोनोग्राफी, इण्ट्रोडक्शन, पृष्ठ १ ।

"शरदिन्दुकरकरां सितकमलोपरि चन्द्रमण्डलस्थां दक्षिणकरेण वरदां वामेन सनालसितसरोज-धरां स्मेरमुखीमतिकरुणामयीं श्वेतचन्दनकुसुमवसनधराम् मुक्ताहारोपशोभितहृदयाम् नानारत्नालंकार-वतीं द्वादशवर्षाकृतिम् मुदितमुकुलदन्तुरोरस्तटीं स्फुरद्दन्तान्तगभस्ति-व्यूहावभासितलोकत्रयाम् ।"[१]

इस प्रकार तन्त्रों में लक्ष्मी का स्वरूप जो विविध तन्त्रों को देखने से मिलता है वह बहुत प्राचीन नहीं है । इससे यह अनुमान होता है कि यह विद्या लिखित रूप में आदिवासियों ने नहीं रखी थी और यदि लिखित रूप में थी भी तो आर्यों के आक्रमण के फलस्वरूप आदिवासियों की पुस्तकें नष्ट हो गईं और उस काल में अप्राप्त थीं, जब इन तन्त्रों का संग्रह हुआ ।

१. साधन माला, खण्ड १, पृष्ठ ३२९-१६२ ।

: १० :

प्रतिमा तथा तद्विषयक कुछ परम्पराएँ

प्राचीन भारतीय प्रतिमाओं में तथा पाश्चात्य मूर्तियों में कुछ भेद है। पश्चिम में मूर्तियाँ मनुष्य विशेष के रूप के आधार पर गढ़ी गयी हैं परन्तु हमारी प्रतिमाएँ यहाँ के कलाकारों के हार्दिक उद्गारों के आधार पर। हमारे शास्त्रों में वर्णित प्रतिमाओं के प्रमाणों को यदि हम देश के विभिन्न भागों से प्राप्त प्रतिमाओं के नाप से मिलायें तो कुछ ऐसा भान होगा कि शास्त्रकारों के वर्णन की एक अपनी परम्परा थी तथा प्रतिमा-निर्माण करनेवालों की दूसरी। प्रायः स्थान-स्थान पर शास्त्रों में कुछ बातें छूटी हुई-सी प्रतीत होती हैं, जो इस कला के विशेषज्ञों को ही कदाचित् ज्ञात थीं। यहाँ कलाकारों की अपनी कुछ परम्पराएँ थीं, जो शास्त्रों में नहीं मिलतीं; वे उसे परम्परागत अपने पिता-पितामह से प्राप्त करते थे। जिस प्रकार किसी देवता की अर्चना करने के हेतु यह आवश्यक था कि 'शिवो भूत्वा शिवम्' उसी प्रकार भारतीय कलाकार का भी यह विश्वास था कि जब वह स्वयं शिव हो जाय तभी शिव की प्रतिमा बना सकता है। उसे परम्परागत यही बताया जाता था कि इस भावना के उत्पन्न किये बिना वह देवता की प्रतिमा गढ़ नहीं सकता, क्योंकि भारत में प्रतिमा रूप की प्रतिकृति नहीं है, यह ध्यान में अवतरित धारणा का एक मूर्त आकार है जो एक छाया मात्र संकेत रूप है।

'ध्यान योगस्य संसिद्ध्यै प्रतिमा लक्षणम् स्मृतम्। प्रतिमाकारको मर्त्त्यो यथा ध्यानं ततो भवेत्।'[1]

भक्त को इस प्रकार की प्रतिमा के समक्ष बैठकर अपने हृदय में प्रतिमा के प्रति देवत्व की भावना उत्पन्न करनी पड़ती है। प्रतिमाओं की प्राण-प्रतिष्ठा भी इसी कारण कराई जाती है कि उस पर ध्यान केन्द्रित करने पर उस देवता की प्रथम अर्चना करनेवालों के भाव उसके पीछे आनेवाले उपासकों को भी प्राप्त हो सकें।

हिन्दु-धर्म के अनुसार प्राणी मात्र की अलग-अलग अवस्थाएँ होती हैं। इस संसार से मन हटाकर इस संसार के कर्त्ता की ओर मन ले जाने के हेतु प्रथम अवस्था में कुछ आधार की आवश्यकता होती है। वह आधार प्रतिमा द्वारा प्रदान होता है। प्रतिमा-निर्माण निराकार ब्रह्म को ध्यान द्वारा साकार करने का प्रयत्न मात्र है। प्रतिमा पर ध्यान केन्द्रित होने पर आकाररहित परमात्मा पर भी ध्यान केन्द्रित हो सकता है, यह अवस्था पहिले की अपेक्षा ऊँची अवस्था समझी जाती है। जिस प्रकार सूर्य ग्रहण नंगी आँखों से न देख सकने के कारण लोग घट में पानी भर कर सूर्य के अक्स को देख कर सूर्यग्रहण को पहिचानते हैं उसी प्रकार इस संसार के कर्त्ता की प्रतिमा का रूप देकर उस परम पिता परमात्मा को पहिचानने का प्रयत्न करते हैं। परमात्मा तो 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अनुसार यह कहना आवश्यक है कि भारत के आदिवासियों में प्रतिमा बनाने की तथा उसके सूचन की व्यवस्था थी जिसका कुछ स्वरूप हमें सिन्धु घाटी की सभ्यता से प्राप्त मुहरों पर तथा वहाँ से मिली मृण्मूर्तियों में दृष्टिगोचर होता है। आर्य मूर्तिपूजक नहीं थे जैसा उनकी ऋग्वेद में अंकित प्रार्थनाओं से ज्ञात होता है। यहाँ के निवासियों के सम्पर्क में आकर इन्होंने उनके देवी-देवताओं को अपनाया तथा उनका संस्कार करके अपने अमूर्त देवी-देवताओं में पहिले हिचकते हुए फिर खुल कर स्थान दिया। इन देवी-देवताओं की प्रतिमाओं के बनाने की कला इन्हीं आदिवासियों के आरम्भ से रही। इसे आर्यों ने नहीं सीखा। इनके गढ़ने के नियम जो हमें विविध ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं, वे

---

१. शुक्र नीतिसार – ४, १४०।

इन्हीं आदिवासियों से संकलन किये हुए प्रतीत होते हैं; क्योंकि प्रतिमाए आर्यों के आगमन के पूर्व से ही बनती रहीं। इन प्रतिमाओं के प्रति श्रद्धा, भक्ति था। इनका पूजन इत्यादि भी इन्हीं आदिवासियों की देन प्रतीत होती है, क्योंकि सर्वप्रथम सिन्धु घाटी की सभ्यता में हम उपासकों को उपासना करते हुए पाते हैं। भारत में प्रतिमाएँ तो पूजन करने के हेतु बनीं। भारत प्राचीन समय से समन्वयवादी रहा है, हम इस कारण आर्यों के आदिवासियों के देवी-देवताओं को अपना लिया और उनके साथ तद्विषयक कथा-कहानियाँ भी। ये कथाएँ भिन्न-भिन्न स्रोतों से तथा भिन्न-भिन्न रूपों में एक स्थान पर आने के कारण विरोधाभास उत्पन्न करती हैं, जैसे एक कथा में लक्ष्मी को विष्णु की पत्नी, दूसरे में इन्द्र की पत्नी तथा तीसरे में कुबेर की पत्नी इत्यादि। पीछे चलकर यह मीमांसा की गयी कि यह कल्प-भेद के कारण है। आगे चलकर गीता में कर्म मार्ग, ज्ञान मार्ग तथा भक्ति मार्ग सब का समन्वय भी इसी परम्परागत समन्वय की प्रवृत्ति के कारण प्राप्त होता है।

प्रतिमा-निर्माण के समय जब कलाकार ध्यान करता है तो उसके स्मृति-पट पर देखे हुए स्वरूपों के ध्यान आते हैं, इस कारण इन प्रतिमाओं के स्वरूप, इनकी वेष-भूषा देश काल के अनुरूप ही हो जाती है। वाराहमिहिर का यह आदेश कि 'देशानुरूप भूषण वेष अलंकार मूर्त्तिभिः कार्यो', किसी कलाकार के परम्परागत आदेश का स्वरूप है। प्रायः इन मूर्तियों के चेहरों की बनावट भी मूर्तिकार के यजमान के मुखाकृति से मिलती-जुलती ही रहती है: जैसे प्राचीन सूर्य की प्रतिमाओं में शक जाति के चेहरों का प्रदर्शन है। आज भी मारवाड़ियों द्वारा बनवाई हुई प्रतिमाओं के चेहरे मारवाड़ियों की भाँति बनते हैं।

इन मूर्तियों में हाथ के भाव को हस्त कहते हैं—जैसे दण्ड हस्त, गज हस्त, कटि हस्त इत्यादि तथा उँगलियों और हथेली के विशिष्ट भावों की मुद्रा—जैसे ज्ञान मुद्रा, व्याख्यान मुद्रा, योग मुद्रा, सूची मुद्रा, अभय मुद्रा, वरद-मुद्रा इत्यादि। हाथ के विविध आयुधों को भी हस्त अथवा पाणि कहते हैं—जैसे पद्म हस्त अथवा पद्म पाणि। इस प्रकार हस्त तथा मुद्रा उस कार्य के द्योतक हैं जो प्रतिमा कर रही है। कलाकार इन मुद्राओं के द्वारा अपने भावों को व्यक्त करता है। कुमार स्वामी का मत है कि इन मुद्राओं की भूषा का रूप बहुत प्राचीनकाल से निश्चित हो गया था। इस कारण उसको प्रत्येक दर्शक समझ लेता था।[1] इन मुद्राओं द्वारा पूरी कथा भाषा नहीं जानने-वाले दर्शक को कलाकार बता देता है। इन मुद्राओं को आर० के० पोडूवेल ने तीन सूचियों में विभक्त किया है—वैदिक, तान्त्रिक और लौकिक।[2] हाथ की मुद्राओं से भी अधिक मुख-आकृतियाँ भावों को प्रदर्शित करने में समर्थ होती हैं, जैसे ध्यान आकृति, क्रोध आकृति इत्यादि-इत्यादि। इन भावों को आँखों तथा होंठों इत्यादि द्वारा व्यक्त किया जाता है। इनका विशद विवेचन भरत नाटचशास्त्र में मिलता है। आज भी भरत नाटचम् के कलाकार इन मुखाकृतियों तथा हस्त-मुद्राओं से अपने भावों को व्यक्त करते हैं तथा विविध रसों का प्रति-पादन करते हैं।

अंग-विन्यास का रूप भी हमें भरत के नाटचशास्त्र में प्राप्त होता है, जो हमें नृत्य करती हुई प्रतिमाओं में दृष्टिगोचर होता है। इनको अंग, प्रत्यंग तथा उपांग में विभक्त किया गया है।

---

१. कुमार स्वामी तथा गोपाल कृष्णय्या – दी मिरर ऑफ जेश्चर, पृष्ठ २४। यहाँ कुमार स्वामी ने जातक नं० ५४६ का विवरण दिया, जिसमें बोधिसत्व अपनी पत्नी बनाने के हेतु उपयुक्त स्त्री चुनने के हेतु हस्त मुद्रा में बात करते थे।

२. आर० के० पोडूवेल – एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट ऑफ आर्केआलोजिकल डिपार्टमेण्ट, ट्रावनकोर स्टेट ११०७ एम० ई०, पृष्ठ ६-७ तथा प्लेट।

हस्त-मुद्राएँ, जो प्रायः प्रतिमाओं में पायी जाती हैं, अभय मुद्रा, वरद मुद्रा, ध्यान, अंजुली, नमस्कार व्याख्यान, धर्म चक्र प्रवर्तन कटि अवलम्बित, सिंहकरण, गज सूची, भूस्पर्श तथा विस्मय। एक ही मुद्रा के अलग-अलग नाम शास्त्रकारों ने दिये हैं; जैसे अभय मुद्रा को वाराहमिहिर ने 'शान्तिद' कहा है।[1] इस अभय-मुद्रा का जो विवरण वाराहमिहिर ने दिया है वह सर्वोत्तम है।

"द्रष्टुराभिमुख ऊर्ध्वांगुलिः शान्तिदः करः", यह मुद्रा प्रायः बहुत से देवी-देवताओं की प्रतिमाओं में मिलती है क्योंकि मनुष्य अपने कष्टों का निवारण देवताओं से चाहता है। लक्ष्मी तथा बुद्ध मूर्तियों में भी यह हस्तमुद्रा दृष्टिगोचर होती है। इसी प्रकार वरद मुद्रा वाराहमिहिर ने "उत्तानोधोंगुलीर्हस्तो वरदः" कह कर बताया है।[2] यह मुद्रा भी प्रायः लक्ष्मी की मूर्ति में मिलती है। नमस्कार तथा अंजुली मुद्राओं में प्रायः उपासकों के हाथों के दिखाने की प्रथा है। यह मुद्रा सबसे प्राचीन ज्ञात होती है। इस मुद्रा में प्रार्थना करते हुए एक देवी के उपासक को हम सिन्धु घाटी की सभ्यता में देखते हैं, जैसा पहिले लिखा जा चुका है। इस मुद्रा में दोनों हाथ जोड़कर अथवा अंजली बनाकर प्रार्थना की जाती है। ध्यान मुद्रा के कई प्रकार हैं-- एक पद्म आसन में स्थित होकर एक के ऊपर दूसरी हथेली रखना, दूसरे दोनों हाथों की हथेली दोनों घुटने पर रखना, तीसरे दोनों, हाथों को घुटने पर रखकर दोनों करों की तर्जनी तथा अँगूठे को मिलाकर रखना। व्याख्यान मुद्रा में भी दक्षिण कर की तर्जनी और अँगूठे को मिलाकर वक्षस्थल के समीप रखना। कटि अवलम्बित मुद्रा में हाथ बगल में लटका रहता है और हथेली कटि पर रहती है।

मूर्तियाँ तीन प्रकार के बनाई जाती हैं या तो खड़ी, या बैठी हुई या लेटी हुई। खड़ी मूर्तियों में जो भंग दिखाये जाते हैं इनके भेद हैं: समभंग, आभंग, त्रिभंग तथा अतिभंग। समभंग मूर्तियाँ सीधी खड़ी रहती तथा शरीर सब एक सिधाई में रहता है। प्रायः जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ इसी भाँति खड़ी समभंग में बनती हैं। इन्हें वे कायोत्सर्ग आसन में खड़ा करते हैं। आभंग में प्रतिमा का मस्तक से नाभि तक का भाग दक्षिणा की ओर झुका रहता है। त्रिभंग में नीचे का भाग नाभि से एड़ी तक दाहिनी ओर झुका रहता है तथा बीचका शरीर बाईं ओर और ग्रीवा तथा मस्तक दाहिनी ओर। अतिभंग त्रिभंग का उग्र रूप ही समझना चाहिये। और एक ढंग खड़े होने का है जिसमें दाहिना पैर आगे बढ़ा रहता है और बायाँ पीछे की ओर रहता है। इसे आलीढासन कहते हैं। जब बायाँ पैर आगे रहता है और दाहिना पीछे तो उसे प्रत्यालीढ आसन कहा जाता है। इस प्रकार खड़े होने पर शरीर तिक्खा रहता है जिससे चलने का भास होता है। नृत्य के विविध प्रकार के आसन होते हैं जो भरत नाट्यशास्त्र में विशेष रूप से वर्णित हैं तथा चिदम्बरम् के मन्दिर के गोपुर की भीत पर दिखाये गये हैं। बैठी हुई मूर्त्ति के आसनों के भेद अहिर्बुध्न्य संहिता में अध्याय ३० में दिये हुए हैं; उसमें ग्यारह मुख्य हैं--चक्र, पद्म, कूर्म, मायूर, कैक्कुट, वीर, स्वस्तिक, भद्र, सिंह, मुक्त तथा गोमुख। कूर्म आसन का इस संहिता में जो विवरण प्राप्त होता है उसके उसे योग आसन भी कह सकते हैं।

"गूढं निपीड्य गुल्फाभ्याम् व्युत्क्रमेण समाहिता। एतत् कूर्मासनम् प्रोक्तं योगसिद्धिकरम् परम्॥"

इस प्रकार का आसन सर्वप्रथम मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मोहर पर अंकित शिव के बैठने के ढंग में दिखाई देता है। पद्म आसन को इस संहिता में "उर्वोरुपरि संस्थाप्य उभे पदतले सुखम्" कहा है। इस आसन में सारनाथ से प्राप्त बुद्ध की मूर्ति सभी ने देखी है। कुक्कुट आसन में पद्म आसन लगाकर दोनों हाथ पृथ्वी पर रख कर शरीर के नीचे के भाग को अधड़ में उठा लिया जाता है। वीर आसन के दो भेद होते हैं, एक तो

१. वाराहमिहिर – बृहत्संहिता – अध्याय ५७ – ३३ से ३५ तक।

२. वाराहमिहिर – उपर्युक्त – अध्याय ५७, पृष्ठ ७००।

सर्वज्ञात है, जिसमें उकड़ू बैठ कर बायाँ पैर मोड़ कर नितम्ब के नीचे रख लिया जाता है और दाहिना पैर शरीर की सिधाई में मोड़कर छाती से लगा लिया जाता है। दूसरा आसन जो अहिर्बुध्न्य संहिता में वर्णित है उसमें जंघों को मिला कर बायें पैर को दाहिने जंघे पर और दाहिने पैर को बायें जंघे पर रखा जाता है।

"एकत्रीणीति संस्थाप्य पादमेकमयेतरम्।
असम पादे निवेश्यैतद् वीरासनमुदाहृतम्"।

भद्रासन में दोनों एड़ियाँ गुदा के नीचे रखकर पैर के दोनों अँगूठों को दोनों हाथों से नाभि की ओर खींच कर रखा जाता है। सिंह आसन में कूर्मासन की भाँति एक पैर को दूसरे के ऊपर रखकर हथेली को जंघों पर रखा जाता है तथा उँगलियाँ सीधी रहती हैं; पातंजल योगसूत्र का व्यास ने जो भाष्य किया है उसमें तेरह मुख्य यौगिक आसनों के नाम गिनाये हैं: पद्म आसन, वीर आसन, भद्र आसन, स्वस्तिक आसन, दण्ड आसन, शोपाशय, पर्यकं, क्रौचं निषदन, हस्तिनिषदन, उष्ट्रनिषदन, समसमस्थान, स्थिर सुख तथा यथासुख। यों प्रायः चौरासी यौगिक आसन गिनाये जाते हैं तथा आज भी योगी लोग इन्हें दिखाते हैं। मूर्तिकला में नृत्य के आसनों को छोड़कर प्रायः पद्म आसन, वीर आसन, योग आसन, सुखासन, अर्ध-पर्यकं तथा पर्यकं आसन दिखाये जाते हैं; क्योंकि और दूसरे आसनों को पत्थर में काटना उतना सरल नहीं होता। अर्ध-पर्यंक में एक पैर मुड़ा रहता है और दूसरा आसन के नीचे लटका रहता है। पर्यंक में दोनों पैर नीचे लटके रहते हैं। लेटे हुए आसनों में शयन तथा अर्ध-शयन दो भेद मिलते हैं, इन दोनों शयन और अर्ध-शयन में वाम कक्ष शयन और दक्षिण कक्ष शयन आसन मूर्तियों में प्राप्त होते हैं। देवगढ़ की विष्णु की मूर्त्ति वाम-कक्ष शयन आसन में है।[१] लक्ष्मी की मूर्ति प्रायः खड़ी अथवा अर्ध-पर्यंक या पद्म आसन में बैठी मिली है।

आसन का अर्थ कई ग्रंथकारों ने उस वस्तु का भी किया है जिस पर प्रतिमा स्थित होती है, परन्तु इसको पीठ कहना अधिक उपयुक्त होगा; जैसे पद्म पीठ, सिंह पीठ इत्यादि। इसके निर्माण का विशद विवरण मत्स्य पुराण में मिलता है।[२] इस पुराण के अनुसार पीठ को सोलह भागों में विभाजित करके इसके एक भाग को पृथ्वी में धँसा कर बनाना चाहिये। जगाती चार भाग में बनानी चाहिये। उसके ऊपर का वृत्त एक भाग ऊँचा होना चाहिये तथा उसके ऊपर पटल भी उतना ही ऊँचा होना चाहिये। पटल के ऊपर कण्ठ तीन भाग ऊँचा होना चाहिये और कण्ठ पीठ अर्थात् कण्ठ के ऊपर के भाग को भी तीन भाग ऊँचा बनाया जाना चाहिये। ऊर्ध्व पट्ट कण्ठ पीठ के ऊपर के भाग को कहते हैं। यह दो भाग ऊँचा होना चाहिये तथा उसके ऊपर की पीठिका एक भाग ऊँची हो। पिट्ठिका के समकक्ष उसी धरातल में प्रणालिका बननी चाहिये, जो कदाचित् मूर्ति के स्नान के जल को बाहर निकालने के हेतु बनाई जाती है। मत्स्य पुराण में दस प्रकार के पीठों का विवरण प्राप्त होता है, जिन पर विविध देवताओं की प्रतिमाओं के रखने का विधान है। इनके नाम हैं—साण्डिला, वापी, यक्षी, वेदी, मण्डला, पूर्ण चन्द्रा, वज्रा, पद्मा, अर्धशशी, त्रिकोण।[३] (यक्षों पर स्थित भारहुत से प्राप्त हुई प्रतिमाएँ हैं,) जो कदाचित् कुबेर तथा उनके रानी की अथवा लक्ष्मी की हो सकती हैं।)

इस प्रकार पीठों पर स्थित प्रतिमाओं के अतिरिक्त प्रतिमाओं के दिखाने का विवरण भी हमें पुराणों में मिलता है। कुछ प्रतिमाएँ उड़ती हुई दिखाई गई हैं। उनमें विशेष रूप से गन्धर्वों की मूर्तियाँ हमें मिलती हैं। विष्णु-धर्मोत्तर पुराण में विद्याधरों को इस प्रकार दिखाने का निर्देश प्राप्त होता है—

---

१. स्टेला क्रामरिश – दी आर्ट ऑफ इण्डिया थ्रू-दी एजेज – प्लेट ३२।

२. मत्स्य पुराण – अध्याय २६२ – १ से ४।

१. मत्स्य पुराण – अध्याय २६२ – ६ से १८।

"रुद्रप्रमाणाः कर्तव्यास्तथा विद्याधरा नृप ।
सपत्नीकाश्च ते कार्या माल्यालंकारधारिणः ।।
खड्गहस्ताश्च ते कार्या गगने वाथवा भुवि" ।[१]

प्राचीन मध्य युग के मूर्तिकारों में विद्याधरों को गन्धर्वों से अलग देवता के बगल में दिखाया है और गन्धर्वों को कीर्तिमुख के दोनों ओर । मानसार में विद्याधरों को उड़ते हुए ही दिखाने का निर्देश प्राप्त होता है--

"पुरतः पृष्ठपादौ च लाङ्गलाकारा वेपच ।
जान्वाश्रितौ हस्तौ गोपुरोद्धृतहस्तकौ ।।
एवं विद्याधराः प्रोक्ताः सर्वाभरणभूषिताः ।"

इन श्लोकों में पदों की स्थिति ठीक-ठीक वर्णित है । दोनों पैर मुड़े हुए, एक कुछ आगे दूसरा उससे पीछे । मानसार में गन्धर्वों को वीणा इत्यादि बजाते हुए खड़े दिखाने का निर्देश है--

"नृत्यं वा वैनवं वापि वैशाखं स्थानकं तु वा ।
गीतवीणाविधानैश्च गन्धर्वाश्चेति कथ्यते ।
चरणम् पशुसमानं चोर्ध्वकायं तु नराभम् ।।
वदनं गरुडभावम् बाहुकौ च पक्षयुक्तौ" ।

इसके अतिरिक्त और भी देवता गगनचारी मूर्तियों में दिखाये गये हैं; जैसे देवगढ़ के मन्दिर के अनन्तशयन विष्णु के ऊपर की ओर हर पार्वती, इन्द्र, कार्त्तिकेय अपने-अपने वाहनों पर अन्तरिक्ष में स्थित हैं ।

मूर्तियों को जल में अग्नि के बीच में तथा आकाश में दिखाने की विविध मान्यताएँ हमें विविध मूर्तियों में प्राप्त होती हैं । आकाश में बादल दिखाने के हेतु गोल बिन्दु बनाये गये हैं, या कुछ उठा हुआ स्थान कहीं-कहीं बिना काटे छोड़ दिया गया है, जैसा गान्धार कला में श्याम जातक की कला दिखाते हुए कारीगर ने छोड़ दिया है[३] (यह पाषाण खण्ड इण्डियन म्युजियम कलकत्ते में है) । जल की तरङ्गें दिखाने का प्रयत्न समुद्र की लहरों को उभाड़दार बड़ी घुँघराली चौड़ी रेखाओं द्वारा किया गया है । कभी-कभी इसमें साँप भी दिखाये गये हैं; जैसा प्रायः वरुण, विष्णु और लक्ष्मी की मूर्तियों के पीठ स्थान पर हमें प्राप्त होते हैं[४] । अग्नि को दिखाने के हेतु ज्वाला उभाड़दार ऊपर की ओर जाती हुई त्रिकोण चौड़ी रेखाओं से दर्शाते थे ।

विभिन्न देवताओं के आयुधों के विषय में विशिष्ट निर्देश हमें ग्रंथों में प्राप्त होते हैं; जैसे विष्णु के हाथ में शंख, चक्र, गदा, पद्म का होना आवश्यक है । कामदेव के हाथ में धनुष-बाण, इन्द्र के हाथ में अंकुश तथा वज्र, बलराम जी के हाथ में हल-मूसल[५], शिव के हाथ में त्रिशूल, परशुराम जी के हाथ में परशु तथा धनुष होना आवश्यक है । गणेश के हाथ में अंकुश का । आयुधों के साथ-साथ विशेष देवी-देवताओं के हाथ विशिष्ट वस्तुओं का का भी होना नितान्त आवश्यक है; जैसे शिव के हाथ में डमरू, सरस्वती के हाथ में वीणा तथा पुस्तक, ब्रह्मा

---

१. विष्णु धर्मोत्तर पुराण – खण्ड ३, अध्याय ४२ – ९, १० ।
२. मानसार – पृष्ठ ३७०, श्लोक ७-९ ।
३. एन० जी० मजूमदार – ए गाइड टू दी गान्धार स्कलपचर्स इन दी इण्डियन म्युजियम – भाग २, पृष्ठ १०७ ।
४. जे० एन० बैनर्जी – डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आईकोनोग्राफी – प्लेट २३–२, योगासन विष्णु मथुरा (प्राचीन मध्यकालीन) ।
५. वाराहमिहिर – बृहत्संहिता – अध्याय ५७–३६ ।

जी के हाथ में कमण्डलु तथा स्रुवा, पद्म । कुबेर की निधियों में एक निधि है इसका लक्ष्मी के हाथ में होना इनका सम्बन्ध कुबेर से दर्शाता है ।[1] कला में सर्वप्रथम लक्ष्मी को ही पद्म से सम्बन्धित किया है । पीछे चल कर और देवी-देवताओं के हाथ में भी कमल दिया गया और पीछे तो प्रायः सभी देवी-देवताओं को कमलासन पर ही बैठाया गया । लक्ष्मी के हाथ में कमल का फूल, कृष्ण के हाथ में मुरली, नारद के हाथ में वीणा । इन आयुधों तथा विशिष्ट वस्तुओं के आकार प्रकार में निरन्तर कुछ न कुछ भेद होता गया है । ये भेद देश, काल के अतिरिक्त कलाकार की प्रवृत्ति के अनुसार भी हुए हैं, जैसे चक्र के आकार में, गदा के आकार में, वज्र के आकार में ।[2] अथवा लक्ष्मी के हाथ के पद्म आकार में । इसी प्रकार सरस्वती की वीणा भी भिन्न-भिन्न प्रतिमाओं में भिन्न-भिन्न रूप की दिखायी गयी है । परन्तु इन विशिष्ट आयुधों अथवा वस्तुओं से ही आज प्राचीन प्रतिमाओं के विषय में हम कुछ कह सकते हैं कि ये अमुक देवी तथा देवता की हैं । विष्णु धर्मोत्तर पुराण में भी यही पहिचान का ढंग बताया गया है जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है ।

आयुधों इत्यादि के समान ही इन प्रतिमाओं में वाहनों का भी विशेष महत्त्व है । जैसे शिव के साथ नन्दी का, सरस्वती के साथ हंस का, विष्णु के साथ गरुड़ का, गणेश के साथ चूहे का, चण्डी के साथ सिंह का, इन्द्र के साथ ऐरावत का, कार्त्तिकेय के साथ मयूर का, लक्ष्मी के साथ गज का, गंगा के साथ मकर का, यमुना के साथ कच्छप का, कुबेर के साथ नर का, इत्यादि । लक्ष्मी के साथ दिग्गजों को रखना यह इनकी यक्ष-परम्परा का द्योतक है, क्योंकि यक्ष और यक्षिणियों के साथ जलहस्ती का सम्बन्ध है ।[3]

प्रायः देवी तथा देवताओं की प्रतिमाएँ हमारे यहाँ सर्वाभरण-भूषिता तथा वस्त्रों से आच्छादित ही दिखाई पड़ती हैं[4], विशेष रूप से लक्ष्मी । मोहनजोदड़ो से प्राप्त मुहर से लेकर जिस पर शिव अंकित हैं ।[5] आज तक सभी देवी-देवताओं के शरीर पर कुछ न कुछ आभूषण दिखाई देते हैं और लक्ष्मी के शरीर पर तो सभी आभूषण दिखाये जाते हैं । [यूनानी मूर्तियाँ शारीरिक सुन्दरता दिखाने के हेतु बनाई जाती थीं और हमारी प्रतिमाएँ भक्तों के भावों को मूर्त स्वरूप देने के हेतु । इस कारण इन दोनों में अन्तर है । इस तथ्य को न समझने के कारण ही श्री ग्रयुन वेडल महोदय ने लिखा है कि भारतीय कलाकार आभूषणों के कारण शरीर के सौन्दर्य को नहीं दिखा पाये ।[6] भारतीय तो प्राचीन समय से ही आभूषण-प्रेमी रहे हैं ।[7]]

इन आभूषणों के अलग-अलग नाम विविध ग्रंथों में मिलते हैं तथा इनके प्रत्येक काल के विशिष्ट स्वरूप भी उस काल की मूर्तियों को तथा खोदाई से प्राप्त आभूषणों को देख कर स्थिर हो सकते हैं। जैसे मस्तक के ऊपर के आभूषणों के हेतु मौली, मुकुट[8] तथा ओपश शब्द अश्वघोष में प्राप्त होते हैं । ये तीनों शब्द तीन आभूषणों के उस काल में द्योतक थे । मौली साफा की भाँति का सिर का आभूषण था जो हमें भारहुत, साँची तथा अमरा-

---

१. कुमार स्वामी – यक्षाज – खण्ड २, पृष्ठ ५७ । शतपथ (७, ४, १, ८) में पद्म पत्र की पानी पर स्थित पृथ्वी से तुलना की गयी है ।
२. नीलकण्ठ जोशी – भारतीय व्यायाम के साधन 'गदा' – आज – ३० अगस्त १९५९, पृष्ठ १३-१४ ।
३. कुमार स्वामी – यक्षाज – खण्ड २, पृष्ठ ३२ ।
४. ग्रयुन वेडेल – बुद्धिस्ट आर्ट, पृष्ठ ३१ ।
५. जे० एन० बैनर्जी – डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी – प्लेट ७, ऊपर बाईं ओर।
६. ग्रयुन वेडेल – उपर्युक्त – पृष्ठ ३१ ।
७. मेगस्थनीज के विवरण – स्ट्राबो – पृष्ठ ७०९, एरियन – इण्डिके ५-९ ।
८. अश्वघोष – बुद्ध चरित – ६-५७ ।

वती के पाषाण खण्डों पर खुदे हुए स्त्री-पुरुषों के मस्तक पर दिखाई देता है। मुकुट भी साँची में खुदे हुए इन्द्र के मस्तक पर है। ओपश शब्द बन्दी के हेतु व्यवहार में आता था और केश को ऊपर से पहिना जाता था और मस्तक के अग्र भाग से पीछे की ओर जाता था। ललाटिका शब्द पाणिनि में प्राप्त होता है।[१] यह आधुनिक बेना का प्राचीन स्वरूप है तथा स्त्रियाँ इसे ललाट पर धारण करती थीं। उसका भी प्राचीन स्वरूप हमें भारहुत की मूर्तियों के मस्तक पर प्राप्त होता है।

कान में कई प्रकार के आभूषणों के नाम प्राचीन ग्रंथों में आते हैं--ऋग्वेद में 'कर्णशोभना' शब्द मिलता है।[२] पाणिनि में कर्णिका शब्द प्राप्त होता है।[३] कर्णशोभना का आधुनिक रूप बंगाल का कानपाशा है। कर्णिका कान की तरकी की भाँति होती थी, जिसका एक स्वरूप हारिति के आभूषणों में स्पष्ट दिखाई देता है।[४] कर्णोत्पल[५] तथा कुण्डल शब्द अश्वघोष में प्राप्त होता है। कर्णोतपल पत्तियों के आकार का बना झुमके की भाँति का कान का आभूषण होता है, जो हमें कौशाम्बी से प्राप्त लक्ष्मी के कान में दिखाई देता है। कुण्डल विविध भाँति के कान से लटकते हुए आभूषण को कहते हैं। ग्रीवा के आभूषणों में गले से सटी हुई टीक को कण्ठसूत्र अश्ववोष ने नाम दिया है।[६] इससे नीचे के भाग में पहिनने के आभूषणों को रत्नावली तथा हार कहते थे, जिनमें स्तन भिन्न हार[७], हारयष्टि[८], विलम्ब हार के नाम अश्वघोष के ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। हाथ के आभूषणों में वलय, कड़ा या कंकण के स्थान पर पहिना जाता था तथा अंगद और केयूर बाहु पर पहिने जाते थे। ये नाम अश्वघोष के ग्रंथों में मिलते हैं। अंगद प्रायः गोल होता था जैसा आज का अनन्त है, परन्तु केयूर बाजू की भाँति का होता था, इसके बीच में एक टिकड़ा लगा रहता था। करधनी का नाम रसना अश्वघोष में मिलता है। इसके विविध नाम तथा अलग-अलग करधनियों के विवरण भरत नाटचशास्त्र में भी प्राप्त होते हैं (अध्याय २७)। पैर में नूपुर पहिना जाता था। एक प्रकार के उमेठुआँ पायजेब को योक्त्र नूपुर कहते थे।[९] इस प्रकार के आभूषणों की प्राचीन सूची भरत के नाटचशास्त्र में मिलती है।[१०] अँगूठी के हेतु अंगुलीय तथा मुद्रा इत्यादि नाम भरतनाटच शास्त्र में मिलते हैं।[११] इसका स्वरूप हमें भारहुत के कुबेर के दाहिने हाथ की उँगली पर दिखाई देता है।

प्रायः प्राचीन भारतीय प्रतिमाओं पर वस्त्र का अभाव है केवल अधोवस्त्र तथा उष्णीष दिखाये गये हैं। कई प्रतिमाओं पर उत्तरीय भी मिलता है। देवियों की प्रतिमाओं पर स्तन पट भी दिखाई देता है।

---

१. डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल – पाणिनि कालीन भारतवर्ष, पृष्ठ २२७।
२. कीथ एण्ड मैकडोनल – वैदिक इण्डेक्स, खण्ड १, पृष्ठ १४०।
३. डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल – उपर्युक्त – पृष्ठ २२७।
४. गोविन्दचन्द्र – दी पारयर ऑफ दी बुद्धिष्ट गाडेसेज ऑफ कोशाम्बी, मंजारी – मई १९५९ – प्लेट ४ सी।
५. अश्वघोष – सौन्दरानन्द – ४ – १६। कर्णोत्पल – कौशाम्बी से प्राप्त लक्ष्मी के कान में – फलक १२।
६. वही – बुद्धचरित – ५-५८।
७. वही – सौन्दरानन्द – १०-३७।
८. वही – उपर्युक्त – ४-१९।
९. वही – उपर्युक्त – अध्याय ४, १७।
१०. भरत नाटचशास्त्र – अध्याय २३।
११. भरत नाटचशास्त्र – २३, १७।

भारत प्रायः उष्ण देश होने के कारण यहाँ जनसाधारण बहुत वस्त्र नहीं पहिनते थे। इस कारण भी देवी-देवताओं की मूर्तियों पर बहुत से वस्त्र नहीं मिलते। यों भी प्रायः हमारे यहाँ वस्त्र देवी-देवताओं को ऊपर से ही पहिनाये जाते हैं।

कुछ ग्रंथों में, जैसे भरत नाट्यशास्त्र, मत्स्य पुराण, शुक्र नीतिसार, प्रतिमानलक्षणम्, वाराहमिहिर की बृहत् संहिता, शिल्प रत्न और मानसार में, प्रतिमाओं के नाप-जोख इत्यादि के विषय में उस काल की बहुत-सी सामग्री मिलती है, परन्तु यह ध्यान रखने योग्य बात है कि प्रायः प्रतिमा के गढ़नेवाले आज भी निरक्षर पंडित हैं, परन्तु फिर भी बड़ी सुन्दर-सुन्दर मूर्त्तियाँ बनाते हैं। इससे यह अनुमान करना कुछ अनुचित न होगा कि आदिवासियों के आत्मज मूर्तियों के कलाकार इतने बड़े संस्कृतज्ञ नहीं रहे होंगे कि शास्त्रों की सहायता लेकर प्रतिमा गढ़ते। पहिले तो इनको संस्कृत भाषा आर्यों से प्राप्त नहीं होती थी जिससे ये इन ग्रंथों को पढ़ते, क्योंकि ये अनार्य थे। दूसरे इनके हृदय में संस्कृत के प्रति द्वेष का भी होना अनिवार्य था और सिन्धु घाटी की सभ्यता के मूर्तिकारों के पास कोई संस्कृत का ग्रंथ होना सम्भव नहीं है। इससे यह प्रायः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये मान्यताएँ शास्त्रों में ही बनी रहीं और इनको कभी व्यावहारिक रूप मूर्तिकारों ने नहीं प्रदान किया। यों भी मूर्तिकार या चित्रकार अपने को शास्त्रीय बन्धनों में बाँधकर कोई उत्कृष्ट रूप उत्पन्न नहीं कर सकता। जे० एन० बैनर्जी ने बहुत श्रम करके इन नामों से मूर्तियों के नामों को मिलाया है परन्तु यह कार्य स्तुत्य होने पर भी बहुत उपयोगी नहीं सिद्ध हो सकता[1], क्योंकि कला का कविता की भाँति सृजन सदैव पहिले होता है और शास्त्र का व्याकरण की भाँति पीछे।

ऐसा अनुमान है कि शिल्पियों की अपनी मान्यताएँ थीं, जो पिता से पुत्र को प्राप्त होती थीं। इन मान्यताओं के विषय में ऋषियों ने जो पता लगाया। उन्होंने उसे लिपिबद्ध किया। इन लिपिबद्ध मान्यताओं की परम्परा अलग से चल पड़ी। इस प्रकार भारत में दो प्रकार की मान्यताएँ चलीं—एक शास्त्रज्ञों की तथा दूसरी शिल्पियों की। शिल्पियों में भी अलग-अलग घराने थे, जिनकी अपनी अलग-अलग मान्यताएँ थीं, फिर भी कलाकारों को स्वरूप के सृजन में बराबर छूट रही।

शुक्रनीतिसार के अनुसार (जो प्राचीन भारत के मध्ययुग का ग्रन्थ माना जाता है) सभी शिल्पी सुन्दर प्रतिमाएँ नहीं बना सकते थे। इस कारण "शास्त्रमान्येन यो रमयः स रमयो नान्येवहि"। परन्तु इसमें सन्देह है कि शिल्पी इन ग्रंथों का सहारा लेते थे। इसी प्रकार की मान्यता जो मिश्र में भी उसके अनुसार एक खड़ी मूर्ति को १८ चतुष्कोण में बाँटते थे। ये चतुष्कोण आँख के ऊपर की रेखा भ्रू के पास समाप्त हो जाते थे। उनके ऊपर के भाग को कलाकार चाहे जैसा बनाता था।[2] यूनान में भी शरीर की नाप की अपनी मान्यताएँ थीं, जिनका पालन शिल्पी कठोरता से करते थे। ये मान्यताएँ पीछे चलकर लिपिबद्ध कर ली गईं।[3] यूनान के इन कलाकारों ने मनुष्यों की ही मूर्त्तियाँ नहीं बनाईं, अपितु देवताओं की भी जैसे जीसस, हेरा, अफ्रोडाइट इत्यादि। परन्तु इनको बनाने में इन्होंने वे ही मान्यताएँ थीं जो यूनान के पहलवानों के शरीर की इन्होंने प्रत्यक्ष रूप से पाई थीं। हमारे यहाँ उपासकों की मूर्तियाँ बनीं, परन्तु उन मूर्तियों में तथा देव-मूर्तियों में बराबर भेद रहा। प्रतिमाओं के दानकर्त्ताओं की मूर्तियाँ जब भी कलाकारों ने बनाने का प्रयत्न किया तो उनकी आकृतियों में सादृश्य लाने का भी प्रयत्न किया है, जैसा हम कार्ली की गुफा के बाहर बने हुए राजा तथा रानियों की

---

१. जे० एन० बैनर्जी – डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी–अपेण्डिक्स 'सी'।

२. जीन कापार्ट – ईजिप्शियन आर्ट – पृष्ठ १५६।

३. जे० एन० बैनर्जी – उपर्युक्त–पृष्ठ ३०८, ३०९।

मुखाकृति में देखते हैं। परन्तु देवी-देवताओं की मुखाकृतियाँ तो एक निश्चित मान्यता के आधार पर बनती रहीं[१], चाहे वे मनुष्य की मुखाकृतियों से ही मिलती हों, क्योंकि मनुष्य ने अपने ईश्वर को अपने ही स्वरूप के अनुरूप निर्माण किया, चाहे वह यूनानी हो या मिश्री हो, अथवा भारतीय; परन्तु भारत में अपने देवी-देवता की प्रतिमा बनाते समय उसने कुछ विशिष्ट चिह्नों का उपयोग किया, जैसे पद्म दलायताक्षी, वृषभस्कन्ध, केहरि-कदि, प्रलम्ब बाहु इत्यादि। हथेली में सामुद्रिक रेखायें भी वे ही दिखाई गयीं जो ज्योतिष के विचार से विशिष्ट पुरुषों के हाथों में पायी जानी चाहिये। पद तल में अंकुश, पताका, चक्र इत्यादि दिखाने का भी शिल्पी ने प्रयत्न किया है। केवल उन्हीं देवी और देवता का विकृत रूप इसने उपस्थित किया जिनसे मनुष्य भय खाते थे।

भारत में पुरुष तथा स्त्रियों को चार-चार श्रेणियों में विभक्त करने का प्रयत्न वात्स्यायन के कामसूत्र में मिलता है, परन्तु ये मान्यताएँ प्रायः आर्य नागरिकों के लिए ठीक समझी गयी थीं। महाभारत के शान्ति पर्व में भीष्म द्वारा वर्णित मनुष्यों की आकृति इत्यादि के विविध भेदों को देखने से ऐसा पता चलता है कि उस काल तक भारत में विभिन्न जातियों का मिश्रण हो चुका था और उनके शरीर की नाप अलग-अलग दृष्टिगोचर होने लगी थी। इस कारण बृहत् संहिता में वर्णित पाँच प्रकार के मनुष्य--यथा हंस, शश, रुचक, भद्र तथा मालव्य के शरीरों की नाप[२] केवल परिकल्पित ज्ञात होती है, क्योंकि इस प्रकार का वर्गीकरण तो एक ही जाति के पुरुषों में सम्भव है। इससे मूर्तियों का सम्बन्ध जोड़ना भ्रामक होगा, जैसा जे० एन० बैनर्जी ने करने का प्रयत्न किया है।[३] प्रायः यह धारणा कि मनुष्य पहिले बहुत दीर्घकाय होता था, अब छोटा होता जाता है--जैसा मत्स्य पुराण में लिखा है कि सतयुग में देवता, राक्षस तथा मनुष्य की लम्बाई ९६ अंगुल होती थी, परन्तु कलियुग में केवल अंगुल होती है[४], भ्रामक है। परन्तु इसके साथ यह भी मानना ही पड़ेगा कि हमारे शिल्पियों ने प्रायः अनादि काल से अपने देवी-देवताओं को मनुष्यों से दीर्घकाय बनाया है जिसमें हमारा ध्यान उन विशिष्ट प्रतिमाओं पर ही केन्द्रित हो, जैसा अन्तर हम अनन्तशायी देवगढ़ के विष्णु के उपासकों तथा विष्णु की प्रतिमा में पाते हैं[५], या पुरी के कार्तिकेय तथा उनकी पारषद मंडली में देखते हैं।[६] यह अन्तर थोड़ा नहीं, बहुत है।

वाराहमिहिर के अनुसार दिव्य प्रतिमाओं के हेतु--

"मालव्यो नागवासः समभुजयुगलो जानुसम्प्राप्तहस्ता
मांसैः पूर्णाङ्गसन्धिः समरुचिरतनुर्मध्यभागे कृशश्च।
पञ्चाप्तौ नोर्ध्वमास्यं श्रुतिविवरमपि त्र्यङ्गुलोनाम च।
त्र्यग् दीप्तीक्षं सत्कपोलं समसितदशनं नातिमांसाधरोष्ठम्॥"

वैश्वानस आगम के अनुसार छः प्रकार की नापें हैं--मान, उपमान, प्रमाण, उन्मान, परिमाण तथा लम्बमान। मान शरीर की ऊँचाई का, प्रमाण है एक ही तल की चौड़ाई की उनमान मोटाई को परिमाण चारों ओर की, उपमान है भीतर की गहराई की, लम्बमान सूत डाल कर ऊपर से नीचे तक प्रतिमा की विविध नाप है। 'मान',

---

४. ए० एन० टैगोर – सम नोट्स ऑन इण्डियन आर्टिस्टिक अनाटोमी, पृष्ठ ३।
१. वाराहमिहिर – बृहत् संहिता – अध्याय ६८ – १, २, ७।
२. जे० एन० बैनर्जी – डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृष्ठ ३११-३१२।
३. मत्स्य पुराण – अध्याय १४५। फ्रांस के ग्रिमाल्डी गुफा का मनुष्य जो प्रायः आठ हजार वर्ष प्राचीन है, उसकी लम्बाई ५ '४' से अधिक नहीं है।
४. जे० एन० बैनर्जी – उपर्युक्त – प्लेट २२–२।
५. वही –– उपर्युक्त – प्लेट १७–१।

'उनमान' तथा 'प्रमाण' शब्द महावीर के शरीर के नाम के विवरण में जैन कल्पसूत्र में भी मिलते आते हैं[1]। अंगुल तथा ताल शब्द भी संहिताओं में मिलते हैं। अंगुल शब्द मूर्ति-कला के कार्य में सब से छोटी माप है[2]। यह शब्द शुलभसूत्र में भी वेदी बनाने के माप के सिलसिले में व्यवहार हुआ है। बृहत् संहिता के अनुसार आठ यव की चौड़ाई एक अंगुल के बराबर होती है[3]। यही माप भरत नाट्यशास्त्र में भी मिलती है। इस कारण इस माप को कपोल कल्पित नहीं मानना चाहिये। आज भी अंगुली की नाप, अंगुली के सिरे से लेकर अंगुली के एक पोर तक मानी जाती है। इसको आठ यव की चौड़ाई के बराबर मान कर चलना कुछ अनुचित नहीं है। श्री जे० एन० बैनर्जी का मत है कि इस प्रकार रखे हुए जौ की चौड़ाई बहुत हो जाती है[4], कुछ उचित नहीं जँचता। पीछे के शास्त्रकारों में मानांगुल, मात्रांकुल, देहलब्दांगुल इत्यादि शब्दों को रचकर अपनी बात को पुष्ट करने का उद्योग किया है। शुक्र नीतिसार में अंगुली की माप अपनी मुट्ठी का चौथा भाग कहा गया है[5], "स्वस्वमुष्टेश्चतुर्थांशो ह्यङ्गुलं परिकीर्तितम्"। प्रतिभामान लक्षणम् में अंगुली का माप बनाने में मुष्टि के स्थान पर पल्लव शब्द का व्यवहार किया गया है, "पल्लवानां चतुर्भागो मापनाङ्गुलिका स्मृता"। पल्लव का अर्थ हाथ की हथेली से भी किया गया है, परन्तु यह स्पष्ट नहीं होता कि किसकी मुट्ठी, किसके हाथ की हथेली और फिर प्रत्येक मनुष्य की हथेली तथा मुट्ठी के नाप में भी अंतर होता है, इस कारण भी यह प्रमाण सर्व उपयोगी नहीं हो सकता। लब्धांगुली का प्रमाण इस प्रकार प्राप्त होता है कि जिस पदार्थ की मूर्ति बनाना है उस लकड़ी अथवा पत्थर की ऊँचाई को बारह बराबर भाग में बाँट कर उसके एक भाग को लेकर फिर उसके नौ भाग करके एक भाग की अँगुली का माप मान लिया जाय। इस मान्यता से अलग-अलग ऊँचाई के पत्थर और लकड़ी के लिये अलग-अलग माप निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती और आवश्यकतानुसार छोटी-बड़ी मूर्तियों का बनाना कठिन नहीं होता। जे० एन० बैनर्जी का मत है कि १०८ अँगुलियों की मूर्तियाँ प्रायः बनती थीं। ताल मूर्ति के विभाग को कहते थे। इस कारण इन १०८ अँगुली की मूर्तियों को नव ताल मूर्तियाँ कहते थे। वाराहमिहिर के अनुसार एक हाथ की मूर्त्ति शुभ है, दो हाथ की मूर्ति से धन-धान्य का लाभ होता है।[6] मूर्ति की ऊँचाई मूर्ति के आसन से दूनी होनी चाहिये। पीठिका द्वार का एक-तिहाई से एक बटे आठवाँ भाग कम होगा अर्थात् द्वार को आठ भागों में बाँट कर उसका एक भाग लेकर इस एक-तिहाई भाग में कम करना है; जैसे द्वार यदि ६ फुट का है तो आसन दो फुट में से ८ इंच कम अर्थात् १.३'' का होना चाहिये और प्रतिमा २ फुट ६ इंच की होगी। मत्स्य पुराण के अनुसार घर में स्थापित करने की मूर्ति एक अँगूठे से लेकर बित्ते भर से अधिक बड़ी नहीं होनी चाहिये[7] तथा मन्दिरों में स्थापित होने वाली मूर्तियाँ १६ अंगुल से अधिक बड़ी नहीं होनी चाहिये।[7] प्रवेश द्वार की ऊँचाई को आठ भाग में विभाजित करके उसके एक भाग को छोड़कर जो शेष बचे उसके दो भाग के नाप की जितनी लम्बाई की प्रतिमा बनानी चाहिये। बचे हुए भाग में तीन भाग करके एक भाग की ऊँचाई की पीठिका बनाई जाय। इस प्रकार यदि ६ फुट का द्वार हुआ तो

---

१. जैकोबी — सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट सीरीज – खण्ड २२, पृष्ठ २२१।
२. जे० एन० बैनर्जी — उपर्युक्त – पृष्ठ ३१६।
३. वाराहमिहिर — अध्याय ५७ – १७२।
४. जे० एन० बैनर्जी — उपर्युक्त – पृष्ठ ३१७।
५. शुक्र नीति शास्त्र — अध्याय ४ खण्ड ४-८२।
६. बृहत् संहिता — अध्याय – ५७–१९।
७. मत्स्य पुराण — अध्याय – २५८–२२, २३।

उसको ८ से विभक्त करने से ९ इंच का एक भाग हुआ। ९'' छोड़कर ६४'' बचा, इसका दो भाग ४२.$\frac{२}{३}$ इंच हुआ, इतनी ऊँचाई की प्रतिमा होनी चाहिये। इसमें से बचा २१.$\frac{१}{३}$ इंच, इसका $\frac{१}{३}$ भाग हुआ ७.$\frac{१}{९}$ इंच, इतनी ऊँचाई की पीठिका होनी चाहिये।[१] यह पीठिका कई प्रकार की होती है स्थण्डिला, वापी, यक्षी, वेदी, मण्डला, पूर्ण चन्द्रा, वज्रा, पद्म, अर्द्धशशि तथा त्रिकोण। हिसाब से प्रतिमा को नव भाग में विभक्त कर के एक भाग में मुख, चार अंगुल में ग्रीवा, एक भाग में हृदय, एक भाग में नाभि, नाभि के नीचे एक भाग में लिंग, दो भाग में जंघा, चार अंगुल के, घुटने पैर तथा चौदह अंगुल की मौली होनी चाहिये।[२] (अब इस नाप में दो हिसाब होने के कारण कुछ गड़बड़ी पड़ती है, एक ओर तो भाग का हिसाब दूसरी ओर अंगुल का चौड़ाई का विवरण देते हुए मत्स्य पुराण में लिखा है कि चार अंगुल का ऊँचा ललाट तथा चार ही अंगुल ऊँची नासिका, दो अंगुल ऊँची ठुड्ढी, दो अंगुल ऊँचे ओठ, एक अंगुल ऊँची आँख तथा चार अंगुल विस्तार का कान होना चाहिये। आठ अंगुल चौड़ा ललाट होना चाहिये तथा उतने ही विस्तार की भौंहें होनी चाहिए। भौंहों की रेखाएँ आधी अँगुली मोटी होनी चाहिये, जो धनुष की भाँति वक्र होनी चाहिये। दोनों भौंहों के अग्र भाग ऊपर की ओर उठे रहने चाहिये : दोनों भौंहों के बीच दो अंगुल का अन्तर होना चाहिये। आँख की, नासिका से कनपटी तक, दो अंगुल लम्बाई होनी चाहिये तथा उसके मध्य भाग में ऊँचाई होनी चाहिये, जहाँ (पुतली बनानी चाहिये)। तारे के आधे भाग से पँचगुनी दृष्टि बनानी चाहिये। नाक दो अंगुल चौड़ी होनी चाहिये। उसके आगे के दो छिद्र आधे आधे अँगुली के होने चाहिये तथा आगे की ओर झुके रहने चाहिये। कपोल दो अंगुल चौड़े हों तथा कनपटी तक फैले हुए हों। अधरोष्ठ की चौड़ाई आधी-आधी अँगुली होनी चाहिये। इसके बीच के भाग को ज्योति की भाँति बनाना चाहिये। इनको कान के मूल से छः अंगुल दूर बनाना चाहिये। कानों की बनावट भौंह के आकार की होनी चाहिये। कानों के बगल में दो अंगुल का रिक्त स्थान छोड़ना चाहिये। ललाट प्रदेश के पीछे मस्तक के आधे भाग को १८ अंगुल का बनाना चाहिये। इस प्रकार सारे मस्तक की गोलाई ३६ अंगुल होनी चाहिये तथा केश समेत ४२ अंगुल। ग्रीवा की चौड़ाई ८ अंगुल होनी चाहिये। स्तन और ग्रीवा का अन्तर एक ताल बताया गया है (एक ताल अँगूठे से लेकर मध्यमा अंगुली तक) दोनों स्तनों का निर्माण १२ अंगुल में होना चाहिये, दोनों स्तनों के मण्डल दो-दो अंगुली के होने चाहिये। घुण्डी एक जौ के बराबर होनी चाहिये। वक्षस्थल की चौड़ाई दो ताल की, दोनों कक्ष प्रदेश ६ अंगुल जिन्हें बाहुओं के मूल में तथा स्तनों की सिधाई में बनाना चाहिये। दोनों पैर चौदह अंगुल के तथा दोनों अँगूठे दो या तीन अंगुल के होने चाहिये। अँगूठे का अग्रभाग उन्नत रहना चाहिये तथा पैर का विस्तार पाँच अंगुल का होना चाहिये। प्रदेशनी अंगुली अँगूठे की भाँति ही लम्बी बननी चाहिये। इस अँगुली से मध्यमा अँगुली $१\frac{१}{९}$ भाग लम्बी होगी। अनामिका मध्यमा से $\frac{१}{९}$ भाग छोटी होगी। इसी प्रकार कनिष्ठिका अनामिका से $\frac{१}{९}$ भाग छोटी बननी चाहिये। पैर की गाँठ दो अँगुली में तथा दोनों एड़ियाँ दो-दो अँगुली में होनी चाहिये। अँगूठे में दो पोर बनाना चाहिये। अँगूठे की चौड़ाई एक अंगुल की लम्बाई दो अंगुल, प्रदेशनी आधे अंगुल चौड़ी और तीन अंगुल मोटी होनी चाहिये; इसी प्रमाण से दूसरी अँगुलियाँ भी बननी चाहिये।[३] इसी प्रकार मत्स्य पुराण में विभिन्न अंगों की मोटाई भी दी हुई है।[४] इस विवरण के अनुसार देवताओं से देवी-प्रतिमाओं को

---

१. वही — अध्याय – २५८–२५ – पट्टिका – वही – २६२-६, ७।

२. वही — अध्याय – २५८–२६, २७, २८, २९।

३. वही — अध्याय २५८ – ३१-५१।

४. वही — अध्याय २५८ – ५३-६९।

जैसे लक्ष्मी की प्रतिमा को कुछ दुर्बल बनाना चाहिये, परन्तु इनके स्तन, ऊरु तथा जंघे देव-प्रतिमाओं से अधिक स्थूल रखने का निर्देश मिलता है। इनके उदर प्रदेश की लम्बाई १४ अंगुल होगी। भुजाएँ मृदुल होनी चाहिये अर्थात् उनमें मुष्टिका उभड़ी हुई न होनी चाहिये, मुखाकृति अपेक्षाकृत लम्बी बनानी चाहिये। अलकावली लम्बी रहनी चाहिये। नासिका, ग्रीवा एवं ललाट ३½ अंगुल ऊँचे रखना चाहिये। अधर का विस्तार आधे अंगुल का होना चाहिये। दोनों नेत्र अधर से चार गुने अधिक लम्बे होने चाहिये एवं ग्रीवा की एक-एक बलि आधा अंगुल ऊँची होनी चाहिये। इन प्रतिमाओं को आभूषणों से सुसज्जित करना चाहिये।[१] विशेष रूप से लक्ष्मी की कुछ इसी से मिलती-जुलती मान्यताएँ बृहत् संहिता के ५७ वें अध्याय में प्राप्त होती हैं तथा प्रतिमा मान-लक्षण में भी।[२]

प्रायः सभी देव-प्रतिमाएँ हमारे यहाँ प्रसन्न वदन बनाई जाती हैं। लक्ष्मी तो विशेष रूप से; क्योंकि हमारे यहाँ कहा गया है कि "प्रसन्न वदनम् ध्यायेत सर्वविघ्नोपशान्तये'। आँखें प्रायः सामने देखती हुई रहती हैं[३], केवल ध्यान मुद्रा में आँखें नासाग्र पर केन्द्रित दिखाई जाती हैं। आकाश की ओर जिस प्रतिमा की आँखें बनी हों, उनको अशुभ मानते हैं। ये कुछ मान्यताएँ हमारे सुख-प्रदाता सभी देवी-देवताओं की प्रतिमा बनाने में काम आती रही हैं। केवल रौद्र तथा भयानक रसों को उत्पन्न करनेवाली प्रतिमाओं की मुखाकृति भिन्न रहती थी। विविध देव-प्रतिमाओं के हेतु विविध रंग के पत्थर भी व्यवहार किये गये हैं: जैसे श्याम रंग के पत्थर कृष्ण अथवा विष्णु की मूर्तियों के बनाने के हेतु तथा श्वेत रंग के पत्थर लक्ष्मी या सरस्वती की प्रतिमा के हेतु।

यों प्रतिमा बनाने की मान्यताओं के विवरण विशेष रूप से जे० एन० बैनर्जी द्वारा प्रकाशित समयक समबुद्ध भाषित प्रतिमा लक्षणम् में[४], हाडवे के 'ए नोट आन सम इण्डियन शिल्पशास्त्र'[५] में गोपीनाथ राव के दक्षिण, के उत्तम दशताल विधि में, बृहत्संहिता में, शुक्र नीति में, अंशुमद् भेदागम में, कर्णागम में, वैखानस आगम में, विष्णु धर्मोत्तर पुराण में[६] तिब्बत के दशताल न्यग्रोध परिमण्डल बुद्ध प्रतिमा नाम में, सम बुद्ध भाषित प्रतिमा लक्षण विवर्ण नाम[७], नग्न जी द्वारा विरचित चित्र लक्षण में प्रतिमा मानलक वणनाम में, ब्रह्मयामल में[८], पिंगला-मत मानसोल्लास में, मानसार में तथा शिल्प रत्न[९] इत्यादि में प्राप्त होते हैं। इन ग्रंथों की मान्यताएँ एक-सी नहीं हैं। इनमें स्थान-स्थान पर भेद मिलते हैं। इससे भी यही सिद्ध होता है कि शास्त्रीय मान्यताओं की अपनी एक धारा थी तथा शिल्पकारों की अपनी। शास्त्र लिखनेवालों ने जब शिल्पियों से पूछताछ की तो जो उन्होंने उन्हें जो बताया उसके आधार पर जब शास्त्र के विद्वानों ने संशोधन का प्रयास किया तो ये भेद उत्पन्न हो गये, ऐसा अनुमान होता है। इसी कारण इन सभी विवरणों में विचक्षण अर्थात् विज्ञ शिल्पी की सहायत्ता लेने का निर्देश मिलता है।[१०]

---

१. वही — अध्याय २५८ – ७१-७४।
२. जे० एन० बैनर्जी — डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी – अपेण्डिक्स 'बी'।
३. गुप्त कालीन मूर्तियों को छोड़कर।
४. जनरल ऑफ लेटर्स — कलकत्ता युनिवर्सिटी १९३२।
५. ओस्ट अजियारिश जिट्सश्रिफ – १९१४।
६. स्टेला क्रामरिश — विष्णु धर्मोत्तरम् भाग ३; ३५, ३६ कलकत्ता युनिवर्सिटी।
७. धर्मधर द्वारा अनुवादित।
८. पी० सी० बागची — ब्रह्मयामल तन्त्र – जनरल ऑफ इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियण्टल आर्ट-पृष्ठ १०२-१०६, ब्रह्मयामल की मान्यताओं का विवरण 'तन्त्र में लक्ष्मी का स्वरूप' नामक अध्याय में दिया गया है।
९. श्रीकुमार — शिल्परत्न – के. शाम्भ शिवशास्त्री-सम्पादक, ट्रिवाण्डरम संस्कृत सीरीज नं० ९८, श्री सेतु लक्ष्मी प्रसाद माला नं० १० – खण्ड १, २–१९२९।
१०. शास्त्रों के अनुसार एक बार मैंने भी लक्ष्मी की मूर्ति बनवाने का प्रयास किया परन्तु मैं विफल रहा क्योंकि मुझे विज्ञ शिल्पी की सहायता नहीं मिली।

: ११ :

प्राचीन लक्ष्मी की प्रतिमा का विकास

जो प्राचीन साहित्य हमें प्राप्त होता है उससे ऐसा अनुमान होता है कि श्री लक्ष्मी धन प्रदान करनेवाली देवी थीं और इनका सम्बन्ध कमल, जल, गज तथा यक्षों से था। जो प्राचीन मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं उनको देखने से ऐसा अनुमान होता है कि इनको धन-धान्य आदि सर्व-प्रदात्री देवी भी समझा जाता था। इनको सृष्टिकर्त्री के रूप में पूजा जाता था, इस कारण इनको नग्न भी दिखाया जाता था। कमल जिस प्रकार विना जोते-बोये उगता है, उसको देख कर उस काल के मनुष्यों का आश्चर्यान्वित होना स्वाभाविक था। इस कारण उसको इनके हाथ में दिया गया होगा तथा इनका सिंहासन बनाया गया होगा। इसी प्रकार जल से जीव की उत्पत्ति होने के कारण[1] (इसे जीवन कहते थे) इनसे इसका सम्बन्ध जोड़ा गया होगा। हाथी तथा मेघ के रंग को एक-सा देखकर इसको जल से सम्बन्धित करना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इस कारण कदाचित् गज भी लक्ष्मी के साथ जोड़ा गया होगा। यक्ष हमारे यहाँ के प्राचीन आदिवासियों के देवता थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।[2] इनको लक्ष्मी के साथ जोड़ना तो आवश्यक था। जैसा पहिले लिखा जा चुका है कि जो लक्ष्मी की मूर्तियाँ हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो की मोहरों पर मिलती हैं उनमें भी लक्ष्मी दो कमल के पौधों के बीच खड़ी हैं, मस्तक पर त्रिशूल के आकार का आभूषण है, पीछे चोटी लटक रही है। हाथ में तथा पैरों में आभूषण हैं। ये प्रायः नग्न हैं[3]। काँस मूर्ति जो यहाँ से प्राप्त हुई है वह भी नग्न है। हो सकता है कि वह भी लक्ष्मी की ही मूर्ति हो, क्योंकि उसके गले में जो आभूषण है वह पद्म की पत्ती का है। इनका यह स्वरूप ईसा से २५०० वर्ष पूर्व का है। वैज्ञानिक खोदाइयों के अभाव के कारण इस युग के पश्चात् काल के विषय में हमारी जानकारी बहुत थोड़ी है। कुछ मृण पात्र के टुकड़े हमें आर्यों के आदिकाल के प्राप्त हुए हैं[4] परन्तु अभी उनके विषय में भी विद्वान एक मत नहीं हैं कि वे वास्तविक रूप से उस काल के हैं कि नहीं।

प्राग् ऐतिहासिक युग के पश्चात् जो सांस्कृतिक सामग्री साहित्य के अतिरिक्त प्राप्त होती है वह मौर्य काल की है। इस युग की मृण मूर्तियों में हमें कोई मूर्ति हाथ में कमल लिये हुए अथवा कमल पर खड़ी अभी तक देखने में नहीं आयी है। परन्तु एक मूर्ति जो ग्रीवा तक बनी है, आधुनिक लक्ष्मी की मूर्ति से बहुत-कुछ मिलती हुई है (फलक २ क पटना से प्राप्त – ख आधुनिक)। इस मूर्ति को लक्ष्मी की मूर्ति मानने में केवल कठिनाई यह है कि इनके हाथ में कमल नहीं है, यों इस मूर्ति के कान में जो आभूषण है वह विकसित कमल के आकार का है[5], इस कारण यह अनुमान होता है कि यह लक्ष्मी की मूर्ति है।

---

१. कुमार स्वामी — यक्षाज – खण्ड २, पृष्ठ १४।

२. फर्गुसन — ट्री एण्ड सरपेण्ट वरशिप – पृष्ठ २४४।

३. वत्स — एक्सकवेशन्स ऐट हड़प्पा – प्लेट ९३ नं० ३१८, मार्के – फरदर एक्सकवेशन्स प्लेट ९३–नं० ३१८।

४. बी० बी० लाल — एक्सकवेशन्स ऐट हस्तिनापुर इत्यादि – ऐनशेण्ट इण्डिया नं० १०-११, पृष्ठ २३

५. पटना म्यूजियम — नं० ४३३०।

रूपड़ से प्राप्त एक अँगूठी के नगीने पर बनी प्राचीन मूर्ति है जो मौर्य काल की होनी चाहिये।[१] इसी प्रकार की मूर्ति तक्षशिला[२], पटना[३] इत्यादि से भी अँगूठी के नगीनों पर प्राप्त हुई है, जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि इन देवी की मान्यता दूर-दूर तक थी (फलक २ ग)। इस नगीने में दो भाग में चित्र खुदे हुए हैं, एक ऊपर तथा दूसरा नीचे।[४] नीचे के भाग में एक देवी की मूर्ति दो भागों के बीच में अंकित की गई है। (नाग शब्द सर्प तथा हाथी दोनों के लिये संस्कृत में मिलता है। गज का सम्बन्ध जल से है[५], जो जीवन प्रदाता है, जैसा पहिले लिखा जा चुका है तथा सूर्य भी जल-प्रदाता तथा उत्पादन शक्ति का द्योतक है[६], इस कारण गज के स्थान पर सर्प यदि दिखाई देता है तो यह अनुमान करना कि पहिले देवी के दोनों ओर सर्प दिखाये जाते थे तथा पीछे चल कर उनके स्थान पर गज दिखाये जाने लगे, कुछ अनुचित न होगा)। इन सर्पों के दोनों ओर कमल के फूल बने हैं। देवी के दक्षिण ओर का कमल तो स्पष्ट है, बाईं ओर का टूट गया है। देवी अपने दोनों हाथ नीचे लटकाए हुए हथेली तथा उँगलियाँ घुटने की सीध में रखे हुए योग आसन में स्थित हैं (कदाचित् यही प्राचीन वरद मुद्रा थी, जो पीछे चल कर सीधी हथेली से दिखाई जाने लगी)। मस्तक पर एक किरीट दिखाई देता है, जैसा भारहुत की लक्ष्मी के सिर पर दिखाई देता है (फलक ३ क)। कानों में गोल कुण्डल हैं जो पद्म के विकसित फूल के सदृश हैं। गले में हार है, मणिबन्धों पर चूड़ी दिखाई देती है, कमर में मेखला है, देवी नग्न हैं। इस नगीने के ऊपर के भाग में लक्ष्मी अपने दोनों पैर फैलाए हुए खड़ी हैं, हाथ दोनों नीचे की ओर लटक रहे हैं। आभूषण वे ही हैं जो नीचे की मूर्ति के शरीर पर हैं। इनकी दाईं ओर एक उपासक एक हाथ ऊँचा किये हुए आश्चर्य मुद्रा में इनकी ओर आ रहा है। दक्षिण ओर एक पेड़ के नीचे एक झोपड़ी दिखाई गयी है, जो पत्तों से आच्छादित है। उसी के सामने एक दीन-हीन व्यक्ति बैठा है तथा एक देवी उसको एक गोल-सी वस्तु भेंट कर रही हैं। यहाँ देवी को वस्त्र पहिने हुए दिखाया गया है। इनकी चोटी पीछे की ओर लटक रही है, जैसी मोहनजोदड़ो के मुहर पर देवी के मस्तक के पीछे दिखाई देती है, जैसा पीछे कहा जा चुका है। गजलक्ष्मी की एक मूर्ति पीछे के काल की भग्नावस्था में कौशाम्बी से भी प्राप्त हुई है[७], इस कारण इन देवी को लक्ष्मी समझना कुछ अनुचित न होगा।

भारहुत से प्राप्त कई ऐसी मूर्तियाँ हैं जिन्हें हम लक्ष्मी की समझ सकते हैं। जैसे एक देवी की मूर्ति जो एक यक्ष अपने हाथों पर धारण किये हुए है। ये सर्वाभरण-भूषिता हैं और इनके गहने भी मोतियों के बने हुए हैं। पैर में नूपुर के स्थान पर गोल मणियों की चूड़ी है। आगे के पटके में भी मोतियाँ की लड़ियाँ लगी हैं। मस्तक पर मोतियों का जाल है। एक हाथ कमर पर है तथा दक्षिण कर में कमल है। एक उपवीत की भाँति

---

१. वाई० डी० शर्मा —— एक्सप्लोरेशन ऑफ हिस्टारिकल साइट्स – ऐनशण्ट इण्डिया, नं० ९, पृष्ठ १२३, प्लेट ४८ बी।

२. मार्शल —— तक्षशिला – खण्ड २, पृष्ठ ५०३ तथा आगे (कैम्ब्रिज १९५१)।

३. एस० ए० सीथर —— स्टोनडिस्क्स फाउण्ड एट मुर्तजीगंज – जरनल बिहार रिसर्च सोसाइटी खण्ड ३७ (१९५१) पृष्ठ १ तथा आगे।

४. ऐनशण्ट इण्डिया नं० ९ – (१९५३) प्लेट ४८ बी० रूपड़ से प्राप्त।

५. कुमार स्वामी —— यक्षाज – खण्ड २, पृष्ठ ३२।

६. फरगुसन —— ट्री एण्ड सरपेण्ट वरशिप – पृष्ठ २४४ – सर्पराज एलोरा की गजलक्ष्मी के सिंहासन के नीचे दिखाई देते हैं। गोपीनाथ राव – उपर्युक्त – प्लेट ११०।

७. काला —— स्कल्पचर्स इन दी एलाहाबाद म्युनिसिपल म्यूजियम – प्लेट १४ – ए तथा बी०।

की माला बायें कन्धे से वक्षस्थल पर लटक रही है ।[१] दूसरी मूर्ति श्रीमा देवता की है ।[२] तथा एक और मूर्ति है जो हाथ में कमल लिये कमल पर खड़ी है ।[३] इनके अतिरिक्त तीन गजलक्ष्मी की भी मूर्तियाँ दिखा देती हैं[४], जिनमें दो लक्ष्मी की खड़ी और एक बैठी हुई मूर्ति है। इन तीनों में गज कमल पर खड़े हैं तथा लक्ष्मी भी कमल पर हैं। भारहुत की बैठी हुई गजलक्ष्मी की मूर्ति योग आसन में स्थित है तथा दोनों कर सम्पुटित हैं ।[५] इनके बैठने का योग-आसन प्रायः वैसा ही है जैसा मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मुहर पर शिव का है ।[६] यहाँ पंजे नीचे की ओर हैं तथा एड़ी ऊपर को (फलक ३ ख) । ये एक विकसित कमल पर स्थित हैं । दोनों ओर दो हाथी कमल पर खड़े इनको अपनी सूँड़ में घट लेकर स्नान करा रहे हैं । जिस पद्म पर देवी आसीन हैं वह एक घट में से निकल रहा है तथा हाथी भी जिन कमलों पर खड़े हैं वे भी उसी घट से निकले हुए दिखाये गये हैं। उसी घट से निकलती हुई कमल की पत्तियाँ भी हैं । (शतपथ ब्राह्मण में कमल को जल का द्योतक कहा है) ।[७] इस मूर्ति के अंग बहुत घिस गये हैं । इस कारण इन देवी के आभूषणों का स्वरूप ठीक दिखाई नहीं देता परन्तु बहुत ध्यान से देखने पर यह ज्ञात होता है कि इनके सिर पर किरीट, कानों में कुण्डल, गले में हार तथा कटि में मेखला है । इस प्रतिमा का विशेष महत्व यह है कि भारहुत, साँची, तथा बोध गया में जो इसी काल की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं उनमें किसी में भी देवी योग-आसन में हाथ जोड़े हुए बैठी नहीं मिलती हैं । गुप्त काल के चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा कुमार गुप्त के सिक्कों पर कहीं-कहीं लक्ष्मी योग-आसन में दिखाई देती हैं, परन्तु उनमें भी वे हाथ जोड़े हुए नहीं दिखाई देतीं ।[८] यहाँ दो गजलक्ष्मियों की मूर्तियाँ, जिनमें देवी खड़ी हैं, वे भी गोल वृत्त के भीतर बनी हुई हैं (फलक ३ क, ख) । इन दोनों में प्रसन्न-वदना लक्ष्मी विकसित पद्म के ऊपर खड़ी हैं, दक्षिण बाहु उठा हुआ बाएँ स्तन पर है तथा एक फलक में बाम बाहु में एक कमल की कली की डण्डी पकड़े हुए है (क)[९] और दूसरा एक थैली को[१०] (ग) । मस्तक पर किरीट है, कानों में कुण्डल, गले में कण्ठा है, मणिबन्ध पर वलय तथा चूड़ियाँ हैं, कटि में कमरबन्द और धोती है, पैर में चूड़ी है । दो गज, जो इनको स्नान करा रहे हैं, उनके गले में तथा मस्तक पर अलंकार हैं । हाथी एक विकसित कमल पर चारों पैर रखे हुए खड़े हैं और सूँड़ में घट लिये हुए स्नान करा रहे हैं । ये दोनों पद्म तथा देवी जिस पद्म पर स्थित हैं, वे सब एक घट से निकल रहे हैं, घट भी अलंकृत है । एक फलक में इन तीन पद्म के फूलों से तीन कमल की कलियाँ तथा दो कमल के पत्ते निकल रहे हैं । दूसरे में तीन कमल के अतिरिक्त केवल दो कलियाँ तथा दो कमल-पत्र ही निकल रहे हैं । भारहुत के इन छोटे-छोटे फलकों को देखते ही बनता है । कितने कम स्थान में शिल्पियों ने किस सुघड़ता से इतनी सब चीजें एक साथ बना दी हैं, इनमें कोई वस्तु एक दूसरे के ऊपर नहीं है, न अंकन में ही गिचपिच हुआ

---

१. ए० कुमार स्वामी — ला स्कल्पत्यूरड़ भारहुत, पृष्ठ ६३, प्लेट १९, फिगर ४७ ।
२. वही — उपर्युक्त — प्लेट १८, फिगर ४४ ।
३. वही — उपर्युक्त — प्लेट २३, फिगर ५८ ।
४. वही — उपर्युक्त — प्लेट ४०, फिगर्स १२२, १२३, १२४ ।
५. वही — उपर्युक्त — प्लेट ४०, फिगर १२४ ।
६. माके — फरदर एक्सकवेशन्स — प्लेट ७८, नं० २२२ ।
७. शतपथ — ७, ४, १, ८ ।
८. मोतीचन्द्र — पद्म श्री — नेहरू बर्थ डे बुक — फिगर २१ इत्यादि ।
९. कुमार स्वामी — उपर्युक्त — फलक ४०, फिगर १२२ ।
१०. वही — उपर्युक्त — फलक ४०, फिगर १२३ ।

है। ये केवल चिपटे दिखाई देते हैं। भारहुत के एक खम्भे पर जो एक लक्ष्मी की पद्महस्ता प्रतिमा प्राप्त होती है (फलक ४ ख), उसमें देवी की त्रिभंग मूर्ति है, दक्षिण कर ऊपर उठा हुआ है तथा उससे वे कमल की कली पकड़े हुए हैं, बायाँ हाथ धोती के एक छोर को उठाये हुए है। यहाँ विकसित कमल पर लक्ष्मी खड़ी हैं। मस्तक पर मोतियों का जाल है, कानों में कुण्डल, गले में त्रिरत्न के टिकड़े के साथ दो नन्दीपाद के स्वरूप के टिकड़े मोती की एक लड़ी के साथ गुँथे हुए हैं। कमर में मणियों की मेखला तथा धोती है, पैरों में नूपुर हैं[1]।

एक दूसरी मूर्ति सिरिमा देवता की है (फलक ४ क) जो श्री का प्राचीनतम स्वरूप ज्ञात होता है, जैसा पहिले लिखा जा चुका है। ये वही देवी हैं जिनका परिचय श्री सूक्त में प्राप्त होती है।[2] यहाँ खम्भे के ऊपर के भाग में अर्ध कमल बना हुआ है। देवी का एक हाथ ऊपर उठा हुआ है जिसमें कमल था, जो अब टूट गया है। दूसरा हाथ बगल में लटक रहा है। मस्तक पर ओढ़नी है, ललाट पर ललाटिका है, कानों में कुण्डल, गले में कई कण्ठे हैं, सबसे नीचे वाले कण्ठे में त्रिरत्न तथा नन्दीपाद के टिकड़े हैं। बाहु में अंगद तथा मणिबन्ध पर चूड़ियाँ हैं। कमर में मेखला है तथा कमरबन्द। धोती का आगे का भाग सामने की ओर लटक रहा है। पैरों में चूड़ियाँ हैं। ये हाथ की चूड़ियाँ उन प्राचीन काँस मूर्तियों की चूड़ियों का स्मरण कराती हैं, जो हमें मोहन-जोदड़ो से मिली है। परन्तु यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो ये चूड़ियाँ बाहु पर बहुत दूर तक नहीं दिखाई गयी हैं, जैसी काँस्य मूर्ति में मिलती हैं। ये समपादक स्थानक मुद्रा में खड़ी हैं।[3]

भारहुत की प्रतिमाओं के कलामय गोल मुख, पद्म-पत्र के समान नेत्र, हाथी की सूँड़ के समान बाहु, पीन पयोधर, क्षीण कटि, भरे हुए नितम्ब इस काल की कला की अपनी विशेषताएँ हैं। इस मूर्ति में मौर्य काल की उभरी हुई गोलाई भी दृष्टिगोचर होती है।

भारहुत में गजलक्ष्मी की और भी मूर्तियाँ थीं, जैसा कि एक पाषाण खण्ड के ऊपर दो हाथियों की सूड़ों को देखकर ज्ञात होता है[4], परन्तु समय के प्रभाव से अब वे नष्टप्राय हो चुकी हैं। इस फलक में एक हाथी तो स्पष्ट है, दूसरे का केवल मुख और सूँड़ है। दोनों दो घट से किसी को स्नान करा रहे हैं। देवी के मस्तक के ऊपर का कुछ-कुछ भाग दिखाई देता है।

भारहुत की भाँति साँची के द्वार के खम्भों पर तथा तोरणों पर कई फलक ऐसे हैं जिन पर लक्ष्मी की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। ये सब बड़ी सफाई से पत्थर में खोदी गई हैं। इनमें कई मूर्तियाँ कपिशा से प्राप्त हाथी-दाँत के फलकों पर की स्त्रियों के समान हैं।[5] इन मूर्तियों में हमें लक्ष्मी के विविध स्वरूपों का दर्शन होता है। कहीं पद्महस्ता, पद्मस्थिता है, तो कहीं पद्मवासिनी। गजलक्ष्मियों में भी ये विविध मुद्राएँ प्रदर्शित की गयी हैं। कहीं एक हाथ में कमल लिये हुए और दूसरा कटि पर रखे हुए, कहीं दोनों हाथों में कमल लिये हुए, कहीं हाथ जोड़े हुए, तो कहीं एक हाथ कुच पर रखे हुए। कोई गजलक्ष्मी की खड़ी मूर्ति है तो कोई बैठी हुई। कोई पद्मस्थिता मूर्ति बैठी हुई है, तो कोई खड़ी है। गजलक्ष्मी की मूर्ति के साथ कहीं-कहीं और दूसरे पक्षियों

---

१. कुमार स्वामी —— श्री लक्ष्मी – चित्र १४; मोतीचन्द्र – उपर्युक्त – फिगर २; कुमार स्वामी – ला स्कल्पत्यूरड भारहुत – प्लानस २३; फिगर ५८।

२. श्रीसूक्त —— ३।

३. कुमार स्वामी —— उपर्युक्त – पृष्ठ १८१।

४. कुमार स्वामी —— ला स्कल्पत्यूरड भारहुत, प्लेट ४१, फिगर १३३।

५. हाकिन —— ला नुवेल रिसेर्श आँ बेग्राम – प्लांग – १०, ११ इत्यादि।

को जैसे हंस को भी दिखाने का प्रयत्न किया गया है ।[1] किसी-किसी फलक में इनके चरण के नीचे उपासकों को भी दिखाया गया है । इन उपासकों में एक स्त्री और पुरुष की सर्वाभरण-भूषित आकृतियाँ हैं । कदाचित् ये आकृतियाँ उन्हीं दानियों की हैं, जिन्होंने इन फलकों के खुदाई की मजदूरी दान में दी होगी । एक फलक में इन उपासकों के नीचे दो सिंह और दो हरिण भी बने हुए हैं ।[2] प्रायः ये फलक शुंगकालीन हैं । (प्रायः बौद्ध और जैन भिक्षुकों के दाता वैश्य ही थे, जैसा साँची के लेखों के नामों से ज्ञात होता है । इस कारण उनकी देवी की मूर्ति का यहाँ बनना कोई आश्चर्य नहीं है ।)

साँची के शुंग कालीन स्तूप नं० २०२ के एक फलक पर एक लक्ष्मी की मूर्ति खुदी हुई है (फलक ५घ), जिसमें उनका पद्महस्ता, पद्मस्थिता रूप प्राप्त होता है । इसमें देवी दोनों हाथों में दो विकसित कमल लिये हुए हैं, ये दोनों कर उनके वक्षस्थल पर हैं । ये एक विकसित कमल की नाभि पर खड़ी हैं । इसी बीचवाले कमल के नीचे से कई और पद्म की कलियाँ तथा पद्म के पत्र और फूल निकल कर लक्ष्मी के दोनों ओर फैले हुए हैं । ऐसा ज्ञात होता है कि जैसे सरोवर में से निकल हों । लक्ष्मी के मस्तक पर किरीट है, कानों में कुंडल, गले में हार, कमर में मेखला तथा पैरों में नूपुर हैं, कमर में धोती है, उत्तरीय स्पष्ट रूप से नहीं दिखाई देता । ये पैर के पंजे को फैलाए हुए दोनों एड़ियों को मिला कर खड़ी हैं । इनके दोनों ओर दो हंस इनकी ओर से मुँह मोड़े हुए कमल नालों पर स्थित हैं । एक की चोंच में मोती का गुच्छा भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है ।[3] इसी प्रकार की एक खड़ी मूर्ति एक दूसरे फलक पर दिखाई देती है (फलक ५ ङ) । इसमें लक्ष्मी का दक्षिण कर ऊपर उठा है और उसमें कमल की कली है और बायें कर में थैली के भाँति की कोई वस्तु ज्ञात होती है । ये किसी चौकोर वस्तु पर खड़ी हैं । इनके दोनों पैर सामने की ओर समपाद में हैं । मस्तक पर मौली, कानों में कुण्डल, गले में हार, मणिबन्धों पर चूड़ी तथा कंकण, कटि में मेखला है तथा कमरबन्द और धोती, पैरों में नूपुर हैं ।[4] लक्ष्मी के दोनों ओर कमल की कलियाँ तथा कमल के पत्ते बने हुए हैं । इस प्रकार इनको पद्म-हस्ता, पद्मवासिनी दिखाया गया है । मुख कुछ बाईं ओर को झुका हुआ है ।

इसी प्रकार की एक दूसरी मूर्ति भी प्राप्त होती है (फलक ५ ग), जिसमें देवी के दोनों हाथ नीचे की ओर हैं और दक्षिण कर से कमल नाल पकड़े हुए हैं तथा बायें से कपड़ा । मुख इनका सामने की ओर है और कोई विशेष अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता ।[5] इसी प्रकार लक्ष्मी के एक हाथ में कमल तथा दूसरे में वस्त्र गुप्त सिक्कों के पीछे बनी लक्ष्मी की मूर्तियों में भी दिखाई देता है । यह लक्ष्मी का पद्महस्ता, पद्मवासिनी स्वरूप है ।

एक लक्ष्मी की बैठी हुई मूर्ति भी साँची में दिखाई देती है (फलक ६ क), जिसमें उनका दक्षिण कर अभय मुद्रा में है और दूसरा एक कमल-नाल को पकड़े हुए है । ये एक विकसित कमल की नाभि पर एक आसन रखकर सुखासन में बैठी हुई हैं । मस्तक पर एक ओढ़नी पड़ी है । कानों में चौकोर कुण्डल हैं । गले में हार, बाहु में अंगद तथा मणिबन्ध पर चूड़ी और कंकण हैं । कटि में मेखला तथा पैर में चूड़ियाँ हैं । इनके

---

१. मोती चन्द्र — पद्म श्री – फिगर १४, तोरण ।
२. वही — उपर्युक्त – फिगर १२ ।
३. मार्शल एण्ड फूशे – दी मान्युमेण्ट्स ऑफ सांची, खण्ड ३, प्लेट ७५–९ ए ।
४. वही — उपर्युक्त – भाग २, प्लेट ७६, १२ बी, १५ ए ।
५. मोतीचन्द्र — पद्मश्री – नेहरू बर्थ डे बुक, पृष्ठ ५०४ के समक्ष – फिगर ५ ।

दोनों ओर कमल के फूल, कमल की कलियाँ तथा पत्तियाँ हैं। नीचे की ओर अशोक कठघरा बना है। इनका स्वरूप पद्मवासिनी है।[१]

एक दूसरे फलक पर एक लक्ष्मी की खड़ी मूर्ति है, जिसमें दोनों ओर कमल के फूल, कलियाँ तथा पत्तियाँ हैं। इनका दक्षिण कर कटि पर है तथा वाम कर में विकसित कमल है।[२]

गजलक्ष्मियों की मूर्तियाँ भी साँची में प्राप्त होती हैं। इनमें कुछ खड़ी हैं और कुछ बैठी हैं। इनमें एक मूर्ति भारहुत की भाँति है। एक अलंकृत घट के मुख से निकलते हुए विकसित कमल के ऊपर ये खड़ी हैं, दो विकसित कमल पर दो गज सूँड़ ऊँची करके घटों से इनको स्नान करा रहे हैं (फलक ६ ख)। इस घट में से तीन कमलों के अतिरिक्त एक कमल का पत्ता तथा एक कली निकल रही है। देवी का दक्षिण कर स्तनों पर है तथा बायाँ सीधा नीचे लटक रहा है।[३] मस्तक पर ओढ़नी है, कानों में कुण्डल, गले में हार, मणिबन्धों पर वलय, कमर में मेखला, कमरबन्ध तथा धोती है, पैरों में नूपुर।

एक दूसरी गजलक्ष्मी की प्रतिमा जो मिली है (फलक ५ ख), उसमें लक्ष्मी विकसित कमल पर खड़ी हैं तथा गज भी दोनों कमलों पर खड़े सूँड़ उठाकर घटों से देवी को स्नान करा रहे हैं तथा कलियाँ और पत्ती सभी एक स्थान से निकल रही हैं, परन्तु ये सब घट में से निकल रही हैं। गजों के ऊपर के भाग में छत्र तथा कमल है। कमल की कलियों और पत्तियों के नीचे अलंकृत स्त्री-पुरुष की छवि है। दोनों के हाथों में कमल की कलियाँ हैं। ये भी कमल पर खड़े हैं।[४] देवी के मस्तक पर मौली, कानों में झुमका, गले में हार, बाहुओं पर अंगद, हाथ में वलय, कटि में मेखला तथा पैरों में नूपुर हैं। नीचे के अंग में धोती है।

इसी प्रकार की एक और प्रतिमा प्राप्त हुई है जिससे पहिलीवाली मूर्ति से अन्तर इतना है कि लक्ष्मी दोनों हाथ सम्पुट किये हुए हैं, पैरों में इनके चूड़ी और नूपुर हैं। दोनों गजों के ऊपर दो कमल बने हुए हैं। नीचे जो स्त्री-पुरुष खड़े हैं उनके चरण पृथ्वी पर हैं तथा स्त्री का दाहिना हाथ मुड़ा हुआ स्तनों के पास है और बायाँ सीधा लटक रहा है (फलक ५ क)। पुरुष एक हाथ में चँवर लिये हुए है तथा दूसरे में वस्त्र। इनके पैर के नीचे दो सिंह हैं, जो दो ओर मुँह किये बैठे दिखाये गये हैं तथा इनके बीच में एक कमल है। सिंहों के नीचे दो हिरन हैं। इनके बीच में भी एक विकसित कमल है तथा इनके पैर के पास दो कमल हैं। यहाँ कुछ लोगों का अनुमान है कि ये स्त्री-पुरुष की आकृतियाँ अशोक तथा उनकी विदिशा की रानी की हैं।[५]

एक तोरण पर बनी गजलक्ष्मी की खड़ी मूर्ति इससे भिन्न है। यहाँ लक्ष्मी के चारों ओर कमल की कलियाँ फूल-पत्तियाँ इत्यादि दिखाये गये हैं, जिनमें लक्ष्मी की बाईं और दाहिनी ओर हंस के जोड़े भी कमलों पर बैठे हैं। देवी कमल के आसन पर खड़ी हैं। उनका दक्षिण कर ऊपर उठा है, जिसमें कमल है तथा बायाँ कर कटि पर है। इनका मुख बाईं ओर को कुछ घूमा हुआ है। मस्तक पर मौली, कानों में कुण्डल, गले में लम्बा हार, हाथों में चूड़ी तथा वलय हैं, कटि में कमरबन्द तथा मेखला है, धोती भी पतली है, पैरों में चूड़ी तथा नूपुर हैं।[६]

---

१. वही — उपर्युक्त – फिगर ९।
२. वही — उपर्युक्त – फिगर १०।
३. वही — उपर्युक्त – फिगर – ११।
४. वही — उपर्युक्त – फिगर १३।
५. जिम्मर — दी आर्ट ऑफ इण्डियन एशिया – प्लेट २७, प्रायः ईसा पूर्व ११० की कृति।
६. मोतीचन्द्र — उपर्युक्त – फिगर १४।

एक और खड़ी गजलक्ष्मी की मूर्ति जो यहाँ दिखाई देती है, उसके दोनों ओर के बने खम्भों को तथा नीचे के कठघरे और ऊपर के सीढ़ीदार कँगूरों को देखने से ऐसा ज्ञात होता है जैसे यह इनका मन्दिर हो। यहाँ लक्ष्मी कमल की पीठ पर खड़ी हैं, इनके दक्षिण कर में एक फूल है तथा बाएँ में एक वस्त्र। मस्तक पर एक गोल मौली, कानों में झुमके, गले में लम्बा हार जो स्तनों के ऊपर से होता हुआ नीचे तक लटक रहा है, हाथ में चूड़ी तथा कंगन हैं, कटि में मेखला तथा पैरों में चूड़ी और नूपुर हैं।[१] दोनों ओर तालाब से निकलते हुए कमल के फूल, कलियाँ तथा पत्तियाँ हैं। खम्भों पर सिंह की आकृतियाँ बनी हैं।

बैठी हुई गजलक्ष्मी की मूर्तियों में एक पहिलेवाली मूर्ति की भाँति मंदिर में प्रतिष्ठित दिखाई देती है। इसमें भी देवी के दोनों ओर खम्भे बने हैं, ऊपर कँगूरे हैं और नीचे कठघरा। लक्ष्मी शतदल कमल पर अर्ध-पर्यंक आसन में बैठी हैं। इनका बायाँ पैर ऊपर मुड़ा हुआ है। एक हाथ जंघे पर है तथा दूसरा एक कमल लिये हुए है। तालाब से कमल की कलियाँ इत्यादि निकल रही हैं। गज दोनों ओर सूँड़ उठा कर घट से स्नान करा रहे हैं, दो जल धाराएँ इनके मस्तक पर पड़ रही हैं।[२]

इससे भी विकसित रूप साँची में एक दूसरे फलक पर प्राप्त होता है, जिसमें पद्म इत्यादि एक घट से निकल रहे हैं (फलक ७ क)। एक पद्म पर लक्ष्मी अर्ध-पर्यंक आसन में स्थित हैं। इस फलक में उनका दक्षिण पैर ऊपर उठा हुआ है तथा बायाँ पैर नीचे लटक रहा है। सिर पर ओढ़नी है, कानों में चौकोर कुण्डल हैं, गले में एक बड़े-बड़े मोती के दानों की माला है, जिसके बीच में एक लम्बी मणि है। हाथों में चूड़ी, कमर में करधनी तथा पैरों में चूड़ियाँ हैं। एक हाथ में बड़ी कमल की कली है, दूसरा हाथ जंघे पर है। यह मूर्ति प्रायः चौकोर स्थान में बनाई गयी है। इसके ऊपर के भाग तथा नीचे के भाग में कठघरे बने हुए हैं। दोनों ओर घट से निकलती हुई कमल की बेल बनी हुई है।[३]

बोध गया से प्राप्त प्रायः इसी काल की लक्ष्मी की मूर्तियों में उनका गजलक्ष्मी का ही स्वरूप अधिक दृष्टिगोचर होता है। एक मूर्ति गजलक्ष्मी की इन्द्र के ठीक ऊपर मिलती है।[४] इसमें देवी कमल पर खड़ी है, दोनों ओर से दोनों हाथी विकसित कमल पर खड़े घटों को सूँड़ में पकड़े देवी को नहला रहे हैं। जिस कमल पर लक्ष्मी स्थित हैं, उसी कमल की जड़ से दो कलियाँ निकल कर लक्ष्मी के दोनों ओर हैं तथा दो और कलियाँ भी उसी स्थान से प्रस्फुटित हो रही हैं। लक्ष्मी का एक हाथ उठा हुआ है, जिसमें कमल है। दूसरा हाथ बगल में लटक रहा है। ऊपर का भाग बहुत घिस जाने से यह पता नहीं लगता कि इनके मस्तक, वक्षस्थल तथा हाथों में कौन-कौन से आभूषण थे, कमर में मेखला तथा धोती स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रही हैं।

एक दूसरे फलक में जो प्रायः इसी प्रकार का है (फलक ८ ख), उसमें लक्ष्मी का जूड़ा उनके बाईं ओर बँधा हुआ है तथा उस पर मौली है। कानों में कुण्डल हैं, गले में तीन लड़ियों का हार है, जो स्तनों के ऊपर ही रह जाता है। हाथ के गहनों का पता नहीं लगता। कमर में दो लड़ी की मणियों की मेखला तथा धोती है, पैरों में भारी नूपुर भी दिखाई देते हैं, धोती भी ये पहिने हुए हैं, परन्तु यह वैसी ही बँधी हुई है जैसे आज भी बिहार में लोग बाँधते हैं। बायाँ हाथ कटि पर है और दाहिना उठा हुआ कमल को लिये हुए हैं। दाहिनी ओर का हाथी कँवलगट्टे पर स्थित है। इनके बाईं ओर का हाथी घिस गया है। पद्म आसन के दोनों ओर

---

१. वही — उपर्युक्त – फिगर १५।
२. वही — उपर्युक्त – फिगर १६।
३. वही — उपर्युक्त – फिगर १०।
४. कुमार स्वामी — ला स्कल्पचर। बोध गया – प्लेट ३९, पोतो ९१।

से दो कलियाँ निकल रही हैं तथा दो कमलगट्टे हैं, जिन पर हाथी बने हुए हैं। इनके पैर दोनों सामने की ओर और दाहिनी ओर का हाथी कँवलगट्टे पर स्थित है। इनके बाईं ओर का हाथी घिस गया है। पद्म आसन के दोनों ओर से दो कलियाँ निकल रही हैं तथा दो कमलगट्टे हैं, जिन पर हाथी बने हुए हैं। इनके पैर दोनों सामने की ओर हैं।[१]

एक दूसरे फलक में लक्ष्मी दोनों हाथों में कमल के फूल तथा पत्ती की नालें हैं, इनका शरीर कुछ बाईं ओर झुका हुआ है (फलक ८क)। मस्तक पर मौली है, कानों में कुण्डल हैं, अन्य आभूषण दिखाई नहीं देते। ये कमल के विकसित पुष्प पर खड़ी हैं, इनका यह स्वरूप पद्महस्ता, पद्मवासिनी का है। इस फलक के बाहर की ओर दो कमल बने हुए हैं, जिनमें से मोतियों की मालाएँ झूल रही हैं। इसी फलक के नीचे एक स्त्री-पुरुष का जोड़ा है, जो एक मकान की दालान में खड़ा दिखाया गया है।[३]

हाथी दाँत की एक स्त्री-मूर्ति इटली के पाम्पीआई नगर से प्राप्त हुई है। इसे भी डॉ० मोतीचन्द्र ने लक्ष्मी की मूर्ति बताया है।[४] यह मूर्ति ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी की है। यह शुंगकालीन आभूषण धारण किये हुए है। इस खड़ी मूर्ति के दोनों ओर इससे सटी हुई दो सखियाँ हैं, जो पात्र लिये हुए हैं। यह मूर्ति नग्न है इसका बाँया हाथ उठा हुआ है। ललाट पर ललाटिका, मस्तक पर बन्दी, गले में हार, हाथ में कड़ा, कमर में करधनी, पैरों में चूड़ी तथा नूपुर हैं।

शुंगकालीन कई एक मृण मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं, जो लक्ष्मी की ज्ञात होती हैं (फलक ९ घ)। इनमें इनकी प्रायः एक ही प्रकार की बनावट है। बहुत से अलंकारों से सुशोभित ये पद्म पर खड़ी मिलती हैं। बसाढ़ से प्राप्त एक लक्ष्मी की मूर्ति के दोनों हाथ कमर पर हैं, दोनों ओर कमल के फूल, कमल की कलियाँ तथा कमल की पंक्तियाँ हैं।[५] इस मूर्ति के दोनों कन्धों पर पंख लगे हुए हैं। इन पंखों के विषय में विद्वानों की अनेक धारणाएँ हैं। कदाचित् इनको आकाश की देवी बनाने की दृष्टि से ईरान के प्रभाव के कारण इनकी भी पीठ पर ईरानी पशुओं की भाँति पंख लगा दिये गये हैं[६] अथवा कदाचित् इनको चंचला दिखाने के हेतु ऐसा किया गया। इसी प्रकार की कई मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं; इनमें एक मूर्ति नन्दन गढ़ से भी प्राप्त हुई है, जो कलकत्ता के राष्ट्रीय संग्रहालय में है[७] तथा एक दूसरी मूर्ति कौशाम्बी से प्राप्त हुई है।[८] एक दूसरी और लक्ष्मी की मृण-मूर्ति बसाढ़ से भी प्राप्त हुई है[९], जिसमें मूर्ति का अधोभाग ही है। यहाँ देवी विकसित कमल पर स्थित हैं। नीचे की धोती कमरबन्द से बँधी है तथा ऊपर से मणियों की करधनी शोभायमान हो रही है। ऊपर के अंग पर कसी हुई चोली है, वाम कर कमरबन्द को पकड़े हुए है और दक्षिण कर सुखपूर्वक बगल में लटक रहा है।

---

१. कुमार स्वामी -- ला स्कल्पचर--बोध गया - प्लेट ५६-२ (११)।
२. कुमार स्वामी -- उपर्युक्त - प्लेट ५६ - १।
३. वही -- उपर्युक्त - प्लेट १७ कठघरे का खम्भा।
४. मोतीचन्द्र -- ऐनशण्ट इण्डियन आइवरीज - प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम बुलेटिन, बम्बई - नं० ६, १९५७-१९५९ - १ए, पृष्ठ ४-६३।
५. आर्केआलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट - १९१३-१४, पृष्ठ ११६ प्लेट, ४४।
६. मोतीचन्द्र -- उपर्युक्त - पृष्ठ ५०४; कुमार स्वामी - इपेक (१९२८) पृ० ७१।
७. कलकत्ता राष्ट्रीय संग्रहालय -- नं० ३०४, एस० आई० ए० आर०, १९३५-३६, प्लेट २२, फिगर २।
८. काला -- टेरा कोटा फिगरिन्स फ्राम कौशाम्बी - प्लेट १४बी तथा प्लेट ५१ फिगर २, पृष्ठ २६।
९. आर्केआलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट - १९१३-१४, पृष्ठ ११७।

परन्तु इन सबसे सुन्दर तो एक गजलक्ष्मी की मूर्ति मथुरा से मिली है, जो मथुरा के राजकीय संग्रहालय में है (फलक ८१ च)। इस शुंगकालीन मूर्ति में दो गज घटों से लक्ष्मी को स्नान करा रहे हैं। ये गज दो विकसित कमलों पर खड़े हैं, जिनके नाल खम्भों की भाँति दिखाई देते हैं। लक्ष्मी खड़ी हैं, इनका बायाँ हाथ कटि पर है और दाहिना ऊपर उठा हुआ है और उसमें कमल का फूल है। एक कमल का फूल देवी के बाईं ओर भी है। मस्तक पर पगड़ी है, कन्धे पर उत्तरीय तथा कमर में धोती है। गले में मणिजटित टिकड़ों का कण्ठा है, कान में गोल कुण्डल, कटि पर भारी करधनी है। करधनी से लटकती हुई मणियों की लड़ियाँ हैं, जैसी फलक ६ (घ) पर उद्धृत मृणमूर्ति के चित्र में दिखाई देती हैं। मणिबन्धों पर वलय दिखाई देते हैं। इनके पीछे की ओर पानी की धार के दोनों ओर मुद्राएँ दिखाई देती हैं[१]। इसी प्रकार की एक और गजलक्ष्मी की मूर्ति मथुरा संग्रहालय में है। एक और लक्ष्मी की मूर्ति पद्म लिये हुए यहीं से प्राप्त हुई है। इसी प्रकार की एक शुंगकालीन मृणमूर्ति गजलक्ष्मी की वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के संग्रहालय में भी है। यह मूर्ति बैठी हुई है और इसे दो गज स्नान करा रहे हैं। यह मूर्ति इतनी जीर्ण हो गई है कि इसके विविध अंग स्पष्ट दिखाई नहीं देते। फिर भी यह मूर्ति उसी परम्परा की होने के कारण अपना विशिष्ट स्थान रखती है। एक हड्डी की बनी लक्ष्मी की मूर्ति मथुरा के चौरासी टीले से प्राप्त हुई है। यह मूर्ति ईसा के प्रथम शताब्दी के काल की प्रतीत होती है। इसे भी डॉ० मोतीचन्द्र ने लक्ष्मी की मूर्ति बताया है।[२] यहाँ भी देवी विविध आभूषणों से आभूषित हैं और नग्न अवस्था में दिखाई गयी हैं।

लक्ष्मी की प्रतिमा भारत-लक्ष्मी के स्वरूप में 'लम्पसकस' से प्राप्त एक रजत की थाली पर बनी हुई है।[३] यह प्रतिमा रोमदेशीय संभ्रान्त महिला के रूप में दिखाई गई है। मस्तक से दो सींग निकले हुए हैं। कदाचित् उस समय इस प्रदेश के विशिष्ट पुरुष और स्त्रियाँ अपने मस्तक पर शृंग धारण करते थे, जैसा महाभारत के सभापर्व के अन्तर्गत उपायन पर्व के निम्नांकित श्लोक से ज्ञात होता है—

'शकास्तुषाराः कङ्काश्च रोमशाः शृङ्गिणो नराः।'[४]

मस्तक पर एक पगड़ी है, गले में एक तौक है, बाहुओं पर अनन्त तथा मणिबन्धों पर वलय, एक उत्तरीय कन्धे पर है, नीचे के भाग में धोती है, पैरों में यूनानी स्त्रियों की भाँति चप्पल हैं, एक हाथ में धनुष है, दूसरा हाथ आश्चर्य की मुद्रा में है। ये हाथी-दाँत के सिंहासन पर बैठी हुई हैं। इनके दोनों ओर वे भारतीय पशुपक्षी हैं जो भारत से बाहर के देशों में भेजे जाते थे, जैसे तोता, बघेरी नस्ल के कुत्ते इत्यादि। शुंग-काल की और मृणमूर्तियाँ जो लक्ष्मी की हो सकती हैं। इनमें कौशाम्बी, पटना, तामलुक, मसोन इत्यादि स्थानों से प्राप्त मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं।[५] प्रायः ये मूर्तियाँ नीचे से खण्डित हैं तथा इनके मस्तक के एक ओर विविध अस्त्र बने हैं। एक

---

१. श्री कृष्णदत्त वाजपेयी—'मथुरा' उत्तर प्रदेश के सांस्कृतिक केन्द्र – शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, फलक ६।

२. मोतीचन्द्र — ऐनशण्ट इण्डियन आइवरीज – पृ० ४-६३, फलक – २ए।

३. श्री वासुदेव शरण अग्रवाल — लम्पसकस से प्राप्त भारत लक्ष्मी की मूर्ति – नागरी प्रचारिणी पत्रिका – विक्रमांक – वैशाख – माघ, २०००, पृष्ठ ३९-४२।

४. महाभारत — सभा पर्व – उपायन पर्व – ३०।

५. तामलुक — इण्डियन आर्केआलाजी – १९५४-५५, प्लेट ३९-३; काला – टेरा कोटा फिगरेन्स फ्राम कौशाम्बी, प्लेट ५ ए तथा प्लेट १४-२; मसोन – गोविन्द चन्द्र – मसोन की मृण्मूर्तियाँ 'आज' ५ जनवरी, १९५८।

पूर्ण मूर्ति कलकता संग्रहालय में है, जिसमें देवी एक विकसित कमल पर स्थित हैं। इससे यह अनुमान होता है कि ये सभी मूर्तियाँ लक्ष्मी की हैं । अब यह प्रश्न उठता है कि इनके मस्तक के चारों ओर ये आयुध क्यों बनाये गये हैं । कदाचित् इन्हें राज्यदा या राज्य देनेवाली देवी के रूप में यहाँ प्रस्तुत किया गया है, जैसा धम्मपद की अट्ट कथा में इनका रूप मिलता है--"राज्य श्री दायका देवता" । इसी कारण इनके मस्तक के पीछे त्रिशूल, इन्द्र का वज्र, तीर, गज का अंकुश, परशु इत्यादि बनाये गये हैं । इनके मस्तक पर विविध प्रकार के आभूषण हैं, जिनमें मौली प्रधान रूप से दिखाई गई है । इस मौली से लटकते हुए मोती के दो गुच्छे दिखाई देते हैं । कानों में भारी झुमके हैं, गले में कण्ठा तथा हार है और हार से लटकती हुई मोती की दो लड़ियाँ स्तनों के बीच से होती हुई कटि प्रदेश तक आती हैं । बाहुओं में अंगद तथा मणिबन्ध पर भारी वलय हैं । कटि में मणियों की भारी करधनी तथा पैरों में भारी नूपुर और चूड़ियाँ हैं । कभी इनका हाथ एक कमर पर तथा दूसरा उठा हुआ एक वस्त्र पकड़े हुए है, तो कभी दोनों कर एक-दूसरे पर हैं, इत्यादि । ये मूर्तियाँ कदाचित् उसी प्रकार पूजन में व्यवहार होती थीं जैसे आजकल लक्ष्मी की मूर्ति का व्यवहार दिवाली के पूजन पर होता है ।

भाजा के विहार में, जो प्रायः इसी काल का है, एक डेहरी पर एक अर्ध चन्द्राकार पंखड़ियाँ हैं । देवी के दोनों ओर दो हाथी सूँड़ ऊँची किये हुए इनको घट से स्नान करा रहे हैं । दोनों हाथों से ये दो कमल के फूल पकड़े हुए हैं । इसी फलक में चार उपासक भी दिखाये गये हैं । इस मूर्ति को कुमार स्वामी ने माया देवी (बुद्ध की माता) की बताया है ।[१] परन्तु उपासकों को देखकर ही हमें यह धारणा न बनानी चाहिये कि ये माया देवी हैं, क्योंकि श्री सूत्र में हमें इनके चार ऋषि प्राप्त होते हैं : चिक्लीत, मणिभद्र इत्यादि । सम्भवतः ये उपासक वे ही चारों ऋषि हैं । जैसा भारहुत के एक फलक पर हम देखते हैं ।[२] बुद्ध को भी कुषाणकाल में सिंहासन पर ही दिखाया है, कमलासन पर नहीं । पद्म-आसीन बुद्ध तो गुप्त काल में बने । इससे यह प्रतीत होता है कि यह लक्ष्मी का ही आसन था और इस कारण यह मूर्ति भी उन्हीं की होनी चाहिये । संकिसा से भी एक मृण फलक प्राप्त हुआ है, जिसमें लक्ष्मी को गज स्नान करा रहे हैं[३]। इसी प्रकार का एक फलक मथुरा से भी प्राप्त हुआ था, जो बोस्टन म्युजियम में है । खण्ड गिरि की गुफा में भी एक गजलक्ष्मी की मूर्ति प्राप्त होती है । इसमें लक्ष्मी खड़ी हैं । ये अपने दोनों करों में दो विकसित कमल धारण किये हुए हैं । वे एक कमल पर स्थित हैं। इनके दोनों ओर दो हाथी कमलों के दो फूलों पर खड़े हैं और अपनी सूँड़ उठाये हुए लम्बे घटों से लक्ष्मी को स्नान करा रहे हैं । इन हाथियों के पीछे भी दो हाथी खड़े हैं । लक्ष्मी के और हाथियों के बीच में कमल की पत्तियाँ तथा कलियाँ भी दिखाई गयी हैं । यहाँ सभी कमल एक सरोवर से निकलते हुए दिखाई देते हैं । ऊपर के भाग में सिंह तथा और पशु बने हुए हैं ।[४] लक्ष्मी के मस्तक पर मौली है, गले में हार, हाथ में चूड़ी, कटि में मणिमेखला तथा पैरों में नूपुर हैं (फलक १० क) ।

कौशाम्बी से एक मृण फलक प्राप्त हुआ है जो प्रायः शुंगकालीन ज्ञात होता है । इसमें लक्ष्मी एक सप्त दल कमल पर खड़ी हैं । (फलक ९ ङ) बायाँ हाथ इनका कटि पर है तथा दक्षिण कर उठा हुआ एक कमल को धारण किये हुए है । पदतल के नीचे एक सरोवर है, जिसमें से कई कमल की कलियाँ तथा फूल निकल रहे

---

१. **कुमार स्वामी -- हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेजियन आर्ट - (१९२७) पृष्ठ २९ ।**

२. **जिम्मर -- दी आर्ट ऑफ इण्डियन एशिया - प्लेट ३१ डी ।**

३. **कनिंघम -- आर्कआलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट - खण्ड ११, पृष्ठ २९ ।**

४. **कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया - प्लेट २७-७५ ।**

परन्तु इन सबसे सुन्दर तो एक गजलक्ष्मी की मूर्ति मथुरा से मिली है, जो मथुरा के राजकीय संग्रहालय में है (फलक ८१ च)। इस शुंगकालीन मूर्ति में दो गज घटों से लक्ष्मी को स्नान करा रहे हैं। ये गज दो विकसित कमलों पर खड़े हैं, जिनके नाल खम्भों की भाँति दिखाई देते हैं। लक्ष्मी खड़ी हैं, इनका बायाँ हाथ कटि पर है और दाहिना ऊपर उठा हुआ है और उसमें कमल का फूल है। एक कमल का फूल देवी के बाईं ओर भी है। मस्तक पर पगड़ी है, कन्धे पर उत्तरीय तथा कमर में धोती है। गले में मणिजटित टिकड़ों का कण्ठा है, कान में गोल कुण्डल, कटि पर भारी करधनी है। करधनी से लटकती हुई मणियों की लड़ियाँ हैं, जैसी फलक ९ (घ) पर उद्धृत मृणमूर्ति के चित्र में दिखाई देती हैं। मणिबन्धों पर वलय दिखाई देते हैं। इनके पीछे की ओर पानी की धार के दोनों ओर मुद्राएँ दिखाई देती हैं[1]। इसी प्रकार की एक और गजलक्ष्मी की मूर्ति मथुरा संग्रहालय में है। एक और लक्ष्मी की मूर्ति पद्म लिये हुए यहीं से प्राप्त हुई है। इसी प्रकार की एक शुंगकालीन मृणमूर्ति गजलक्ष्मी की वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के संग्रहालय में भी है। यह मूर्ति बैठी हुई है और इसे दो गज स्नान करा रहे हैं। यह मूर्ति इतनी जीर्ण हो गई है कि इसके विविध अंग स्पष्ट दिखाई नहीं देते। फिर भी यह मूर्ति उसी परम्परा की होने के कारण अपना विशिष्ट स्थान रखती है। एक हड्डी की बनी लक्ष्मी की मूर्ति मथुरा के चौरासी टीले से प्राप्त हुई है। यह मूर्ति ईसा के प्रथम शताब्दी के काल की प्रतीत होती है। इसे भी डॉ० मोतीचन्द्र ने लक्ष्मी की मूर्ति बताया है।[2] यहाँ भी देवी विविध आभूषणों से आभूषित हैं और नग्न अवस्था में दिखाई गयी हैं।

लक्ष्मी की प्रतिमा भारत-लक्ष्मी के स्वरूप में 'लम्पसकस' से प्राप्त एक रजत की थाली पर बनी हुई है।[3] यह प्रतिमा रोमदेशीय संभ्रान्त महिला के रूप में दिखाई गई है। मस्तक से दो सींग निकले हुए हैं। कदाचित् उस समय इस प्रदेश के विशिष्ट पुरुष और स्त्रियाँ अपने मस्तक पर श्रृंग धारण करते थे, जैसा महाभारत के सभापर्व के अन्तर्गत उपायन पर्व के निम्नांकित श्लोक से ज्ञात होता है—

'शकास्तुषारा: कङ्काश्च रोमशा: शृङ्गिणो नरा:।'[4]

मस्तक पर एक पगड़ी है, गले में एक तौक है, बाहुओं पर अनन्त तथा मणिबन्धों पर वलय, एक उत्तरीय कन्धे पर है, नीचे के भाग में धोती है, पैरों में यूनानी स्त्रियों की भाँति चप्पल हैं, एक हाथ में धनुष है, दूसरा हाथ आश्चर्य की मुद्रा में है। ये हाथी-दाँत के सिंहासन पर बैठी हुई हैं। इनके दोनों ओर वे भारतीय पशुपक्षी हैं जो भारत से बाहर के देशों में भेजे जाते थे, जैसे तोता, बघेरी नस्ल के कुत्ते इत्यादि। शुंग-काल की और मृणमूर्तियाँ जो लक्ष्मी की हो सकती हैं। इनमें कौशाम्बी, पटना, तामलुक, मसोन इत्यादि स्थानों से प्राप्त मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं।[5] प्रायः ये मूर्तियाँ नीचे से खण्डित हैं तथा इनके मस्तक के एक ओर विविध अस्त्र बने हैं। एक

---

१. श्री कृष्णदत्त वाजपेयी—'मथुरा' उत्तर प्रदेश के सांस्कृतिक केन्द्र – शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, फलक ६।

२. मोतीचन्द्र — ऐनशण्ट इण्डियन आइवरीज – पृ० ४-६३, फलक – २ए।

३. श्री वासुदेव शरण अग्रवाल — लम्पसकस से प्राप्त भारत लक्ष्मी की मूर्ति – नागरी प्रचारिणी पत्रिका – विक्रमांक – वैशाख – माघ, २०००, पृष्ठ ३९-४२।

४. महाभारत — सभा पर्व – उपायन पर्व – ३०।

५. तामलुक — इण्डियन आर्केआलाजी – १९५४-५५, प्लेट ३९-३; काला – टेरा कोटा फिगरेन्स फ्राम कौशाम्बी, प्लेट ५ ए तथा प्लेट १४-२; मसोन – गोविन्द चन्द्र – मसोन की मृण्मूर्तियाँ 'आज' ५ जनवरी, १९५८।

पूर्ण मूर्ति कलकत्ता संग्रहालय में है, जिसमें देवी एक विकसित कमल पर स्थित हैं। इससे यह अनुमान होता है कि ये सभी मूर्तियाँ लक्ष्मी की हैं। अब यह प्रश्न उठता है कि इनके मस्तक के चारों ओर ये आयुध क्यों बनाये गये हैं। कदाचित् इन्हें राज्यदा या राज्य देनेवाली देवी के रूप में यहाँ प्रस्तुत किया गया है, जैसा धम्मपद की अट्ट कथा में इनका रूप मिलता है--"राज्य श्री दायका देवता"। इसी कारण इनके मस्तक के पीछे त्रिशूल, इन्द्र का वज्र, तीर, गज का अंकुश, परशु इत्यादि बनाये गये हैं। इनके मस्तक पर विविध प्रकार के आभूषण हैं, जिनमें मौली प्रधान रूप से दिखाई गई है। इस मौली से लटकते हुए मोती के दो गुच्छे दिखाई देते हैं। कानों में भारी झुमके हैं, गले में कण्ठा तथा हार है और हार से लटकती हुई मोती की दो लड़ियाँ स्तनों के बीच से होती हुई कटि प्रदेश तक आती हैं। बाहुओं में अंगद तथा मणिबन्ध पर भारी वलय हैं। कटि में मणियों की भारी करधनी तथा पैरों में भारी नूपुर और चूड़ियाँ हैं। कभी इनका हाथ एक कमर पर तथा दूसरा उठा हुआ एक वस्त्र पकड़े हुए है, तो कभी दोनों कर एक-दूसरे पर हैं, इत्यादि। ये मूर्तियाँ कदाचित् उसी प्रकार पूजन में व्यवहार होती थीं जैसे आजकल लक्ष्मी की मूर्ति का व्यवहार दिवाली के पूजन पर होता है।

भाजा के विहार में, जो प्रायः इसी काल का है, एक डेहरी पर एक अर्ध चन्द्राकार पंखड़ियाँ हैं। देवी के दोनों ओर दो हाथी सूँड़ ऊँची किये हुए इनको घट से स्नान करा रहे हैं। दोनों हाथों से ये दो कमल के फूल पकड़े हुए हैं। इसी फलक में चार उपासक भी दिखाये गये हैं। इस मूर्ति को कुमार स्वामी ने माया देवी (बुद्ध की माता) की बताया है।[1] परन्तु उपासकों को देखकर ही हमें यह धारणा न बनानी चाहिये कि ये माया देवी हैं, क्योंकि श्री सूत्र में हमें इनके चार ऋषि प्राप्त होते हैं : चिक्लीत, मणिभद्र इत्यादि। सम्भवतः ये उपासक वे ही चारों ऋषि हैं। जैसा भारहुत के एक फलक पर हम देखते हैं।[2] बुद्ध को भी कुषाणकाल में सिंहासन पर ही दिखाया है, कमलासन पर नहीं। पद्म-आसीन बुद्ध तो गुप्त काल में बने। इससे यह प्रतीत होता है कि यह लक्ष्मी का ही आसन था और इस कारण यह मूर्ति भी उन्हीं की होनी चाहिये। संकिसा से भी एक मृण फलक प्राप्त हुआ है, जिसमें लक्ष्मी को गज स्नान करा रहे हैं[3]। इसी प्रकार का एक फलक मथुरा से भी प्राप्त हुआ था, जो बोस्टन म्युजियम में है। खण्ड गिरि की गुफा में भी एक गजलक्ष्मी की मूर्ति प्राप्त होती है। इसमें लक्ष्मी खड़ी हैं। ये अपने दोनों करों में दो विकसित कमल धारण किये हुए हैं। वे एक कमल पर स्थित हैं। इनके दोनों ओर दो हाथी कमलों के दो फूलों पर खड़े हैं और अपनी सूँड़ उठाये हुए लम्बे घटों से लक्ष्मी को स्नान करा रहे हैं। इन हाथियों के पीछे भी दो हाथी खड़े हैं। लक्ष्मी के और हाथियों के बीच में कमल की पत्तियाँ तथा कलियाँ भी दिखाई गयी हैं। यहाँ सभी कमल एक सरोवर से निकलते हुए दिखाई देते हैं। ऊपर के भाग में सिंह तथा और पशु बने हुए हैं।[4] लक्ष्मी के मस्तक पर मौली है, गले में हार, हाथ में चूड़ी, कटि में मणिमेखला तथा पैरों में नूपुर हैं (फलक १० क)।

कौशाम्बी से एक मृण फलक प्राप्त हुआ है जो प्रायः शुंगकालीन ज्ञात होता है। इसमें लक्ष्मी एक सप्त दल कमल पर खड़ी हैं। (फलक ९ ङ) बायाँ हाथ इनका कटि पर है तथा दक्षिण कर उठा हुआ एक कमल को धारण किये हुए है। पदतल के नीचे एक सरोवर है, जिसमें से कई कमल की कलियाँ तथा फूल निकल रहे

---

१. कुमार स्वामी -- हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट - (१९२७) पृष्ठ २९।

२. जिम्मर -- दी आर्ट ऑफ इण्डियन एशिया - प्लेट ३१ डी।

३. कनिंघम -- आर्केआलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट - खण्ड ११, पृष्ठ २९।

४. कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया - प्लेट २७-७५।

हैं। इनके मस्तक पर ओढ़नी है। गले में हार, बाहु में अंगद, हाथ में वलय, कटि में मेखला तथा पैरों में नूपुर हैं। दाहिना पैर कुछ मुड़ा हुआ नृत्य की मुद्रा में है। मुख भी दाहिनी ओर कुछ घूमा हुआ दिखाई देता है।[1]

कौशाम्बी से चुनार के पत्थर का एक फलक भी प्राप्त हुआ है, जिस पर एक ओर साँची की भाँति की गजलक्ष्मी की खड़ी प्रतिमा है, जो पद्मकोश पर स्थित दिखाई गयी हैं। कमल की पत्तियाँ नीचे की ओर लटकी हुई हैं। दोनों हाथों से ये दो कमल नाल पकड़े हुए हैं। इन्हीं कमल-नालों के फूलों पर दो हाथी खड़े अपनी सूँड़ों से घटों को उठाये हुए इनका जल से अभिषेक कर रहे हैं। इनके दोनों ओर कमल की पत्तियाँ, कमल की कलियाँ इत्यादि दिखाई गयी हैं। जिस कमल पर ये स्थित हैं उसके नीचे भी कमल के फूल, फल, अधखिले कमल, कमल की पत्तियाँ बनी हैं। ये सब एक मंगल कलश से प्रस्फुटित हो रहे हैं, जो एक वेदी पर रखा है।[2] लक्ष्मी के मस्तक पर एक ओढ़नी है जिसके सामने की ओर से ललाटिका थोड़ी-सी बाहर निकल कर झाँक रही है। कानों में कुण्डल, गले में हार, मणिवन्ध पर कंगन, कटि में कमरबन्द तथा धोती है। उत्तरीय के दोनों छोर दोनों हाथों पर लटक रहे हैं। ये पीन-पयोधरा तथा प्रसन्नवदना प्रदर्शित की गयी हैं (फलक ११)।

एक और पाषाण खण्ड (चुनार के पत्थर का) यहाँ से प्राप्त हुआ है, जिस पर लक्ष्मी नग्न रूप में पद्म पर खड़ी प्रदर्शित की गयी हैं (फलक १० ख)। इनका बायाँ हाथ कटि पर है तथा दक्षिण कर में ये कमल धारण किये हुए हैं। गज कमलों पर खड़े सूँड़ उठा कर घटों से इनको अभिषेक करा रहे हैं। देवी के मस्तक पर ओढ़नी है, ललाट पर ललाटिका, कानों में कुण्डल, गले में मोतियों की माला, मणिवन्ध पर चूड़ियाँ तथा एक-एक कंगन, कमर में एक लड़ी की मणियों की करधनी है, पाँव में नूपुर हैं। इस मूर्ति का अधोभाग नग्न है। इसी पाषाण-खण्ड पर उनके बाईं ओर एक हाथी बना है और दाहिने ओर एक वृषभ। वृषभ के पश्चात् एक स्वस्तिक है जो पत्तियों से बनाया गया है, उसके पश्चात् एक यक्ष की मूर्ति है। इस पाषाण-खण्ड के अन्त में एक मगर बना है। यह पत्थर किसी मन्दिर का तोरण ज्ञात होता है (फलक ११)। इस प्रकार स्पष्ट लक्ष्मी का सम्बन्ध हाथी, स्वस्तिक, यक्ष से मिलता है। लक्ष्मी का कृषि से प्राप्त होना तथा जल के मार्ग से मिलना यहाँ वृषभ तथा मगर द्वारा दिखाया गया है।[3]

गजलक्ष्मी की एक विचित्र मृण मूर्ति कौशाम्बी से और प्राप्त हुई है जो ईसा की पहिली शताब्दी की है।[4] यह हारीनती के साथ मिली थी और एक मन्दिर में स्थापित थी।[5] यह मृणमूर्ति प्रायः २½ फुट की है। इस स्थान से प्राप्त मृण मूर्तियों में यह सबसे बड़ी है। इस मूर्ति के मस्तक पर एक मुकुट है, जिसमें दो गज घटों से इनके मस्तक पर पानी छोड़ रहे हैं। मस्तक पर इनके ललाटिका, कानों में पत्र कुण्डल, गले में माला, बाहु में अंगद, मणिबन्धों पर वलय, कमर में करधनी तथा पैरों में नूपुर हैं। नीचे के अंग में धोती धारण किये हुए हैं, ऊपर का अंग खुला है। एक हाथ अभय मुद्रा में है तथा दूसरा एक कमल को लिये हुए है (फलक १२)। ऐसा ज्ञात होता है कि बौद्ध उपासकों में हारिति के साथ लक्ष्मी का भी पूजन इस काल में चालू हो

१. काला — टेराकोटा फिगरिन्स फ्राम कौशाम्बी – प्लेट २१, पृष्ठ ३४-३५।
२. इण्डियन आर्केआलाजी — १९५६-५७, प्लेट ३८ ए, चित्र प्रो० जी० आर० शर्मा, प्रयाग विश्व-विद्यालय की कृपा से प्राप्त।
३. काला — स्कल्पचर्स इन दी इलाहाबाद म्युजियम, प्लेट १६–ए।
४. यह मूर्ति प्रयाग विश्वविद्यालय के कौशाम्बी म्युजियम की है तथा इसकी प्रतिकृति प्रो० शर्मा की कृपा से प्राप्त हुई है।
५. इण्डियन आर्केआलाजी, १९५७-५८

गया था, क्योंकि जिस स्थान पर यह मूर्ति प्राप्त हुई है वह बौद्ध विहारों के अन्तर्गत है। जैसा पहिले लिखा जा चुका है, मलिन्द पन्ह में कुछ पंथों के नाम मिलते हैं, उनमें श्री देवता, काली, यक्ष, मणिभद्र इत्यादि के नाम हैं।[1] इससे इस बात की पुष्टि होती है।

कुछ पीछे के काल के दो मृण फलक और प्राप्त हुए हैं[2], जिनमें एक में दो स्त्रियाँ लक्ष्मी के दोनों ओर खड़ी चँवर डुलाती हुई दिखाई गई हैं तथा दूसरे में लक्ष्मी साड़ी पहिने हुए दिखाई गई हैं। ये मूर्तियाँ उत्तर कुषाणकालीन ज्ञात होती हैं। तक्षशिला से प्राप्त अँगूठी के नगीने की चर्चा पहिले की जा चुकी है। जो यहाँ मूर्तियाँ मिली हैं उनमें एक मूर्ति ऐसी है जिसके हाथ में एक फूल है, जो कमल का हो सकता है। इस मूर्ति का केश-कलाप बड़ा सुन्दर है (फलक १३ क), गले में हार, बाहु में अंगद तथा मणिबन्ध पर वलय हैं। इनके वक्षस्थल पर एक छन्नवीर भी दिखाई देता है। कटि में मणियों की मेखला है, जिसके बीच में एक चौकोर टिकड़ा लगा है। ये धोती पहिने हैं, परन्तु इनका अधोभाग नग्न है।[3] बायाँ हाथ कटि के पास है। एक और मूर्ति बैठी हुई मिली है जिसके हाथ में धान के गट्टे के भाँति की एक वस्तु है जो कमलगट्टा भी हो सकता है। यह आरडोक्षो की मूर्ति के भाँति है[4], जिसका निखरा हुआ स्वरूप हमें कुषाण सिक्कों पर प्राप्त होता है।[5] ईरान की इस देवी का हमारी लक्ष्मी से प्राचीन काल में कोई अन्तर नहीं था।

मृण मूर्तियों में एक मूर्ति वैसे ही अपने स्तन पर हाथ रखे हुए है जैसे भारहुत की गजलक्ष्मी। इस कारण इसे लक्ष्मी की मूर्ति मानना चाहिये (फलक १३ घ)। ये मस्तक पर से ओढ़नी ओढ़े हुए हैं तथा दाहिना हाथ बगल में लटका हुआ है। मूर्ति घिस जाने के कारण यह ठीक पता नहीं चलता कि ये कौन-कौन से आभूषण पहिने हुए थीं।[6] एक और मूर्ति हाथ में सूप की भाँति का वर्तन लिये हुए यहाँ मिलती है। यह भी दीपलक्ष्मी की मूर्ति हो सकती है (फलक १३ घ)। इन्हें देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि जैसे सूप में भर कर धन अथवा धान्य प्रदान कर रही हों। ये भी सिर पर से ओढ़नी ओढ़े हुए हैं। इनके कानों में कुण्डल, गले में हार तथा कण्ठ और बाहु पर अंगद दिखाई दे रहा है।[7]

हड्डी में खोदी हुई प्रायः तीन मूर्तियाँ यहाँ ऐसी मिलती हैं जिन्हें देखने से ऐसा अनुमान होता है कि ये लक्ष्मी की हैं। इनमें दो मूर्तियों में देवी बायें हाथ से अपनी मेखला पकड़े हैं तथा दक्षिण कर स्तन पर है (फलक १३ ख)। कानों में इनके कुण्डल, गले में हार, बाहु में अंगद, मणिबन्धों पर चूड़ियाँ, कटि में मेखला तथा पैरों में नूपुर हैं।[8]

मथुरा से भी लक्ष्मी की एक बड़ी सुन्दर मूर्ति प्राप्त हुई है, जिसमें देवी एक हाथ अपने स्तनों पर रखे हुए दो विकसित कमलों पर खड़ी हैं, पीछे की ओर कमल इत्यादि बने हुए हैं (फलक ६ ग, घ)। यह मूर्ति,

---

१. कुमार स्वामी -- यक्षाज - भाग २, पृष्ठ ११।
२. काला -- कौशाम्बी की मृण मूर्तियाँ - सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ ३०१-३०८, प्लेट पृष्ठ ३०६ पर।
३. मार्शल -- तक्षशिला, प्लेट २११ नं० ३ए तथा ३ बी०।
४. वही -- उपर्युक्त - प्लेट २११ - नं० १।
५. वही -- उपर्युक्त - प्लेट १९१ नं० ९५।
६. वही -- उपर्युक्त - प्लेट १३१ नं० १७।
७. वही -- उपर्युक्त - प्लेट १२९ नं० १४१।
८. वही -- उपर्युक्त - प्लेट २०३ - एल-बी० नं० ४५, एल-बी० नं० ४६।

विकसित कमल, जो एक घट से निकल रहे हैं, उनके समक्ष बनी है। पीछे की ओर दो मोर बने हुए हैं, आगे दो विकसित कमलों पर दो पैर रखे लक्ष्मी खड़ी हैं। इनके दाहिने हाथ में एक कपड़ा है और बायाँ हाथ दाहिने स्तन पर है, जैसे तक्षशिला की देवी का है। कानों में कुण्डल, गले में एकावली, बाहु पर केयूर, मणिबन्धों पर चूड़ी तथा वलय, कटि में करधनी, पैरों में नूपुर हैं।[1]

अमरावती से प्राप्त आन्ध्र कला के एक पाषाण-खण्ड पर एक लक्ष्मी की बैठी हुई प्रतिमा प्राप्त हुई है (फलक १४)। इस मूर्ति की भाव-भंगी विचित्र है। ये एक पैर मोड़े हुए तथा एक पैर लटकाये हुए कमलगट्टे पर बैठी हैं। ऊपर बायें कमल बने हुए हैं तथा इनके मस्तक पर से समुद्र की लहरें दिखाई गयी हैं। इनके समक्ष एक बड़ा-सा मकर बना है। मस्तक पर बिन्दी और वेनी है। कानों में गोल कानपाशा है। ग्रीवा में ग्रैवेयक तथा हार है। बाहु पर अंगद तथा मणिबन्धों पर वलय है। हार का एक भाग लटकता हुआ कमर पर झूल रहा है। पैरों में नूपुर हैं। समुद्र से लक्ष्मी की प्राप्ति का यहाँ भाव प्रदर्शित किया गया है।[2] इसी फलक पर एक यक्ष भी है।

इससे भी पूर्व बसाढ़ से प्राप्त एक नाव पर बनी लक्ष्मी की मूर्ति भी इसी तथ्य की द्योतक है।[3] इस देवी का बायाँ हाथ कमर पर है तथा दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है। नीचे के अंग में धोती पहिने हुए हैं। बाईं ओर शंख बना हुआ है और उसके बायें एक पशु खड़ा है।

बेसनगर से भी एक लक्ष्मी की मूर्ति प्राप्त हुई है, जिसे कनिंघम ने और वस्तुओं के साथ वहाँ से पाया था[4]।

लक्ष्मी की मूर्ति इतनी शुभ मानी जाती थी कि सिक्कों पर तथा मोहरों पर भी इनको दिखाने का प्रयत्न किया गया है (तक्षशिला से प्राप्त सिक्के पर – फलक ६ङ)। कौशाम्बी से प्राप्त एक सिक्के पर गजलक्ष्मी की मूर्ति प्राप्त होती है जो प्रायः ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी की है। विशाखदेव, शिवदत्त, वायुदेव राजाओं के सिक्कों पर इनकी मूर्ति मिलती है, जो ईसा पूर्व पहिली शताब्दी में अयोध्या में राज्य करते थे। उज्जैन के भी ढले हुए सिक्कों पर ये दिखाई देती हैं जो प्रायः ईसा पूर्व दूसरी और तीसरी शताब्दी के बीच की हैं। लक्ष्मी देवी का इतना मान बढ़ गया था कि बाहर के शासकों के सिक्कों पर भी ये अंकित की गयीं। अजाइलिसेस (फलक ६ख), राजुवुला, शोदास के सिक्कों पर ये गजलक्ष्मी के रूप में पाई जाती हैं। पद्मवासिनी के रूप में मध्य एशिया की दीवारों पर भी ये दिखाई देती हैं।[5] पद्मस्थिता, पद्महस्ता लक्ष्मी खड़ी अथवा बैठी हुई उज्जैनी के ब्रह्ममित्र, द्रिवमित्र, सूर्य मित्र, विष्णुमित्र, पुरुषदत्त, उत्तमदत्त तथा पांचाल के भद्रघोष के सिक्कों पर दिखाई देती है।[6] इसी प्रकार अगाथोक्लीड के सिक्कों पर तथा पुष्कलवती की देवी के स्वरूप में भी हमें लक्ष्मी प्राप्त होती हैं।[7]

---

१. मोतीचन्द्र –– पद्मश्री – पृष्ठ ५०५, फिगर ७ए।
२. जे० एन० बैनर्जी –– उपर्युक्त प्लेट ८-६, पृष्ठ ३७४, ईसा की दूसरी शताब्दी; मोतीचन्द्र – उपर्युक्त– फिगर १६।
३. मोतीचन्द्र –– उपर्युक्त – फिगर २७ – आर्केआलाजिकल सर्वे रिपोर्ट – १९१३-१४, पृष्ठ १२९-१३०, प्लेट ४६-९३।
४. जे० एन० बैनर्जी –– उपर्युक्त – पद्मिनी विद्या – जे० आई० एस० ओ० ए० – १९४१, पृष्ठ १४१-१४६।
५. कुमार स्वामी –– अर्ली इण्डियन आइकॉनोग्राफी – इस्टर्न आर्ट – खण्ड १, पृ० १७८।
६. जे० एन० बैनर्जी –– उपर्युक्त – पृष्ठ ११०-१११।
७. ए० के० कुमारस्वामी –– अर्ली इण्डियन आइकोनोग्राफी – ईस्टर्न आर्ट – खण्ड १, पृष्ठ १७५ तथा आगे।

वसाढ़ से प्राप्त कुछ मोहरों पर गजलक्ष्मी की मूर्ति प्राप्त होती है।[१] कुमारामात्याधिकरण मोहर पर लक्ष्मी पेड़ों के बीच खड़ी हैं, हाथी उन पर पानी छोड़ रहे हैं तथा दो यक्ष रुपयों की थैली लिये हुए खड़े हैं।[२] इसी प्रकार की एक दूसरी मोहर प्राप्त हुई है जिसमें यक्ष नहीं उपस्थित हैं[३] और दूसरा नमूना प्राप्त हुआ है, जिसमें लक्ष्मी छः पंखड़ीवाला फूल बायें हाथ में लिये खड़ी हैं तथा यक्ष गोल बर्तन से रुपया उड़ेल रहे हैं (फलक ९ क)।[४] इससे भी बढ़कर एक दूसरी मूर्ति एक और मोहर पर प्राप्त होती है, जिसमें हाथी, जो देवी को स्नान करा रहे हैं, कमल के फूल पर खड़े हैं और उनके पीछे यक्ष घुटना टेके हुए हैं। उनके सिरों पर एक गोल-सा बिल्ला लगा हुआ है और ये रुपया बिखेर रहे हैं।[५] एक और मोहर यहीं से प्राप्त हुई है जिसमें लक्ष्मी एक नीची चौकी पर खड़ी हैं और हाथी दोनों ओर से उनको स्नान करा रहे हैं, इनकी बाईं ओर शंख है, दक्षिण ओर एक रुपये की थैली सी वस्तु दिखाई देती है। इस मुहर पर के लेख 'वैशाली नाम कुण्डे कुमारामात्याधिकरणस्य' से ऐसा ज्ञात होता है कि यह मरकट ह्रद के किसी कुण्ड की खुदाई से सम्बन्धित है।[६] एक और पतली-सी मोहर पर लक्ष्मी देवी की प्रतिमा प्रतीत होती है, इसमें दक्षिण कर आगे बढ़ा हुआ है और बायाँ हाथ कमर पर है, एक कमल को लिये हुए एक बदामा मोहर पर इसी प्रकार की लक्ष्मी की मूर्ति बनी है, परन्तु इसमें एक लम्बी कमल के फूल की डण्डी देवी के बायें कर में है।[७] इससे पहिलेवाली मोहर की देवी का भी ठीक ज्ञान हो जाता है। ये सभी मोहरें गुप्त युग के प्रारम्भिक काल की ज्ञात होती हैं।

भीटा से प्राप्त मोहरों पर भी गजलक्ष्मी की मूर्तियाँ मिली हैं। इनमें एक में लक्ष्मी का दक्षिण कर अभय मुद्रा में है तथा दूसरा कर गरुड़ पर। इनके दक्षिण की ओर एक चक्र है। इनको दो गज कमलों पर खड़े स्नान करा रहे हैं। नीचे के लेख में 'विष्णु रक्षित' लिपि में मिलता है, इससे भी वैष्णवों की देवी लक्ष्मी की मान्यता यहाँ सिद्ध होती है।[८] एक और मोहर पर गजलक्ष्मी के साथ दो यक्ष हाथ जोड़े हुए कमल पर बैठे हुए दिखाई देते हैं, जैसे उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करते हों।[९] एक अन्य मोहर पर ये देवी पूर्ण विकसित कमल पर खड़ी हैं, इनके दोनों हाथ उठे हुए हैं। दक्षिण कर में शंख है तथा बायें में थैली, जिसमें से निकल कर मुद्राएँ नीचे गिरी हैं, जो गोल वृत्त से दिखाई गई हैं।[१०] यहाँ प्रायः मूर्तियाँ गरुड़ के साथ अथवा बिना गरुड़ के मिली हैं।

राजघाट से प्राप्त कुछ मोहरों पर भी लक्ष्मी की मूर्ति प्राप्त होती है। एक मोहर पर जिसमें 'वाराणस्याधि (स्था) नाधिकरणस्य' गुप्त लिपि मे लिखा है, एक देवी कमल पर खड़ी हैं। उनके दक्षिण की ओर

---

१. टी० ब्लाच —— एक्सकवेशन्स एट वसाढ़ – आर्केआलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया – एनुअल रिपोर्ट १९०३-०४, पृष्ठ १०७ तथा आगे प्लेट ४०-४१।
२. टी० ब्लाच —— उपर्युक्त – सील नं० ३ इसके तीन नमूने प्राप्त हुए थे।
३. वही —— उपर्युक्त – सील नं० ४ इसके २८ नमूने प्राप्त हुए थे, प्लेट ४०-१०।
४. वही —— ब्लाच – उपर्युक्त – सील नं० ५ इसके ९ नमूने प्राप्त हुए थे।
५. वही —— उपर्युक्त – सील नं० ६ प्लेट १।
६. वही —— उपर्युक्त – सील नं० २००, पृष्ठ १३४, प्लेट ४७।
७. वही —— उपर्युक्त – सील नं० २०८ तथा ३१४।
८. मार्शल —— आर्केआलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट – १९११-१२ पृष्ठ ५२, प्लेट १८, सील नं० ३२।
९. वही —— उपर्युक्त – सील नं० ३५।
१०. वही —— उपर्युक्त – सील नं० ४२।

एक चक्र है, जो सिंहासन पर स्थित है और बाईं ओर एक अस्पष्ट वस्तु है। उनके करों में थैलियाँ हैं जिनसे सिक्के गिर रहे हैं। एक और मोहर राजघाट से इसी काल की मिली है, जिस पर 'कुमारामात्याधिकरण' अंकित है। जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि यह कुमार गुप्त के काल की है। इस पर गजलक्ष्मी की सुन्दर मूर्ति बनी है।[१] गुप्तकाल के सिक्कों पर लक्ष्मी की जो मूर्तियाँ मिलती हैं, उनमें वे प्रायः पद्म के ऊपर स्थित हैं तथा एक हाथ में पद्म धारण किये हुए हैं तथा दूसरे में पाश।[२] ये योग आसन में दोनों एड़ी उठाकर पंजे नीचे की ओर किये हुए बैठी हैं (फलक ९ ग)। किसी-किसी सिक्के में इनके एक हाथ में कमलगट्टा है तथा ये एक मोढ़े पर बैठी हैं।[३] कुमार गुप्त के सिक्के पर ये मोर को मोती चुगा रही हैं। और एक सिक्के पर ये सिंह पर बैठी हैं।[४]

देवगढ़ के शेषशायी विष्णु की मूर्ति में ये भगवान् का चरण अपनी गोदी में रखे एक हाथ से तलवा सहला रही हैं।[५] जैसा वर्णन हमें विष्णु धर्मोत्तर पुराण में प्राप्त होता है। इनके मस्तक पर किरीट है, कानों में कुण्डल, गले में तौक तथा बाहु में केयूर और हाथ में वलय हैं। नीचे का भाग दिखाई नहीं देता। अहिछीली की जो अनन्तशायी विष्णु की मूर्ति प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम में है, उसमें लक्ष्मी के मस्तक पर विष्णु का हाथ है।[६]

(काशी में भी गुप्त काल की एक गजलक्ष्मी की मूर्ति है, जो प्रायः एक फुट ऊँची है[७]। यह काल भैरव के मन्दिर की एक गली में एक मकान की दीवार के पाषाण-खण्ड पर अंकित है।) लक्ष्मी समपाद स्थानक मुद्रा में खड़ी हैं। पैरों के नीचे का कमल दिखाई नहीं देता है। इनकी दो भुजाएँ हैं। दक्षिण कर वरद मुद्रा में है और वाम कर में एक विकसित कमल है। लक्ष्मी प्रसन्नवदना हैं। इनके दोनों ओर कमल के फूल, कली, पत्ते इत्यादि बने हुए हैं। दो कमलों पर दो हाथी स्थित हैं तथा अपनी सूड़ों को उठाकर घट से स्नान करा रहे हैं। घट घिस गये हैं। लक्ष्मी के मस्तक पर केशविन्यास है। जूड़ा ऊँचा बँधा हुआ है। कानों में कुण्डल हैं। गले में बड़े मोतियों की एक लड़ी माला है। बाहुओं पर केयूर हैं। उत्तरीय दक्षिण कर पर से होता हुआ वाम कर पर आकर नीचे लटक रहा है। अधोवस्त्र एड़ी तक दिखाई देता है। कटि में मेखला है। नूपुर नहीं दिखाई देते। मूर्ति की अर्ध-उन्मीलित आँखें तथा नीचे लटके हुए ओष्ठ तथा शरीर की बनावट, सभी इस मूर्ति को उत्तर गुप्तकाल का बताती हैं।

एक और गजलक्ष्मी की प्रायः इसी काल की आज गभतेश्वर मुहल्ले में मंगला गौरी के नाम से पूजी जाती है। इनका भी दक्षिण कर वरद मुद्रा में है तथा बायें कर में कमल है। मस्तक के पीछे की ओर दो हाथी कमल पर स्थित घटों से इनको स्नान करा रहे हैं। मूर्ति के नीचे कुछ आकृतियाँ पुरुष-स्त्रियों की दिखाई देती हैं। इनका भी केशविन्यास बड़ा सुन्दर है। जूड़ा ऊपर उठा हुआ बँधा है। कानों में कुण्डल तथा गले में

---

१. जे० एन० बैनर्जी —— डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी – पृष्ठ १९८; डॉ० मोतीचन्द्र – चतुर्मणि, पृष्ठ ८६।
२. डॉ० मोतीचन्द्र —— उपर्युक्त – फिगर २१।
३. वही —— उपर्युक्त – फिगर २२।
४. वही —— उपर्युक्त – फिगर २३; जे० एन० बैनर्जी – उपर्युक्त – प्लेट ९-१।
५. जे० एन० बैनर्जी —— उपर्युक्त – प्लेट २२-२।
६. स्टेला क्रामरिश —— दी आर्ट ऑफ इण्डिया – फिगर ६२।
७. नारायण दत्तात्रेय कालेकर – काशी की प्राचीन देव-मूर्तियाँ – 'श्रीलक्ष्मी', आज २६-१०-५७, पृष्ठ ५, कालम ३।

एकावली है। बाहु पर केयूर तथा मणिबन्धों पर वलय हैं। कटि में मेखला तथा उसके नीचे धोती है। पैरों में नूपुर हैं।

एक दूसरी मूर्ति लक्ष्मी की गणेश तथा कुबेर के साथ मिलती है जो आजकल म्यूजे गिमे में है[1] (फलक १५ ख)। इसमें लक्ष्मी की बाईं ओर गणेश तथा दाहिनी ओर कुबेर बने हुए हैं। यह इतनी घिस गयी है कि यह किस काल की है यह कहना कठिन है (फलक १५ ख); परन्तु गणेश, कुबेर तथा लक्ष्मी का सम्बन्ध यहाँ प्रत्यक्ष है। कम्बोज में भी एक शेषशायी विष्णु की मूर्ति मिलती है (फलक १५ क)। इसमें भी लक्ष्मी भगवान का चरण चापती हुई दिखाई गई हैं।[2]

इलोरा में लक्ष्मी की मूर्ति एक तालाब से निकलती हुई दिखाई गई है (फलक १६)। यह कैलासवाली गुफा में है। यहाँ के एक लेख के अनुसार जो राष्ट्रकूट लिपि में है, यह श्री के जलक्रीड़ा का द्योतक है।[3] यहाँ इनका गजलक्ष्मी का स्वरूप है। यहाँ देवी पर्यंक आसन में बैठी हैं तथा दो गज इनको स्नान करा रहे हैं। इनके दोनों ओर चतुर्भुज दो स्त्रियाँ खड़ी हैं। एक के हाथ में घट है तथा दूसरी के हाथ में बिल्वफल। यह चतुर्भुज का स्वरूप है, जैसा विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वर्णित है। इनके पद्म-आसन के नीचे दो नाग स्त्री-पुरुष दोनों ओर बने हुए हैं। दोनों के हाथ में घट हैं, एक स्त्री और पुरुष की मूर्ति और है। इसमें पुरुष अपना एक हाथ उठाये लक्ष्मी के सिंहासन को उठाये रखने का प्रयत्न कर रहा है। लक्ष्मी के मस्तक पर मुकुट, कान में कुण्डल, गले में एकावली तथा उमेठुआँ हार हाथ में वलय, पैरों में नूपुर हैं।[4] उड़ीसा के मन्दिरों के मुख्य द्वार पर प्राचीन भारत के मध्य युग की बहुत-सी गजलक्ष्मी की मूर्तियाँ पाई जाती हैं। इनके स्थान भी मन्दिरों में प्राप्त होते हैं। एक गजलक्ष्मी की बड़ी सुन्दर मूर्ति खिचिंग से प्राप्त हुई है (फलक १७ क)। इस मूर्ति में ये चौकोर आकार के मंदिर में दिखाई गई हैं। ये अर्ध-पर्यक आसन में बैठी हैं। एक पैर ऊपर है, दूसरा नीचे लटक रहा है। इनके बायें कर में एक विकसित कमल है, दाहिना हाथ वरद मुद्रा में है। इनके मस्तक पर मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में मोती की एकावली, बाहु पर अंगद, मणिबन्धों पर वलय तथा पैरों में नूपुर हैं। दो गज इनको घट उलट कर स्नान करा रहे हैं। ये भी कमल पर स्थित हैं।[5]

इलोरा की गुफाओं में मंदिर की दूसरी मंजिल में जिसे रंगमहल कहते हैं, कुछ चित्रकारी बनी हुई है। इस चित्रकारी को देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि पहिले दीवाल पर प्रायः आठवीं शताब्दी में चित्रकारी की गयी थी। पीछे चल कर उसी पर दूसरी चित्रकारी की गयी। दोनों पर्तें प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं। इसमें लक्ष्मी और विष्णु गरुड़ पर चढ़े हुए आकाश मार्ग से जाते हुए दिखाई देते हैं। लक्ष्मी हाथ जोड़े हुए गरुड़ की ग्रीवा में पैर डाले हुए बैठी हैं। इनका ऊपर का शरीर नग्न है, नीचे के अंग में धोती है, मस्तक पर मोतियों की लड़ियाँ हैं, कानों में कुण्डल, गले में हार है। हाथ में चूड़ी और कंगन, बाहु पर अंगद हैं। ये मीनाक्षी हैं। नाक सुग्गे की ठौर की भाँति है। स्तन पीन हैं, कटि पतली है तथा उँगलियाँ नुकीली हैं।[6]

---

१ कुमार स्वामी -- यक्षाज - खण्ड २ प्लेट ८, कुमार स्वामी ने गणेश को भी यक्ष माना है। इस प्रकार यक्षराज कुबेर तथा गणेश यक्ष के बीच लक्ष्मी को भी यक्षों की रानी होना चाहिये।

२. जां प्रेजी लुस्की -- ला ग्राड डी एस्स - प्लेट ८ए।

३. कुमार स्वामी -- श्रीलक्ष्मी - पृष्ठ १८२।

४. जे० एन० बैनर्जी -- डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी - पृष्ठ ३७५; टी० ए० गोपीनाथ राव - उपर्युक्त - प्लेट ११०।

५. जे० एन० बैनर्जी -- उपर्युक्त - प्लेट १८-२।

६. कुमार स्वामी -- हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेजियन आर्ट - पृष्ठ १००-१०१, फिगर १६६।

दक्षिण भारत में पल्लवों का बनवाया हुआ प्रायः नवीं शताब्दी का विरत्तनेश्वर का मन्दिर तिरूत्तनी में है। यह कस्बा चित्तूर जिले में है तथा अरकोणम् के स्टेशन के पास ही है। इस पर के अभिलेख से पता चलता है कि इस मन्दिर को नाम्नी अप्पी ने बनवाया था। यहाँ मन्दिर के द्वार पर आले के भीतर उत्तर की ओर एक देवी की मूर्ति है और दक्षिण की ओर गणेश की मूर्ति है। इस देवी की मूर्ति को कुछ लोगों ने दुर्गा की मूर्ति बताया है।[1] परन्तु है यह लक्ष्मी की मूर्ति है, क्योंकि इनके एक हाथ में शंख और दूसरे में पद्म है। यह समपाद मुद्रा में खड़ी हैं। मस्तक पर लम्बी टोपी के भाँति का मुकुट है। कानों में कुण्डल, गले में हार, बाहुओं पर केयूर, मणिबन्धों पर कंकण, कटि में मेखला और पैरों में नूपुर हैं। ऊपर के अंग में अँगिया है और नीचे के अंग पर धोती।[2] यहाँ भी लक्ष्मी की मूर्ति गणेश के साथ दिखाने से, इन दोनों के प्राचीन सम्बन्ध की परम्परा के अक्षुण्ण स्रोत का प्रमाण मिलता है।

दक्षिण के अमरपुरम् से ८ मील दूर हेमावती में पल्लवों के काल का एक दूसरा मन्दिर भी स्थित है। यह मन्दिर नोलम्बवाड़ी में है और नोलम्बों का बनवाया हुआ है।[3] ये लोग पल्लवों के ही घराने के थे। इस मन्दिर के तोरण पर एक गजलक्ष्मी की मूर्ति है। इस देवी को दो गज दोनों ओर से स्नान करा रहे हैं। देवी के दोनों ओर कुबेर और यक्षी की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इससे लक्ष्मी का स्पष्ट सम्बन्ध यक्षराज कुबेर और उनकी रानी से ज्ञात होता है। दक्षिण की ये मूर्तियाँ हमारे लिये बड़े काम की हैं, इस कारण कि भारत के उस भाग में आदिवासियों की बहुत सी बस्तियाँ अब भी विद्यमान हैं और उनकी अपनी परम्परागत विचारधारा अब भी वैसी ही बनी हुई हैं जैसी हजारों वर्ष पूर्व थी। इस कारण इन पर हमें ध्यान देना आवश्यक है।

यों हमें उत्तर भारत में पद्महस्ता लक्ष्मी की मूर्ति खजुराहो के मौनव्रती विष्णु के साथ भी मिलती है। ये विष्णु के वायें खड़ी हैं और हाथ में पद्म है। बड़ी सुन्दर मूर्ति है।[4] मस्तक पर माँग में एक लड़ी मोती है, गले में एकावली तथा हाथ में वलय हैं।

ईससे भी सुन्दर स्वरूप लक्ष्मी का खजुराहो के पार्श्वनाथ के मंदिर में नारायण के सांथ देखने का प्राप्त होता है। यहाँ भी लक्ष्मी हमें दो भुजावाली मिलती हैं। इनके एक हाथ में कमल है, जो नारायण की ग्रीवा पर है। यहाँ इनका लास्य भाव दरसाया गया है। ये सर्वाभरण-भूषिता हैं। ऊपर का अंग नग्न है। नीचे के अंग में धोती है।

मद्रास के संग्रहालय में दो पाषाण तथा एक अष्टधातु की बनी हुई तीन लक्ष्मी की मूर्तियाँ हैं। पत्थर की मूर्तियाँ उत्तरी भारकोट जिले में मिली थीं तथा अष्टधातु की छोटी-सी मूर्ति तंजोर जिले के अर्तंगी तालुके के एनाडी गाँव में खुदाई के फल-स्वरूप प्राप्त हुई है। इन मूर्तियों को यह विशेषता है कि इनकी बाहर की रेखा देखने से ये श्रीवत्स के चिह्न के समान ज्ञात होती है। इसी रूप को लेकर इनमें लक्ष्मी की प्रतिमा बनाई गई है। पत्थर की मूर्ति तथा अष्टधातु की मूर्ति तो बिलकुल श्रीवत्स के चिह्न के भाँति है।[5] इनमें श्री देवी के

---

१. डुगलस वारेट -- तिरूत्तनी – दी हेरिटेज ऑफ इण्डियन आर्ट, नं० २ – भूला भाई मेमोरियल इन्स्टिट्यूट, बम्बई – १९५८ पृष्ठ ४।

२. वही -- उपर्युक्त – प्लेट ५।

३. वही -- हेमावती – दी हेरिटेज ऑफ इण्डियन आर्ट सीरीज – भूलाभाई मेमोरियल इन्स्टिट्यूट, बम्बई – १९५८ प्लेट २०।

४. जे० एन० बैनर्जी -- उपर्युक्त – प्लेट २४।

५. वही -- उपर्युक्त – प्लेट १९ – १ तथा ३; पृष्ठ ३७६।

सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में हार, वक्षस्थल पर छन्नवीर इत्यादि हैं। ये पद्म के सिंहासन पर पद्मासन में स्थित हैं। शंख तथा पद्म इनके हाथ में दिखाई देते हैं। अष्ट धातु की मूर्ति के हृदय पर एक चौकोर स्थान बना हुआ है, जहाँ कदाचित् कौस्तुभ मणि जड़ी थी।[१] यह भी श्रीवत्स के चिह्न के आकार की बनाई गई है (फलक १७ ख)। पत्थर की दूसरी मूर्ति स्पष्ट है।[२] इसमें लक्ष्मी पर्यंक आसन में हैं। ये पद्म पर स्थित हैं। दोनों हाथ इनके उठे हुए हैं। बायें में शंख है, दक्षिण में पद्म है। मस्तक पर किरीट है, कानों में कुण्डल हैं, गले में तौक है। हाथ में वलय हैं। कमर में कमरबन्द तथा पैरों में नूपुर हैं। दो हाथी इनको स्नान करा रहे हैं। ये स्तनपट तथा धोती पहिने हुए हैं। मामल्लपुरम् के मन्दिर में लक्ष्मी की जो मूर्ति प्राय. सातवीं शताब्दी की बनी हुई है।[३] उसमें देवी पर्यंक आसन में कमल पर स्थित हैं। दोनों ओर दो भीमकाय गज बने हुए हैं। इनमें एक तो घट सूँड़ में लेकर देवी को स्नान करा रहा है, परन्तु दूसरा सूँड़ नीचे किये हुए कदाचित् दूसरा घट उठा रहा है। देवी के दोनों ओर चार स्त्रियाँ हैं। पासवाली दोनों स्त्रियों के हाथ में भी घट हैं। लक्ष्मी के बायें वाली स्त्री के पीछेवाली के हाथ में शंख है, परन्तु दक्षिणवाली के हाथ में क्या है यह पता नहीं लगता। इन स्त्रियों के सिरों पर मुकुट हैं, कानों में कुण्डल, गले में हार, हाथ में वलय है तथा पैरों में नूपुर। देवी के मस्तक पर लम्बा टोपीनुमा मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में हार तथा वक्षस्थल पर छन्नवीर, हाथों में चूड़ी तथा वलय हैं। पैरों में नूपुर हैं। इनके बायें कर में विकसित कमल है, परन्तु दाहिना हाथ टूटा हुआ है (फलक १८)।

कम्बोडिया अथवा कम्बोज से भी लक्ष्मी की एक समपाद में खड़ी मूर्ति प्राप्त हुई है। यह काँसे की है। इसका काल प्रायः १९ वीं शताब्दी ज्ञात होता है। देवी के मस्तक पर पर्वत-शृंगों के स्वरूप का मुकुट है। कानों में लटकते हुए कर्णाभरण हैं, गले में तौक, बाहुओं में अंगद, मणिबन्धों पर वलय, कटि में मेखला तथा धोती है। पैरों में नूपुर है। शरीर का ऊपर का भाग नग्न है ऐसा ज्ञात होता है कि कम्बोज में भी इनकी पूजा होती थी।[४]

प्राचीन भारत के मध्ययुग में वैष्णवी की भी मूर्ति बनने लग गयी थी। इन मूर्तियों में देवी के हाथ में विष्णु के सब अस्त्र दिखाये जाते थे। इनके पीन स्तनों से ही इनकी पहिचान हो पाती है। हेमाद्रि वृत्त खण्ड के अनुसार इनको चतुर्भुज बनाना चाहिये।[५] इस काल की एक मूर्ति मयूरभंज में किंचिग स्थान से प्राप्त हुई है।[६] यह मूर्ति एक सिंहासन पर अर्ध-पर्यंक आसन में स्थित है। इनके सिंहासन के नीचे के भाग में गरुड़ की मूर्ति बनी है। सिंहासन में दोनों ओर गन्धर्व उड़ते हुए दिखाये गये हैं। वैष्णवी चतुर्भुजी हैं। आगे का दक्षिण कर अभय मुद्रा में है, बायाँ कर कोई अस्पष्ट वस्तु को पकड़े हुए है, जो कदाचित् कमल था, अब टूट गया है। पीछे के दक्षिण कर में चक्र तथा बायें में शंख है। मस्तक पर दक्षिण भारत के मन्दिरों के शिखर की भाँति का मुकुट है। इस मुकुट के दोनों ओर पक्ष बने हुए हैं। कानों में स्कन्धों तक लटकते हुए कुण्डल हैं। गले में एकावली (मंगलसूत्र) तथा ग्रैवेयक (तौक) है, बाहुओं पर केयूर तथा मणिबन्ध पर वलय हैं। वक्ष-

---

१. वही —— उपर्युक्त – प्लेट १९-२।
२. वही —— उपर्युक्त – प्लेट १९ – २।
३. गोपीनाथ राव —— एलिमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी – प्लेट १०९।
४. जिम्मर —— दी आर्ट ऑफ इण्डियन एशिया, भाग २, प्लेट ५६४ बी०
५. हेमाद्रि वृत्तखण्ड —— "पृथक् चतुर्भुजी कार्य्या देवी सिंहासना शुभा। सिंहा बृहन्नालंकारे कार्यं तस्याश्च कमलंशुभम्। दक्षिणे यादवश्रेष्ठ केयूरं प्रान्तसंस्थितम्। वामेऽमृत घटः कार्यरतया राजन् मनोहरः। तस्याश्च द्वौ करौ कार्यौ बिल्वशंखधरौ द्विज।"
६. जे० एन० बनर्जी —— डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी – प्लेट ४४-१।

स्थल पर एक उपवीत है तथा छत्रवीर भी दिखाई देता है। कमर में कटिबन्ध तथा मेखला है। पैरों में नूपुर हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि ऊपर के अंग में एक आधी बाँह की कुर्ती तथा नीचे धोती दिखाई देती है। इनके आसन के नीचे से इनकी धोती का एक सुन्दर भाग नीचे लटक रहा है। दक्षिण पैर कमल पर स्थित है। इनके मुख से ऐसा ज्ञात होता है कि जैसे परदुःख से द्रवित देवी उपासक को अभय प्रदान कर रही हैं। यह मयूरभंज से प्राप्त हुई है।

पीछे के काल की एक और वैष्णवी की मूर्ति बनारस से प्राप्त श्री वृन्दावन भट्टाचार्य ने प्रकाशित की है।[1] यह मूर्ति खड़ी है। इसका बाम पद किसी ऊँचे स्थान पर था, परन्तु अब पिण्डली से टूट जाने के कारण कुछ पता नहीं चलता कि किस पर था। दक्षिण पैर सीधा है। इनके आगे के बायें कर में शंख है, दक्षिण कर टूटा हुआ है। पीछे के दक्षिण कर में एक गदा है और बायें में एक चक्र है। बाईं ओर चक्र के पीछे सिंहासन की पीठ पर गणेश की मूर्ति है। वैष्णवी से गणेश का सम्बन्ध सप्तमातृ का के एक फलक से स्पष्ट हो जाता है।[2] देवी मस्तक पर एक भारी मुकुट पहिने हैं। इसके आगे के भाग में बाल स्पष्ट दिखाई देते हैं, कानों में कुण्डल हैं, ग्रीवा में चूहादन्ती हार तथा स्तनों पर लटकता हुआ एक दूसरा हार है। बाहुओं में केयूर, मणिबन्धों पर पतले वलय, कमर में मेखला है जिससे लटकती हुई कई लड़ियाँ हैं तथा उपवीत है।

एक और मूर्ति वैष्णवी की इलौरा में सप्तमातृका के साथ मिलती है। इसमें वैष्णवी, कौमारी तथा वाराही के बीच में प्राप्त होती है। इनमें सप्तमातृका है, उनमें वीरभद्रा, ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा तथा गणेश हैं। वैष्णवी अर्धपर्यंक आसन में स्थित हैं। इनके पीछे के दो हाथों में चक्र तथा शंख हैं। आगे के बायें हाथ में कमल है। दक्षिण कर अभय मुद्रा में है। मस्तक पर केश का जूड़ा, उसके में मेखला तथा पैरों में नूपुर हैं।[3]

और पीछे की एक दूसरी वैष्णवी कुम्भकोनम् में मिलती है।[4] ये भी अर्ध-पर्यंक आसन में बैठी हैं। आगे का दक्षिण कर अभयमुद्रा में है। बायाँ कर बायें पैर पर है। पीछे के दो हाथों में एक में शंख तथा एक में चक्र धारण किये हुए हैं। सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में एकावली, तौक, वक्षस्थल पर छत्रवीर है। बाहु में केयूर, मणिबन्धों पर वलय तथा कमर में मेखला और पैरों में नूपुर हैं। इनके साथ गणेश के स्थान पर यक्षी की मूर्ति है।

बिल्लौर में जो वैष्णवी की मूर्ति सप्तमातृका के साथ प्राप्त हुई है, यह पद्मासन में स्थित हैं। सर्वाभरण-भूषिता है। पीछे के दो हाथों में शंख और चक्र हैं। आगे का दक्षिण कर अभय मुद्रा में है और बायें में पद्म है। इनके साथ गणेश हैं।[5]

मध्ययुग की जो वैष्णवी की मूर्ति मादेयूर से मिली है उसमें केवल दो हाथ है। दक्षिण कर अभय मुद्रा में है तथा बायाँ वरद मुद्रा में। यह मूर्ति एक गोल पीठ पर खड़ी है। इसके नीचे कठघरा बना है। मस्तक पर एक ऊँचा-सा दक्षिण के मन्दिर के शिखर की भाँति का मुकुट है। मुकुट के नीचे बन्दी है। मुकुट से झूलते हुए मोतियों के गुच्छे हैं। कण्ठ में एकावली तथा उसके नीचे चूहादन्ती की तौक है। वक्षस्थल पर छत्रवीर

---

१. वृन्दावन भट्टाचार्य — इण्डियन इमेजेज – प्लेट २७।
२. गोपीनाथ राव — उपर्युक्त – पृष्ठ ३८३ के समक्ष, प्लेट ११८ – (१)।
३. उपर्युक्त।
४. गोपीनाथ राव — उपर्युक्त – प्लेट ११९।
५. गोपीनाथ राव — उपर्युक्त – प्लेट ११८–(२)।

है तथा उपवीत नीचे तक लटकता हुआ है। बाहु पर सुन्दर केयूर है, कटि में मेखला है, जिससे लटकती हुई धोती देवी के शरीर पर है। मस्तक के वाम तथा दक्षिण भाग में केश फैले हुए दिखाये गये हैं, जैसे उस काल में शिव के दिखाये जाते थे।[1]

एक मूर्ति वैष्णवी की कन्नौज से प्राप्त हुई है। यह मूर्ति समपाद भाव में खड़ी विष्णु के एक ओर अंकित है। विष्णु के दूसरी ओर भू-देवी की मूर्ति, वैष्णवी की मूर्ति के सदृश है। यह वैष्णवी की मूर्ति चतुर्भुज है। ऊपर के दोनों करों में विष्णु के दो आयुध शंख और चक्र हैं। नीचे के बायें हाथ में घट है और दक्षिण कर वरद मुद्रा में है। मस्तक पर मुकुट है तथा और अंगों में विविध आभूषण हैं।[2]

प्रायः इसी काल की एक मूर्ति काशी में लक्ष्मी के विष्णु और परिणय की मिलती है।[3] यह मूर्ति मणि-कर्णिका घाट के सिद्ध विनायक मन्दिर के पीछे एक शिला पर उत्कीर्ण है। ऐसा ज्ञात होता है कि यह पाषाण-खण्ड किसी प्राचीन मन्दिर का भाग था जो यहाँ नवीन मन्दिर बनाते समय लगा दिया गया है। ऐसा काशी के बहुत से मन्दिरों में हुआ है। इस फलक पर विष्णु लक्ष्मी का पाणिग्रहण कर रहे हैं। ऊपर की ओर देवताओं की एक पंक्ति का दृश्य था, जो अब प्रायः नष्ट हो चुका है। यह समूह बरातियों का ज्ञात होता है। इन्द्र का ऐरावत तथा शिव का नन्दी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। नीचे विष्णु के मस्तक पर करण्डक मुकुट है। यह चतुर्भुज मूर्ति है। पीछे के बायें हाथ में शंख और दाहिन में चक्र है। आगे के दक्षिण कर से लक्ष्मी का दक्षिण कर पकड़ हुए हैं, बाएँ कर में अधोवस्त्र का एक भाग है। विष्णु के कानों में गोल कुण्डल हैं, कण्ठ में ग्रैवेयक (तौक) तथा उपवीत है। बाहु में केयूर, मणिबन्ध पर वलय है, कटि में मेखला है। उत्तरीय तथा पीताम्बर धारण किये हुए हैं। ये समपाद भाव में खड़े हैं। लक्ष्मी का एक पैर पीछे है और दक्षिण पैर आगे के ये अपना शरीर विष्णु की ओर करके तिरछी आती हुई दिखाई गयी हैं। इनका दक्षिण कर विष्णु के हाथ में है और बायें में कमल धारण किये हुए हैं। देवी के मस्तक पर केश-कलाप के पीछे एक किरीट दिखाई देता है और कानों में कुण्डल हैं, गले में एकावली तथा तौक है, वक्षस्थल पर छन्नवीर है। बाहुओं में केयूर तथा हाथ में वलय है। स्तनपट तथा धोती ये धारण किये हुए हैं, कटि पर मेखला है। इन दोनों मूर्तियों के बगल में पुरुष तथा स्त्री-आकृतियाँ हैं। इनके शरीर काल के प्रभाव से गल गये हैं। फिर भी विष्णु के पीछे एक द्विभुज पुरुष की मूर्ति दिखाई देती है। इनके मस्तक पर भी एक करण्डक मुकुट दिखाई देता है जो विष्णु के मुकुट से छोटा है। इसी पुरुष के पास एक स्त्री-मूर्ति भी है। लक्ष्मी के पीछे भी एक स्त्री मूर्ति है, जो हाथ में कुछ लिये हुए है। इसके मस्तक पर का उठा हुआ जूड़ा स्पष्ट दिखाई देता है। इसके पैर के पास भी एक बालक की आकृति दिखाई देती है। ये आकृतियाँ राजा-रानी तथा उनके परिवार के बालकों की होनी चाहियें, जिन्होंने इस मूर्ति का निर्माण कराया था (फलक २०)।

एक गजलक्ष्मी की मूर्ति प्रायः मध्ययुग की सिद्ध विनायक मन्दिर के सामने के मकान की दीवार पर दिखाई देती है। यह मूर्ति चतुर्भुज है। इस फलक में लक्ष्मी अर्ध-पर्यंक आसन में एक विकसित कमल पर बैठी हैं।[4] आगे का दक्षिण कर वरद मुद्रा में है तथा बायें में मातु लिंग है। ऊपर के दक्षिण कर में पुस्तक

---

१. वही — उपर्युक्त – प्लेट–१११।
२. रामकुमार दीक्षित — कन्नौज – शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश – फलक – ६।
३. नारायण दत्तात्रेय कालेकर – काशी की प्राचीन देव मूर्तियाँ – ६ श्री लक्ष्मी – 'आज' शनिवार २६ अक्तूबर, पृष्ठ ५, कालम १, २।
४. वही – उपर्युक्त– "श्रीलक्ष्मी". 'आज' – दिनांक २६-१०-५७, पृष्ठ ५, कालम ३।

तथा वाम में कमल है। देवी के दोनों ओर स्त्री-पुरुष की आकृतियाँ हैं। देवी के मस्तक पर मुकुट, कानों में कुण्डल, कण्ठ में तौक, बाहु पर केयूर, मणिबन्धों पर वलय, वक्षस्थल पर छन्नवीर तथा उपवीत, कटि में झालरदार मेखला, पैरों में नूपुर हैं। यह मूर्ति प्राय: दो फुट ऊँची है। (यह मूर्ति तान्त्रिक सूजा के हेतु बनाई गई प्रतीत होती है)।

गजलक्ष्मी का मूर्तियाँ काशी के अनेक मन्दिरों के तोरणों पर दिखाई देती हैं, जैसे विशालाक्षी या केदारेश्वर के मन्दिरों के तोरणों पर। ये बहुत प्राचीन नहीं हैं, परन्तु एक प्राचीन शृंखला की द्योतक हैं।

(जापान में भी लक्ष्मी का मन्दिर विद्यमान है[1] जो प्राय: सोलहवीं शताब्दी का समझा जाता है। यह मूर्ति प्राचीन जापानी सम्भ्रान्त महिला की वेष-भूषा में है। इससे ऐसा पता चलता है कि सुदूर पूर्व तक इनकी पूजा का प्रचार हुआ था।)

(इन्हीं मूर्तियो के साथ श्रीचक्र का भी विवरण देना आवश्यक है जिसको बनाकर प्राचीन मध्ययुग में पूजा हुआ करती थी। यह प्रकरण तान्त्रिक है, परन्तु इसमें का त्रिकोण उसी योनि का द्योतक है, जो हमें प्राचीन काल की माताओं की नग्न मूर्तियों में देखने को मिलता है। प्राचीन काल में यह मातृत्व का, उत्पादन शक्ति का तथा सौभाग्य का चिह्न समझा जाता था।[2] विशेष रूप से कृषक समाज का तो जीवन ही उत्पादन पर निर्भर होने के कारण माता में विशेष विश्वास था। इस चक्र में प्राय: ४३ त्रिकोण बनाये जाते हैं तथा इनके चारो ओर दो वृत्त। दोनों में कमल दिखाये जाते हैं। इन त्रिकोणों पर बीज मंत्र लिखे रहते हैं।[3] बीचवाले त्रिकोण के बीच में एक बिन्दु दिखाया जाता है। इसको मेरु के शिखर की भाँति भी बनाया जाता था।[4] यह चक्र धातु की पट्टी[5], संगममर तथा और दूसरे पत्थरों पर बनाया जाता है। इसका एक साधारण रूप एक दूसरे को काटते हुए दो त्रिकोण बना कर तथा उसके बीचमें 'ऊँ एँ ह्रीं क्लीं सौं जगत्प्रसूत्यै नम:' लिख कर और इन त्रिकोणों के चारों ओर तीन वृत्त खींच कर उसमें कमल दल खींच कर बनता है (फलक २१)। इसकी भी पूजा होती है।)

(एक और स्वरूप इनका दीपलक्ष्मी का मिलता है। दक्षिण के मन्दिरों में आज भी यह स्वरूप सखी के रूप में भगवान के साथ रखा जाता है। दिवाली के एक दिन पहिले दीपक लक्ष्मी की पूजा होती है, क्योंकि दीपक को भी समृद्धि का एक चिह्न समझा जाता है।) दीप लक्ष्मी की एक मूर्ति तो तक्षशिला की है, जैसा पहिले लिखा जा चुका है और एक मूर्ति गांधार कला की प्राप्त होती है। इसमें भी ये सर्वाभरण-भूषिता हाथ में एक दीपक लिये हुए दिखाई गई हैं।[6] आज जो इनकी मूर्तियाँ बनती हैं, उनमें इन्हें पद्म पर समपाद मुद्रा में खड़ा दिखाया जाता है। एक मूर्ति दीपलक्ष्मी की मथवारा वारंगल से याजदानी को मिली थी, जो इसी मुद्रा में खड़ी है।[7] इसी प्रकार की और कई मूर्तियाँ दक्षिण से प्राप्त श्री ओ० सी० गांगुली जी ने भी अपनी पुस्तक में प्रकाशित

---

१. भिक्षु चिम्मन लाल -- जब शिव जी ने जापान को चीन के हमले से बचाया – धर्मयुग १२ फरवरी, १९६१ – पृष्ठ ९ पर अंकित लक्ष्मी की मूर्ति।

२. जे० प्रेजिलुस्की -- ला ग्राण्ड डी ऐस – पृष्ठ ४७, ४८।

३. गोपीनाथ राव -- एलिमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृष्ठ ३३०।

४. क्या यह मों ड वीनस का द्योतक है -- प्रेजिलुस्की – उपर्युक्त – पृष्ठ ४७।

५. गोपीनाथ राव -- उपर्युक्त – प्लेट ६७।

६. आर्केआलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया – एनुअल रिपोर्ट – १९१५-१६, प्लेट ५।

७. जी० याजदानी -- दी लैम्प बेयरर (दीपलक्ष्मी) – जे० आई० एस० ओ० ए० खण्ड २, नं० १, पृष्ठ ११, प्लेट ८।

की है ।[1] गुजरात से प्राप्त इसी प्रकार की एक मूर्ति बड़ौदा के संग्रहालय में तथा दूसरी प्रिंस ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई में है ।[2] ये दोनों पीतल की हैं ।

इस प्रकार लक्ष्मी की मूर्ति के विकास का क्रम चलता रहा है । भारतीय कलाकार की अपनी मान्यताएँ थीं और हैं । इन पर विदेशी प्रभावों का आक्रमण समय-समय पर होता ही रहा, परन्तु हमारे कलाकारों ने उन प्रभावों का भारतीयकरण करके ही अपनाया । विदेशी कला के नमूनों के प्रतिरूप बनाने में इनको कोई महत्व नहीं दिखाई दिया, क्योंकि भारतीय कला का आधार कल्पना की भित्ति पर सृजित आदर्शवाद रहा है और पश्चिमी कला का आधार यथार्थवाद की नींव पर निर्मित कल्पना रही है । पश्चिमी कला का उद्देश्य बाहरी सौन्दर्य का सृजन रहा है और हमारी कला का रस की अनुभूति कराना । जिस प्रकार भारतीय साहित्य तथा संगीत से इसका प्रतिपादन होता है उसी प्रकार मूर्ति कला में भी । यदि साहित्य और संगीत श्रव्य काव्य है तो मूर्ति-कला दृश्य काव्य है और काव्य की परिभाषा है, रसात्मक वाक्य । जहाँ वाणी मूक है, वहाँ हाव-भाव, मुद्रा, अंग-भंग, साज-सज्जा द्वारा ही रस का प्रतिपादन करना होता है । नाटक, चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य कला सभी दृश्य काव्य हैं, परन्तु नाटक चलचित्र होने के कारण और कलाओं की अपेक्षा अधिक सरलता से रस-का प्रतिपादन कर सकता है क्योंकि भाव-भंगी का बदलना सम्भव है और एक के पश्चात् दूसरा स्थायी और संचारी भावों का प्रदर्शन कर के रस की अनुभूति कराई जा सकती है । परन्तु मूर्ति कला, चित्र कला तथा स्थापत्य कला में एक ही स्थित हाव-भाव से इस का सम्पादन करना पड़ता है, जैसे शिव की ताण्डव मूर्ति से रौद्र रस का भाव दर्शक के हृदय में उत्पन्न होना चाहिये । यदि कलाकार इस कार्य में विफल रहा तो वह मूर्ति निर्जीव हो जाती है । इसी प्रकार यदि बुद्ध की अभय मुद्रावाली मूर्ति को देखने से ही हमारे हृदय में शान्त रस का संचार न हुआ तो कलाकार का प्रयास व्यर्थ हो जाता है । सभी मूर्तियाँ इसी प्रकार रस विशेष के प्रतिपादन के हेतु बनाई जाती हैं । यदि दर्शक के हृदय में कलाकार के इच्छानुसार रस उत्पन्न न हुआ तो उस मूर्ति के चारों ओर कितना भी आडम्बर खड़ा किया जाय, वह सब व्यर्थ हो जाता है ।

देवी लक्ष्मी की जिन मूर्तियों का यहाँ हमने अध्ययन किया उनमें भी इसी प्रकार रस के प्रतिपादन का प्रयत्न किया गया है । जो मूर्तियाँ अभयमुद्रा में हैं, उनके दर्शन से हृदय में शान्ति का संचार होता है; जो वरदमुद्रा में हैं उनसे आशा की प्राप्ति होती है । जैसा भाव हाथ की मुद्रा से प्रदर्शित किया जाता है वैसा ही भाव मुख पर भी कलाकार ने उत्पन्न किया है, अंग-भंगी भी उसी के अनुरूप दिखायी गई है । साहित्य में जो वर्णन मिलता है, यहाँ उसका प्रत्यक्ष रूप हमारे समक्ष है ।

---

१. ओ० सी० गांगूली – साउथ इण्डियन ब्रंजेज – पृष्ठ २५, प्लेट ३५-३६ ।

२. स्टेला क्रामरिश – दी आर्ट ऑफ इण्डिया थ्रू दी एजेज – फिगर १५४ तथा पृष्ठ २२८, फिगर २७ ।

: १२ :

निष्कर्ष

भारत में यक्ष पूजा अति प्राचीन काल से प्रचलित रही है तथा यहाँ के आदिवासी इनको सर्वशक्तिमान् देवता के रूप में भजते रहे हैं। इनका विश्वास था कि यही पानी बरसाते हैं तथा ये ही खेत में अनाज तथा वृक्षों पर फल इत्यादि उगाते हैं।[१] इन यक्ष तथा यक्षिणियों को आर्यों ने अपना लिया।[२] यह उनके लिये आवश्यक भी था क्योंकि आर्य भारत में यदि बाहर से आये तो अपने साथ पर्याप्त संख्या में "स्त्रियाँ" तो लाये नहीं होंगे। यहीं की स्त्रियों के साथ विवाह सम्बन्ध होने से उनके देवता नहीं-नहीं करते हुए भी घर में पहुँच गये होंगे; जो हाल आज भारत में मुसलमानों का हुआ है। इनके यहाँ भी हिन्दू तीज-त्योहार किसी-न-किसी रूप में माने जाने लगे हैं। यक्ष शब्द ऋग्वेद में तथा अथर्ववेद में कई स्थानों पर आया है। ऋग्वेद में "यक्षों" को बहुत अच्छे भाव से नहीं देखा जाता था। अग्नि से प्रार्थना मिलती है कि यक्ष के पास न जायें।[३] यह भी प्रार्थना मिलती है कि 'हे देवता, हमें यक्ष न मिलें।[४] अथर्ववेद में आकर यह वर्णन मिलता है कि यक्ष इस ब्रह्माण्ड के बीच में स्थित हैं[५] और यहाँ कुबेर तथा उनके पुत्र पुण्यजन के नाम से पुकारे गये हैं।[६] गोपथब्राह्मण में तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण में[७] यह भावना प्राप्त होती है कि मनुष्य तप से यक्ष हो सकता है। बृहद् आरण्यक में यक्ष ब्रह्मा की गद्दी प्राप्त कर लेते हैं। 'उस यक्ष को कौन जानता है जो स्वम्भू हैं, जो ब्रह्मा हैं।'[८] ऐसा वाक्य प्राप्त होता है। पीछे चलकर यक्षों के राजा कुबेर उत्तर के दिक्पाल हो जाते हैं। रामायण में यक्षत्व की प्राप्ति अमरत्व की प्राप्ति मानी गयी है (वाल्मीकीय रामायण ३, ११, ८, ४)।

महाभारत में कुबेर की स्त्री भद्रा (१, १९९, ६) तथा ऋद्धि (१३, १४६, ४) मिलती हैं, परन्तु लक्ष्मी से भी इनका सम्बन्ध मिलता है (३, १६८, १३) चीनी बौद्ध ग्रन्थों में "लक्ष्मी मणिभद्र की पुत्री कही गयी हैं" सिरिका लक्ष्मी जातक (नं० ३९२) में ये धतरथ की लड़की कही गयी हैं, जो हमें यक्ष के रूप में भारहुत में प्राप्त होते हैं।[९] मणिभद्र भी एक यक्षराज हैं तथा कुबेर के मुख्य पार्षद हैं।[१०] महाभारत में यक्षिणी के एक मन्दिर का राजगृह में वर्णन प्राप्त होता है (३, ८३, २३) कदाचित् यह मन्दिर लक्ष्मी का रहा हो।

श्री सूक्त को छोड़कर श्री शब्द ऋग्वेद में, जैसा पहिले लिखा जा चुका है, प्रायः शोभा, कान्ति, ऐश्वर्य, सम्पदा इत्यादि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। लक्ष्मी भी सम्पदा के अर्थ में व्यवहार किया गया है। सबसे प्रथम

---

१. फरगुसन —– ट्री एण्ड सरपेण्ट वरशिप – पृष्ठ २४४।

२. कुमार स्वामी —– यक्षाज – खण्ड १, पृष्ठ ३।

३. ऋग्वेद ५, ७०, ४।

४. उपर्युक्त ७, ५६, १६।

५. अथर्ववेद १०, ७, ३८।

६. उपर्युक्त ८, १०, २८।

७. कुमार स्वामी —– यक्षाज – खण्ड, २ पृष्ठ ३।

८. बृहद् आरण्यक – ५, ४।

९. कुमार स्वामी —– यक्षाज – खण्ड २, पृष्ठ ४।

१०. वही —– यक्षाज – खण्ड १ पृष्ठ ७; शांखायन श्रौत सूत्र १, ११, ६।

शतपथ ब्राह्मण में[१] ही 'श्री' का रूप कुछ फलीभूत होता है । तैत्तिरीय उपनिषद् में "श्री" वस्त्र, गौ, भोजन, धन इत्यादि की प्रदाता वर्णित हैं[२] तथा गृह्य सूत्रों में इनको पलंग के सिरहाने बलि देने का विधान है ।[३] श्रीसूक्त में वर्णित लक्ष्मी का वर्णन किया जा चुका है ।

इनका विष्णु से सम्बन्ध अथवा नारायण से सम्बन्ध प्रायः पुराणों से पूर्व नहीं मिलता । वैदिक देवी अदिति का ही सम्बन्ध विष्णु से वेदों में मिलता है ।[४] यही सर्वप्रदाता सबकी माता कही गई हैं ।[५] पुराणों में, रामायण तथा महाभारत में उनका स्वरूप स्पष्ट होता है । रामायण में ये कुबेर के पुष्पक विमान पर गजलक्ष्मी के रूप में हाथ में पद्म लिये हुए वर्णित हैं । महाभारत में लक्ष्मी को श्रीपद्मा कहा गया है तथा इनसे कहलाया गया है, "मैं ही विजय दिलाती हूँ, मैं ही समृद्धि प्रदान करती हूँ, मैं विजयी राजा के पास रहती हूँ" इत्यादि । यहाँ ये क्षीर सागर के मन्थन से उत्पन्न होती हैं । सती सावित्री को देखकर जन-साधारण उनको श्री की प्रतिमा कह कर सम्बोधित करते हैं ।[६] जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय श्री की प्रतिमा बनने लगी थी । पुराणों में इनको पद्मकरा, पद्मालया, पद्मानना, जल से उत्पन्न जिनको गजस्नान करा रहे हैं, जो समुद्र मन्थन से उत्पन्न हुईं, जो वैष्णवी हैं, कहा गया है । बौद्ध ग्रन्थों में इनकी पूजा का निषेध है ।[७] इनके पंथ का वर्णन और पन्थों के साथ मिलिन्द पन्ह (१९१) में मिलता है, परन्तु प्रायः यहाँ यही कहा गया है कि ये विवेक से काम नहीं लेतीं, मूर्खों पर भी प्रसन्न हो जाती हैं । ये सिरीका लक्ष्मी जातक (नं० ३९२) में कहती हैं, "मैं ही मनुष्यों को राज्य दिलाती हूँ, मैं ही श्री (सौन्दर्य) हूँ" इत्यादि ।

बौद्ध, जैन तथा प्राचीन आर्यों के निषेध पर भी इनकी पूजा चलती रही और इनकी मूर्तियाँ साँची, भारहुत, बोधगया के पवित्र बौद्ध स्थानों के तोरणों पर बनीं । कौशाम्बी में तो इनका एक मन्दिर स्तूप के पास घोषिताराम के विहार में प्राप्त हुआ है जो प्रायः ईसा के प्रथम शताब्दी का है । जैसा पहिले लिखा जा चुका है और भी इनके मन्दिर रहे होंगे परन्तु ऐसा अनुमान होता है कि विशेषरूप से इनकी पूजा गृहस्थों के घरों में होती थी जैसे प्रायः आज भी होती है ।

मूर्तियों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि लक्ष्मी भारत के आदिवासियों की एक देवी थीं जो यक्षिणी अथवा यक्षों की रानी के रूप में पूजित होती थीं, इनको ये सर्वप्रदायिनी देवी समझते थे तथा इनको बकरे की बलि दी जाती थी । प्रायः ऐसा अनुमान होता है कि व्यापारी बाहर जाने के पूर्व इनकी पूजा करते थे । यहाँ इनकी पूजा वैसे ही होती थी जैसे पश्चिमी एशिया में माता की पूजा होती थी ।[८] प्राचीन काल में इनको नग्न भी दिखाया जाता था (फलक ११) तथा वस्त्रों से आच्छादित भी । भारत में ये प्रायः आभूषणों से सुसज्जित दिखाई जाती थीं । इनका सम्बन्ध विशेष रूप से कमल और जल से था । लक्ष्मी का आर्यों के देवताओं में समावेश शतपथ के काल में हुआ, ऐसा जान पड़ता है; परन्तु इनका यक्षों से बहुत पीछे के काल तक सम्बन्ध बना ही रहा ।

---

१. शतपथ ब्राह्मण — ११, ४, ३१ ।
२. तैत्तिरीय उपनिषद् — १, ४ ।
३. कुमार स्वामी — अर्ली इण्डियन आइकोनोग्राफी – श्रीलक्ष्मी – पृष्ठ १७५ ।
४. तैत्तिरीय संहिता – ७, ५, १४ ।
५. ऋग्वेद – १, ८९, १० ।
६. महाभारत – ३, २९३, २५ तथा आगे ।
७. विष्णु पुराण — १, ९, १०३, १९, ११७-१३२ ।
८. जां प्रेजिलस्की — ला ग्राण्ड डी. एस. पृष्ठ ५३ ।

मिश्र में कमल प्रायः अविकसित दिखाया गया है, परन्तु भारत में खिला हुआ। मिस्र में ऐसा समझा जाता था कि एक कमल प्रत्येक प्रातःकाल तालाब से निकलता है, दोपहर को पूरा खिल जाता है, तथा सन्ध्या को यह बन्द हो जाता है, क्योंकि सूर्य रात को इसी में सोते हैं। प्रातःकाल सूर्य के उदय होने के पूर्व तक यह बन्द रहता है।[१] कमल का यही स्वरूप मिस्र में अधिक दिखाया गया है परन्तु भारत में प्रायः यह खिला हुआ दिखाया गया है क्योंकि प्रकाश अधिक होने से भारत में कमल शीघ्रता से खिल जाते हैं और इसे उस स्वरूप में दिखाया गया है, जब सूर्य भगवान अपने पूर्ण तेज से चमकते रहते हैं[२] तथा इनका तेज, कमल अपने शरीर में लेता रहता है। हमारे यहाँ इसी मध्याह्न काल के कमल पर लक्ष्मी को स्थित किया है तथा इसी प्रकार के कमल उनके हाथ में दिये गये हैं। ऐसा अनुमान होता है कि इस देवी तथा सूर्य दोनों को उत्पादन शक्ति का देवता समझने के कारण यह आवश्यक था कि इनको कमल पर दिखाया जाता। श्रीसूक्त में इन्हें "सूर्याम् चन्द्राम्" इत्यादि कहा है। कमल को जल पर तैरती हुई पृथ्वी भी समझा जाता था तथा इसको पानी में रहने पर भी पानी से अछूता रहने के कारण दिव्य समझा जाता था, इस कारण भी इससे लक्ष्मी का सम्वन्ध कदाचित् जोड़ा गया होगा।[३]

प्राचीन काल में लक्ष्मी को स्वयम्भू समझा गया था, जैसे कमल। इस कारण इनको भी कमल से सम्बन्धित किया होगा। जल को जीवन भी कहते थे, इस कारण भी जीव को उत्पन्न करनेवाली माता को जल के साथ दिखाना आवश्यक था, जैसे कमल को। ये कमल जल से पूर्ण घटों से निकलते हुए दिखाये गये हैं। ये घट प्रायः एक पाश से बँधे हुए दिखाये गए हैं जो वरुणपाश का द्योतक हो सकता है।[४]

अनुमानतः गज से लक्ष्मी का सम्बन्ध कई कारणों से किया गया होगा। एक तो मेघ के समान काले होने के कारण इनको भी जल-प्रदाता समझा जाता था। दूसरे हाथी की प्रागैतिहासिक युग में पूजा होती थी, जैसे देवी की। ऐसा अनुमान है कि पीछे चल कर यह साम्राज्य का द्योतक तथा इन्द्र का वाहन बन गया था, इस कारण भी लक्ष्मी का सम्बन्ध इससे जोड़ा गया होगा जैसा कोई-कोई जैन तीर्थंकरों के पीछे बनाकर किया गया[५]। जिस प्रकार हाथी सूँड़ में पानी भर कर अपने शरीर पर छोड़ता है उसी प्रकार उसको लक्ष्मी को स्नान कराते हुए तालाब के समीप बनाना ठीक ही था।)

श्रीवत्स के चिह्न का प्राथमिक स्वरूप हमें प्रागैतिहासिक युग में हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो में मिलता है। ये दो साँप एक वृक्ष के दोनों ओर दिखाये जाते थे। यह चिह्न पवित्र होने के कारण इसे फिर विष्णु के हृदय पर बनाना प्रारम्भ किया गया होगा (फलक २२ झ) तथा इसका नाम श्रीवत्स दिया गया होगा। लक्ष्मी से इसका सम्बन्ध पीछे चलकर जोड़ा गया।

इस लक्ष्मी का स्वरूप अवस्ता के अनाहिता के भाँति है। यदि अनाहिता के हाथ में एक धान का मुट्ठा है[६] तो लक्ष्मी के हाथ में कमल का फूल। यदि अनाहिता उत्पादन शक्ति की देवता है तो लक्ष्मी भी। इनको दुर्गा या काली से जोड़ना ठीक नहीं है[७] क्योंकि उनको उत्पादन की देवी नहीं समझते थे[८]। सर्वप्रथम इनका

---

१. ए० मोरे -- ला लोटस ए ल नेसान। डे ड्यु : जुरनाल आजियातिक मे - जुयां १९१७ पात्र ५०१-५०७।

२. जां प्रजिलुस्की -- उपर्युक्त पृष्ठ ७२।

३. कुमार स्वामी -- यक्षाज खण्ड २ पृष्ठ ५७।

४. वही -- जे० ए० ओ० एस० खण्ड ४८ पृष्ठ २७३।

५. एम० वेंकटारामअय्यर -- श्रावस्ती - प्लेट ३ - ऋषभदेव फ्राम सोमनाथ टेम्पुल।

६. जां प्रेजोलुस्की -- उपर्युक्त - पृष्ठ २९।

७. वही -- उपर्युक्त - पृष्ठ ३१।

८. कुमार स्वामी -- यक्षाज - खण्ड २, पृष्ठ १७।

सम्बन्ध कुबेर, से स्थापित हुआ जैसे अहुरमजदा से अनाहिता का सम्बन्ध किया गया, फिर वरुण तथा इन्द्र से। विष्णु से लक्ष्मी का सम्बन्ध पौराणिक काल में किया गया था। इनका जन्म समुद्र-मन्थन से तथा इनके विष्णु के वरण की कथा पुराणों में ही प्राप्त होती है जैसा पहिले लिखा जा चुका है, लक्ष्मी को विष्णु के साथ दिखाने की प्रक्रिया भी गुप्त काल के पूर्व नहीं मिलती। लक्ष्मी का स्वतंत्र चतुर्भुज रूप गुप्त काल के अन्त में ही मिलता है और मध्य युग में आकर इनको वैष्णवी का रूप प्राप्त होता है जिसमें इनके हाथ में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म दिया गया है पद्म फिर भी इनके हाथ में है। ऐसा अनुमान होता है कि इनका ही पद्म विष्णु के हाथ में चला गया है।

पहिले की मूर्तियों को देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि पहिले इनका रूप यक्षिणी के सदृश बनाया जाता था। इनमें तथा यक्षिणी में कोई भेद न था। इस प्रकार इनके तीन रूप प्राप्त होते हैं : पद्म-हस्ता, पद्म-स्थिता और पद्मवासिनी। यक्षिणी की भाँति ये भी धन प्रदान करनेवाली हैं। पद्महस्ता स्वरूप में इनके दक्षिण कर में पद्म है तथा बाँया कर यक्षिणी की भाँति कटि पर है। पद्मस्थिता स्वरूप में ये विकसित कमल पर स्थित हैं तथा पद्मवासिनी स्वरूप में इनके दोनों ओर कमल उगते हुए दिखाई देते हैं और प्रायः ये दोनों हाथों में कमल की नाल पकड़े हुए हैं। इनके ये सभी स्वरूप हमें भारहुत तथा साँची में प्राप्त होते हैं। सिरिमा देवता को तो सीधे ही पद्महस्ता कह सकते हैं क्योंकि इनके हाथ में पद्म था, जो अब टूट गया है[1]। पद्मस्थिता का स्वरूप तथा (फलक ४ ख), पद्मवासिनी का स्वरूप सबसे उत्तम साँची में प्राप्त होता है (फलक ५ ग)। ये प्रायः यक्षिणी की भाँति बहुत से आभूषणों से लदी हुई दिखाई गई हैं।

बसाढ़ की लक्ष्मी पद्महस्ता तथा पद्मस्थिता होते हुए भी पंख से विभूषित हैं। इसी प्रकार की एक पक्षयुत मूर्ति अखुनढेरी से भी प्राप्त हुई है।[2] ये पक्ष कदाचित् इनको व्योम की देवी होने का परिचय देते हैं। जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है, पक्षयुत पुरुषों की मूर्तियाँ कई स्थानो में प्राप्त हुई हैं परन्तु स्त्री-मूर्ति बहुत कम मिली हैं।

लक्ष्मी की मूर्तियाँ अपने एक हाथ से स्तन को दबाती हुई भी मिलती हैं, जैसी हमें मथुरा (फलक ६ग) तथा तक्षशिला में दिखाई देती हैं (फलक १२ ख–घ)। इस स्वरूप को बनाने का कदाचित् यह अर्थ था कि ये सर्वप्रदाता माता हैं। यह स्वरूप इनका सर्वप्रथम कदाचित् बाबुल में बना जिसमें एक नग्न माता दोनो हाथों से अपने स्तनों को दबाती हुई दिखाई गई हैं।[3] यह मृण्मूर्ति कुस्तुनतुनियाँ के राजकीय संग्रहालय में है।

गजलक्ष्मी का स्वरूप भी कई भाँति का प्राप्त होता है। खड़ी लक्ष्मी का स्वरूप, बैठी लक्ष्मी का स्वरूप, कमल का फूल लिये हुए, स्तन को दबाती हुई चतुर्भुज इत्यादि। बैठी तथा खड़ी द्विभुज गजलक्ष्मी का स्वरूप भारहुत, साँची, बोधगया स्थानों पर मिलता है, जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है। इसमें भारहुत तथा साँची के एक ही दो फलकों पर हमें लक्ष्मी स्तन को दबाती हुई मिलती हैं (फलक ३क तथा फलक ६ख)। इस प्रकार की मूर्तियाँ सब खड़ी हैं। हाथ में कमल लिये हुए गजलक्ष्मी की मूर्तियों में एक फलक ७ पर है दूसरी फलक ८ पर है। अत्यंत शुभ होने के कारण गजलक्ष्मी की मूर्तियाँ पद्महस्ता तथा पद्मस्थिता स्वरूपों में सिक्के तथा मोहरों पर भी मिलती हैं, जैसा पहिले लिखा जा चुका है। परन्तु गजलक्ष्मी की मूर्ति

---

१. कुमार स्वामी -- अर्ली इण्डियन आइकोनोग्राफी – श्रीलक्ष्मी – पृष्ठ १८१।

२. आर्केआलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया अन्युअल रिपोर्ट – १९२२-२३, प्लेट १० बी।

३. कोटेनो -- ला डो एस न्यू बाबिलोनियन – पृष्ठ १०४, ११०; जां प्रेजिलुस्की – उपर्युक्त, पृष्ठ ४८, फिगर २।

इलोरा, ममल्लपुरम् वाली मूर्तियों को छोड़कर प्रायः फलकों पर ही उत्कीर्ण मिलती हैं, परन्तु फलकों से उभड़ कर मूर्तरूप में नहीं मिलतीं।[१] प्रायः प्राचीन गजलक्ष्मी की मूर्तियों में देवी के आसन का कमल तथा वे कमल जिन पर गज स्थित है, एक पूर्ण घट से निकलते हुए दिखाये गये हैं। पूर्णघट पहिले वरुण का द्योतक था और आज भी वरुण-पूजन में पूर्ण घट रखकर ही उनका वरण होता है। हाथियों को कमल के फूल पर स्थित दिखाना, यह भी कल्पना की ही बात थी। हाथियों का सम्बन्ध इन्द्र के ऐरावत से था तथा पीछे लक्ष्मी के साथ समुद्र-मन्थन से उत्पन्न होने के कारण लक्ष्मी से भी था। दिक्कुंजर होने के कारण ये साम्राज्य के द्योतक समझे जाते थे। इसलिए भी इनको लक्ष्मी के साथ दिखाया गया। पीछे तो, दो कुंजरों के पीछे दो और कुंजर भी दिखाये जाने लगे, जैसे बदामी की गुफा में तथा ममल्लपुरम् में।[२] इन कुंजरों के नाम ऐरावत, अंजन, वामन तथा महापद्म हैं।[३] इनके सूँड़ के घट जल के बादल के प्रतीक हैं[४] तथा इनसे निकलता हुआ जल अमृत है।[५]

यों तो लक्ष्मी की पूजा बहुत दिनों पूर्व से जन-साधारण में होती आती थी परन्तु गुप्तकाल में लक्ष्मी के पूजन का विशेष प्रचार हुआ। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि उस काल की विशेषता थी--साम्राज्य की स्थापना, लोकधर्मों का समन्वय, व्यापार से धनोपार्जन तथा सौन्दर्य की उपासना। इन इच्छाओं की पूर्ति लक्ष्मी-ऐसी देवी से होती थी। इसी कारण इनकी पूजा विशेष रूप से होने लगी। बसाढ़ तथा भीटा से प्राप्त गुप्त मोहरों पर गजलक्ष्मी की मूर्तियाँ प्रचुरता से प्राप्त हुई हैं तथा इस काल के सिक्कों पर भी पद्महस्ता, पद्मस्थिता तथा गज लक्ष्मी की मूर्तियाँ बनी हुई दिखाई देती है। इस काल के बने लक्ष्मी के मन्दिर भी प्राप्त होते हैं। इन सब को देखने से उपर्युक्त धारणा की पुष्टि होती है। बसाढ़ तथा भीटा से प्राप्त मृणमोहरों पर गजलक्ष्मी के साथ यक्ष भी दिखाये गये हैं जो थैलियों में से मुद्राएँ निकाल कर दे रहे हैं, जिससे यह ज्ञात होता है कि लक्ष्मी की पूजा तथा प्रार्थना से धन की प्राप्ति की आशा थी। यही बात ब्रह्म पुराण में मिलती है, जैसा पहिले लिखा जा चुका है। इसी प्रकार की एक लक्ष्मी विक्टोरिया अलबर्ट म्यूजियम में है। उसमें भी एक यक्ष देवी के चरणों के पास बैठा हुआ थैली से मुद्राएँ निकाल कर दे रहा है।

अभिषेक राज्यतिलक का एक विशेष अंग है तथा राज्यतिलक इसके बिना पूर्ण नहीं समझा जाता।[६] इस कारण भी लक्ष्मी का अभिषेक दिखाने का प्रयत्न किया गया है। श्री लक्ष्मी की मूर्ति मसरूर के तोरण पर प्राप्त हुई है जिसमें बुद्ध की भाँति इनके मस्तक के ऊपर दो गन्धर्व एक बड़ा-सा मुकुट हाथ में लिये हुए दिखाये गये हैं[७], उनके ऊपर गज देवी का अभिषेक कर रहे हैं। इस अभिषेक से माया देवी (बुद्ध की माता) से कोई सम्बन्ध नहीं है जैसा फूशे तथा पाल लुई कूशो इत्यादि पाश्चात्य विद्वानों का मत है।[८]

एक और स्वरूप जो हमें मिलता है वह दीपलक्ष्मी का है। यह स्वरूप आज भी बहुत प्रचलित है और दक्षिण भारत के प्रायः प्रत्येक मन्दिर में मिलता है। इसमें एक स्त्री को सर्वाभरण-भूषित सुन्दर वस्त्र पहिने

---

१. कल्पसूत्र – पृष्ठ १८५।
२. बदामी गुफा -- २ तथा ४; कुमार स्वामी – श्रीलक्ष्मी – फिगर २४ तंत्रसार भुवनेश्वरी की प्रार्थना में – पृष्ठ ७६।
३. मोतीचन्द्र -- पद्मश्री – पृष्ठ ५०७।
४. कुमार स्वामी -- श्रीलक्ष्मी – पृष्ठ १८५।
५. अथर्ववेद -- १८, ४, ३६ सायण भाष्य में "उत्सोपभरनी कलशम्..." इत्यादि।
६. कुमार स्वामी -- श्री लक्ष्मी – पृष्ठ १८७।
७. आर्केआलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया – अन्युअल रिपोर्ट १९१४–१५, खण्ड १, प्लेट २।
८. उपर्युक्त – कुमार स्वामी ने इस मत का स्वयम् पूर्णरूपेण खण्डन किया है।

हुए दिखाया जाता है । इनके हाथ में एक दीपक रहता है जिसमें तेल तथा बत्ती रहती है । इसी प्रकार की एक मूर्ति गान्धार कला की प्राप्त हुई है[1], जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है । इससे ऐसा अनुमान होता है कि इनका यह स्वरूप भी प्राचीन था जो निरन्तर बना रहा ।

कुछ विद्वानों का मत है कि ईरान की देवी आरडोक्षो के स्वरूप का जब भारतीयकरण हुआ तो उनके हाथ में धान के मुट्ठे के स्थान पर कमल दे दिया गया जैसा, हमें गुप्तकाल के चन्द्रगुप्त प्रथम के सिक्के तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय के सिक्कों को देखने से स्पष्ट हो जाता है । चन्द्रगुप्त प्रथम तथा समुद्रगुप्त के कुछ सिक्कों में इनके हाथ में धान का मुट्ठा दिखाया गया है परन्तु चन्द्रगुप्त द्वितीय के सिक्के में इनके हाथ में कमल का छत्ता है । समन्वय हमारे यहाँ की संस्कृति की विशेषता रही है । इस कारण कोई आश्चर्य नहीं कि कुषाणों के सिक्कों को आरडोक्षो को गुप्तकालीन सिक्के बनानेवालों ने लक्ष्मी बना डाला हो । यों लक्ष्मी की मूर्तियाँ साँची इत्यादि स्तूपों पर इतनी अधिक थीं कि सिक्का ढालनेवालों को इसकी कोई आवश्यकता न थी कि वे कुषाण देवी को लेकर लक्ष्मी का स्वरूप बनाते ।

इस प्रकार ऐसा ज्ञात होता है कि वैदिक निराकार "श्री" तथा लक्ष्मी को पीछे चल कर साकार रूप दिया गया है । सम्भवतः प्रचलित आदिवासियों की माता यक्षिणी को अपनाकर उनको आर्यदेवी लक्ष्मी का रूप दे दिया गया । ये देवी सर्वत्रदाता तथा सब को उत्पन्न करने वाली थीं । इनको पीछे चल कर विष्णु की पत्नी बना लिया गया तथा मध्य युग में "वैष्णवी" का रूप दिया गया और किसी-किसी मूर्ति में बलराम और कृष्ण को इनके पार्षद के रूप में भी दिखाया गया है, परन्तु इनका प्राचीन स्वरूप तथा इनका पद्म, जल इत्यादि से सम्बन्ध बना रहा । इनकी उत्पत्ति की कथा कई प्रकार से बन गयी जो हमारी समन्वय की प्रवृत्ति का परिणाम था । इनको बौद्धों और जैनों ने भी अपनाया, चाहे वे कहते रहें कि यह धर्म से पथ-भ्रष्ट करनेवाली देवी हैं । इनकी हारिति के साथ बौद्ध विहारों में पूजा भी होती थी जैसा कि कौशाम्बी के घोषिताराम से मिले एक मन्दिर से सिद्ध होता है ।[2] इनकी पूजा आज तो जैनों और हिन्दुओं के घरों में बड़ी धूमधाम से होती है और अब इन्हें अनार्यों की देवी मानने को कोई हिन्दू उद्यत नहीं हो सकता, चाहे इतिहास कुछ ही बताये ।

---

१. आर्केआलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया – आन्युअल रिपोर्ट – १९१५-१६, प्लेट ५ ।

२. गोविन्दचन्द्र —दी पारयूर ऑफ दी बुद्धिस्ट गाडेसेज ऑफ कौशाम्बी – मंजारी, मई १९५६, प्लेट २, पृ० १९; प्रो० शर्मा, प्रयाग विश्वविद्यालय की कृपा से ।

: १३ :

परिशिष्ट

श्रीसूक्तम्—

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ।। १ ।।
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ।। २ ।।
अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ।। ३ ।।
कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ।। ४ ।।
चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मिनीमीं शरणमहं प्रपद्ये अलक्ष्मीमें नश्यतां त्वां वृणे ।। ५ ।।
आदित्यवर्णे तपसोधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः ।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरायाश्च बाह्या अलक्ष्मीः ।। ६ ।।
उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन्कीर्तिमृद्धि ददातु मे ।। ७ ।।
क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धि च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ।। ८ ।।
गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ।। ९ ।।
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ।। १० ।।
कर्दमेन प्रजाभूता मयि संभवकर्दम ।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ।। ११ ।।
आपः स्रजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।
निचदेवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ।। १२ ।।
आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ।। १३ ।।
आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ।। १४ ।।
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योश्वान्विन्देयं पुरुषानहम् ।। १५ ।।

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
श्रियः पञ्च दशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ।। १६ ।।

कहीं-कहीं श्री सूक्त के साथ निम्नलिखित श्लोक भी प्राप्त होते हैं :—

सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे ।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम् ।। १७ ।।
धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः ।
धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणं धनमश्विनौ ।। १८ ।।
वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा ।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः ।। १९ ।।
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां श्रीसूक्तं जपेत् ।। २० ।।
पद्मानने पद्मऊरु पद्माक्षि पद्मसम्भवे ।
तन्मे भजसि पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम् ।। २१ ।।
विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम् ।
विष्णुप्रियसखीं देवीं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ।। २२ ।।
महालक्ष्मी च विद्महे विष्णुपत्नी च धीमहि ।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ।। २३ ।।
पद्मानने पद्मिनि पद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि ।
विश्वप्रिये विश्वमनोनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि सन्निधस्व ।। २४ ।।
आनन्दः कर्दमः श्रीदः चिक्लीत इति विश्रुताः ।
ऋषयः श्रियपुत्राश्च मयि श्रीर्देवी देवता ।। २५ ।।
ऋणरोगादिदारिद्र्यं पापंञ्च अपमृत्यवः ।
भयशोकमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा ।। २६ ।।
श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधात्पवमानं महीयते ।
धनं धान्यं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ।। २७ ।।

।। इति श्रीसूक्तम् ।।

पृष्ठ १, २ : श्रीसूक्त चौखम्बा संस्कृत-सीरीज, काशी से सन् १९२३ में मुद्रित ।

भविष्य महापुराण (प्रतिमा लक्षण)

(ब्राह्म पर्व प्रथम अध्याय १३२)

हन्त ते सर्वदेवानां प्रतिमालक्षणं परम् ।
वच्मि ते यदुशार्दूल आदित्यस्य विशेषतः ।। १ ।।
एकहस्ता द्विहस्ता वा त्रिहस्ता वा प्रमाणतः ।
तथा सार्द्धत्रिहस्ता च सवितुः प्रतिमा शुभा ।। २ ।।
प्रसादाद्द्वारतो वापि प्रमाणं च प्रकल्पितम् ।
तद्वत्प्रमाणं कर्तव्यं सततं शुभमिच्छता ।। ३ ।।

एकहस्ता भवेत् सौम्या द्विहस्ता धनधान्यदा ।
त्रिहस्ता प्रतिमा भानोः सर्वकामप्रदा स्मृता ॥ ४ ॥
सार्धत्रिहस्ता प्रतिमा सुभिक्षक्षेमकारिणी ।
अग्रे मध्ये च मूले च प्रतिमा सर्वतः समा ।
गान्धर्वी सा तु विज्ञेया धनधान्यावहा स्मृता ॥ ५ ॥
देवागारस्य यद्द्वारं तस्मादष्टांशमुद्यता ।
त्रिभागैः पिण्डिका कार्या द्वौ भागौ प्रतिमा भवेत् ॥ ६ ॥
अङ्गुलैश्च तथा मूर्तिश्चतुरशीतिसंमितैः ।
विस्तारायामतः कार्या वदनं द्वादशाङ्गुलम् ॥ ७ ॥
मुखात्रिभागैश्चिबुकं ललाटं नासिका तथा ।
कर्णौ नासिकाया तुल्यौ पादौ चानियतौ तयोः ॥ ८ ॥
नयने द्वयङ्गुले स्यातां त्रिभागा तारका भवेत् ।
तृतीयतारकाभागात्कुर्याद् दृष्टिं विचक्षणः ॥ ९ ॥
ललाटमस्तकोत्सेधं कुर्यात्तत्सममेव च ।
परिणाहस्तु शिरसो भवेद्द्वाविंशदङ्गुलः ॥ १० ॥
तुल्या नासिकया ग्रीवा मुखेन हृदयान्तरम् ।
मुखमात्रा भवेन्नाभिस्ततो मेढ्रमनन्तरम् ।
मुखविस्तारणमुरस्ततोऽर्धन्तु कटिः स्मृता ॥ ११ ॥
बाहू प्रवाहतुल्यौ तु ऊरू जङ्घे च तत्समे ।
गुल्फावस्तात्तु पादः स्यादुच्छ्रितश्चतुरङ्गुलः ॥ १२ ॥
षडङ्गुलसुविस्तारस्तस्याङ्गुष्ठाङ्गुलत्रयम् ।
प्रदेशिनी च तत्तुल्या हीना शेषा नखैर्युताः ॥ १३ ॥
चतुर्दशाङ्गुलः पाद आयामात्परिकीर्तितः ।
एवं लक्षणसंयुक्ता प्रतिमाऽर्च्या भवेत्सदा ॥ १४ ॥
अंसौ हरेस्तथैवोरू ललाटं च सनासिकम् ।
नियते नयने गण्डौ मूर्तेः कुर्यात्समुन्नते ॥ १५ ॥
विशालधवला वामपक्ष्मलायतलोचने ।
सस्मिताननपद्मस्य चारुविम्बाधरस्तथा ॥ १६ ॥
रत्नप्रोद्भासिमुकुटकटकाङ्गदहारवान् ।
अव्यङ्गपदमध्यादिसमायोगोऽपि शोभितः ॥ १७ ॥
सुप्रभो मण्डलश्चार्विचित्रमणिकुण्डलः ।
कराभ्यां काञ्चनीं मालां प्रोद्वहन्ससरोरुहाम् ॥ १८ ॥
एवं लक्षणसंयुक्तां कारयेदीहितप्रदाम् ।
प्रजाभ्यञ्च सदा भानुः शिवारोग्याभयप्रदः ॥ १९ ॥
अल्पाङ्गायां नृपभयं हीनाङ्गायामकल्पता ।
क्षोतोदर्यां च क्षुत्पीडा कृशायां तु दरिद्रता ॥ २० ॥

शिरोरुगण्डवदनैः सर्वाङ्गावयवैस्तथा ।
एवंलक्षणसम्पूर्णा प्रतिमा भवते शुभा ॥ २४ ॥
नासाललाटजङ्घोरुदण्डवक्षोभिरन्विता ।
× × × ॥ २५ ॥
कमलोदरकान्तिनिभः कञ्चुकगुप्तः प्रसन्नमुखः ।
× × × ॥ २६ ॥

× × × ।
ब्रह्मा कमण्डलुकरञ्चतुर्मुखः पङ्कजस्थश्च ॥ ३० ॥
स्कन्दः कुमाररूपः शक्तिधरो बर्हिकेतुश्च ।
शुक्लश्चतुर्विषाणो द्विपो महेन्द्रस्य वज्रपाणित्वम् ॥ ३१ ॥
तिर्यग् वंललाटसंस्थं तृतीयमपि लोचनं चिह्नम् ॥ ३२ ॥

क्षेमराज-श्रीकृष्णदास, मुम्बईस्थात् "श्री वेङ्कटेश्वर" मुद्रणालयात्प्रकाशिते भविष्यमहापुराणे — ११७-११८ पृष्ठे चैतत् ।

मत्स्य पुराण (मूर्ति निर्माण)

कलकत्ता नगरे सरस्वती यन्त्रालये १८७६ प्रक शितस्यास्य ११०० पृष्ठादरभ्य ११०६ पृष्ठ पर्यन्तम् ।

(अध्याय २५७)

अथ सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—

क्रियायोगः कथं सिध्येद् गृहस्थादिषु सर्वदा ।
ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्मयोगोविशिष्यते ॥ १ ॥

सूत उवाच—

क्रियायोगं प्रवक्ष्यामि देवतार्चानु कीर्तनम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं यस्मान्नान्यल्लोकेषु विद्यते ॥ २ ॥
प्रतिष्ठायां सुराणां तु देवतार्चानुकीर्तनम् ।
देवयज्ञोत्सवं चापि[1] बन्धनाद्येन मुच्यते ॥ ३ ॥
विष्णोस्तावत्प्रवक्ष्यामि[2] यादृग्रूपं प्रशस्यते ।
शङ्खचक्रधरं शान्तं[3] पद्महस्तं गदाधरम् ॥ ४ ॥
छत्राकारं शिरस्तस्य कम्बुग्रीवं शुभेक्षणम् ।
तुङ्गनासं शुक्तिकर्णं प्रशान्तोरू भुजक्रमम् ॥ ५ ॥

---

१. ङ. च. 'पि स्थापनार्चनम् ।
२. °ङ. च. मि यथास्थानं प्र° ।
३. ङ. च. शार्ङ्गपद्महं ।

क्वचिदष्टभुजं[1] विद्याच्चतुर्भुजमथापरम् ।
द्विभुजश्चापि कर्तव्यो भवनेषु[2] पुरोधसा ॥ ६ ॥
देवस्याष्टभुजस्यास्य यथास्थानं निबोधत ।
खड्गोगदाशरःपद्मं दिव्यं दक्षिणतो हरेः ॥ ७ ॥
धनुश्च खेटकं चैव शङ्खचक्रे च वामतः ।
चतुर्भुजस्य वक्ष्यामि यथैवायुधसंस्थितिः[4] ॥ ८ ॥
दक्षिणेन गदापद्मं वासुदेवस्य कारयेत् ।
वामतः शङ्खचक्रे च कर्तव्ये भूतिमिच्छता ॥ ९ ॥
कृष्णावतारे तु गदा वामहस्ते प्रशस्यते ।
यथेच्छया शङ्खचक्रे चोपरिष्टात्प्रकल्पयेत् ॥ १० ॥
अधस्तात्पृथिवी तस्य[5] कर्तव्या पादमध्यतः ।
दक्षिणे प्रणतं तद्वद्गरुत्मन्तं निवेशयेत् ॥ ११ ॥
वामतस्तु भवेल्लक्ष्मीः पद्महस्ता शुभानना ।
गरुत्मानग्रतोवापि संस्थाप्यो भूतिमिच्छता ॥ १२ ॥
श्रीश्चपुष्टिश्च कर्तव्ये पार्श्वयोः पद्मसंयुते ।
तोरणं चोपरिष्टात्तु विद्याधरसमन्वितम् ॥ १३ ॥
देवदुन्दुभिसंयुक्तं गन्धर्वमिथुनान्वितम् ।
पत्रवल्लीसमोपेतं सिंहव्याघ्रसमन्वितम् ॥ १४ ॥
तथाकल्पलतोपेतं स्तुवद्भिरमरेश्वरैः ।
एंवविधो भवेद्विष्णोस्त्रिभागेनास्य पीठिका ॥ १५ ॥
नवतालप्रमाणास्तु देवदानवकिन्नराः ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि मानोन्मानं विशेषतः ॥ १६ ॥
जालान्तरप्रविष्टानां भानूनां यद्रजःस्फुटम् ।
त्रसरेणुः सविज्ञेयो वालाग्रैस्तैरथाष्टभिः ॥ १७ ॥
तदष्टके न लिख्या तु यूका लिख्याष्टकैर्मता ।
यवोयूकाष्टकं तद्वदष्टभिस्तैस्तदङ्गुलम् ॥ १८ ॥
स्वकीयाङ्गुलिमानेन मुखं स्याद् द्वादशाङ्गुलम् ।
मुखमानेन कर्तव्या सर्वावयवकल्पना ॥ १९ ॥
सौवर्णी राजती वाऽपि ताम्री रत्नमयी तथा ।
शैली दारुमयी चापि लोहसीसमयी तथा ॥ २० ॥

१. ग. °जं कुर्याच्चतुर्भुजमथापि वा । द्वि° ।
२. ङ. च. भुवनेषु ।
३. क. ख. दिव्यं ।
४. क ख घ °स्थितिः । द° ।
५. ग. ङ. च. देवी ।
–०– एतदर्धं न ङ. च. पुस्तकयोः ।

रीतिका धातुयुक्ता वा ताम्रकांस्यमयी तथा ।
शुभदारुमयी वाऽपि देवतार्चा प्रशस्यते ॥ २१ ॥
अङ्गुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिर्यावदेव तु ।
गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ॥ २२ ॥
आषोडशा तु प्रासादे कर्तव्या नाधिका ततः ।
मध्योत्तमकनिष्ठा तु कार्या वित्तानुसारतः ॥ २३ ॥
द्वारोच्छ्रायस्य यन्मानमष्टधा तत्तु कारयेत् ।
भागमेकं ततस्त्यक्त्वा परिशिष्टं तु यद् भवेत् ॥ २४ ॥
भागद्वयेन प्रतिमा त्रिभागीकृत्य तत्पुनः ।
पीठिकाभागतः कार्या नातिनीचा न चोच्छ्रिता ॥ २५ ॥
प्रतिमामुखमानेन नव भागान्प्रकल्पयेत् ।
चतुरङ्गुला भवेद्ग्रीवा भागेन हृदयं पुनः ॥ २६ ॥
नाभिस्तस्मादधः कार्या भागेनैकेन[1] शोभना ।
निम्नत्वे विस्तरत्वे च अङ्गुलं परिकीर्तितम् ॥ २७ ॥
नाभेरधस्तथा मेढ्रं भागेनैकेन कल्पयेत्[2] ।
द्विभागेनाऽऽयतावूरू जानुनी चतुरङ्गुले[3] ॥ २८ ॥
जङ्घे द्विभागे विख्याते पादौ च चतुरङ्गुलौ ।
चर्तुदशाङ्गुलस्तद्वन्मौलिरस्य प्रकीर्तितः ॥ २९ ॥
ऊर्ध्वमानमिदं प्रोक्तं पृथुत्वं च निबोधत[4] ।
सर्वावयवमानेषु विस्तारं शृणुत द्विजाः ॥ ३० ॥
चतुरङ्गुलं ललाटं स्यादूर्ध्वं नासा तथैव च ।
द्वयङ्गुलं तु हनुर्ज्ञेय[5] ओष्ठः स्वाङ्गुलसम्मितः ॥ ३१ ॥
अष्टाङ्गुले ललाटे च तावन्मात्रे भ्रुवौ मते ।
अर्धाङ्गुला भ्रुवोर्लेखा मध्ये धनुरिवाऽऽनता ॥ ३२ ॥
उन्नताग्रा भवेत्पार्श्वे श्लक्ष्णा तीक्ष्णा प्रशस्यते ।
अक्षिणी द्वयङ्गुलायामे तदर्धं चैव विस्तरे ॥ ३३ ॥
उन्नतोदरमध्ये तु रक्तान्ते शुभलक्षणे ।
तारकार्धविभागेन दृष्टिः स्यात्पञ्चभागिका[6] ॥ ३४ ॥

---

१. – ग. शोभिना । ङ च शोभिता ।
२. – ङ. च. त् । त्रिभागमायं ।
३. – ङ. च. °ले. । द्विभागेनाऽऽयते जङ्घे पा° ।
४. – ग. °ध मे । स° ।
५. – क. ख. ओष्ठः स्वाङ्गुलसंमितः । चतुरङ्गु° ।
६. – क. ख. °गिका । द्वय° ।

द्व्यङ्गुलं तु भ्रुवोर्मध्ये नासामूलमथाङ्गुलम् ।
नासाग्रविस्तरं तद्वत्पुटद्वयमथाऽऽनतम्[1] ।। ३५ ।।
नासापुटबिलं तद्वदर्धाङ्गुलमुदाहृतम् ।
कपोले[2] द्व्यङ्गुले तद्वत्कर्णमूलाद्विनिर्गते[3] ।। ३६ ।।
हन्वग्रमङ्गुलं तद्वद्विस्तारो द्व्यङ्गुलो भवेत् ।
अर्धाङ्गुला भ्रुवो राजी प्रणालसदृशी समा ।। ३७ ।।
अर्धाङ्गुलसमस्तद्वदुत्तरोष्ठस्तु विस्तरे ।
निष्पावसदृशं तद्वन्नासापुटदलं भवेत्[4] ।। ३८ ।।
सृक्विकणी ज्योतिस्तुल्ये तु कर्णमूलात्षडङ्गुले ।
कर्णौ[5] तु भ्रूसमौ ज्ञेयावूर्ध्वं तु चतुरङ्गुलौ ।। ३९ ।।
द्व्यङ्गुलौ कर्णपार्श्वौ तु मात्रामेकां तु विस्तृतौ ।
कर्णयोरुपरिष्टाच्च मस्तकं द्वादशाङ्गुलम् ।। ४० ।।
ललाटं[6] पृष्ठतोऽर्धेन प्रोक्तमष्टादशाङ्गुलम् ।
षट्त्रिंशदङ्गुलश्चास्य परिणाहः शिरोगतः ।। ४१ ।।
सकेशनिचयो यस्य द्विचत्वारिंशदङ्गुलः ।
केशान्ताद्धनुका तद्वदङ्गुलानि तु षोडश ।। ४२ ।।
ग्रीवामध्यपरीणाहश्चतुर्विंशतिकाङ्गुलः ।
अष्टाङ्गुला भवेद् ग्रीवा पृथुत्वेन प्रशस्यते[7] ।। ४३ ।।
स्तनग्रीवान्तरं प्रोक्तमेकतालं[8] स्वयंभुवा ।
स्तनयोरन्तरं तद्वद्द्वादशाङ्गुलमिष्यते ।। ४४ ।।
स्तनयोर्मण्डलं तद्वद्द्व्यङ्गुलं परिकीर्तितम् ।
चूचुकौ मण्डलस्यान्तर्यवमात्रावुभौ स्मृतौ ।। ४५ ।।
द्वितालं[10] चापि विस्ताराद्वक्षःस्थलमुदाहृतम् ।
कक्षे षडङ्गुले प्रोक्ते बाहुमूलस्तनान्तरे ।। ४६ ।।

---

१. —घ. द्वत्संपुटद्वयमुन्नत॰ ।
२. —ङ च. ॰पोलौ द्वय ।
३. —ङ. च. ॰र्गतौ । ह॰ ।
४. —घ ॰णालीसदृशी तथा । अ॰ ।
५. —ग. च. त् । उभे तु सृक्विकणो तुल्ये क॰ ।
६. —क. ख, ॰लाटात्पृष्ठ॰ ।
७. —ङ. च. ॰ङ्गुलं ग्रीवा पृथु॰ ।
८. —ङ. च. विशिष्येत ।
९. —ङ च. ॰कनालं ।
१०. च. त्रितालं ।

चतुर्दशाङ्गुलौ[1] पादावङ्गुष्ठौ तु त्रियङ्गुलौ ।
पञ्चाङ्गुलपरीणाहमङ्गुष्ठाग्रं तथोन्नतम् ॥ ४७ ॥
अङ्गुष्ठकसमा तद्वदायामा[3] स्यात्प्रदेशिनी ।
तस्याः षोडशभागेन हीयते मध्यमाङ्गुली ॥ ४८ ॥
अनामिकाष्टभागेन कनिष्ठा चापि हीयते ।
पर्वत्रयेण चाङ्गुल्यौ गुल्फौ द्व्यङ्गुलकौ मतौ ॥ ४९ ॥
पार्ष्णिद्व्यङ्गुलमात्रस्तु कलयोच्चः प्रकीर्तितः ।
द्विपर्वाङ्गुष्ठकः प्रोक्तः परीणाहश्च द्व्यङ्गुलः ॥ ५० ॥
प्रदेशिनीपरीणाहस्त्र्यङ्गुलः समुदाहृतः ।
कन्यसाचाष्ट भागेन हीयते क्रमशो द्विजाः ॥ ५१ ॥
अङ्गुलेनोच्छ्रयः कार्यो ह्यङ्गुष्ठस्य विशेषतः ।
तदर्धेन तु शेषाणामङ्गुलीनां तथोच्छ्रयः ॥ ५२ ॥
जङ्घाग्रे परिणाहस्तु अङ्गुलानि चर्तुदश ।
जङ्घामध्ये परीणाहस्तथैवाष्टादशाङ्गुलः ॥ ५३ ॥
जानुमध्ये परीणाह एकविंशतिरङ्गुलः ।
जानूच्छ्रयोऽङ्गुलः प्रोक्तो मण्डलं तु त्रिरङ्गुलम् ॥ ५४ ॥
ऊरुमध्ये परीणाहो ह्यष्टाविंशतिकाङ्गुलः ।
एकत्रिंशोपरिष्टाच्च[4] वृषणौ तु त्रिरङ्गुलौ ॥ ५५ ॥
द्व्यङ्गुलं च तथा मेढ्रं परीणाहः षडङ्गुलम् ।
मणिबन्धादधो विद्यात्केशरेखास्तथैव च ॥ ५६ ॥
मणिकोश[5]परीणाहश्चतुरङ्गुल इष्यते ।
विस्तरेण भवेत्तद्वत्कटिरष्टादशाङ्गुला ॥ ५७ ॥
द्वाविंशति तथा स्त्रीणां स्तनौ च द्वादशाङ्गुलौ ।
नाभिमध्यपरीणाहो द्विचत्वारिंशदङ्गुलः ॥ ५८ ॥
पुरुषे पञ्चपञ्चाशत्कट्यां[6] चैव तु वेष्टनम् ।
कक्षयोरुपरिष्टात्तु स्कन्धौ प्रोक्तौ षडङ्गुलौ ॥ ५९ ॥

---

१. – ङ. च. पादावङ्गौ द्व्यङ्गुलतः स्मृतौ । पं ।
२. – ग. ङ्गुष्ठस्तु द्विरंगुलः । पं ।
— एतदर्धं न विद्यते ग. च. पुस्तकयोः ॥ + एतदर्धस्थानेऽयं पाठो ङ. च. पुस्तकयोः । चूचुके मण्डलस्यान्तः पादमात्रे उभे स्मृते इति ॥
३. ग घ. च. यामे स्या ।
४. घ. त्रिंशश्चोपरिष्ठो वृं ।
५. ग. 'कोष्ठप' ।
६. ग. 'ट्यांवै तन्तुवे' ।

अष्टाङ्गुलां तु विस्तारे ग्रीवां चैव विनिर्दिशेत् ।
परिणाहे तथा ग्रीवां कला द्वादश निर्दिशेत् ॥ ६० ॥
आयामो भुजयोस्तद्वद्द्विचत्वारिंशदङ्गुलः ।
कार्यं तु बाहुशिखरं प्रमाणे षोडशाङ्गुलम् ॥ ६१ ॥

ऊर्ध्वं यद्बाहुपर्यन्तं विन्द्यादष्टाङ्गुलं शतम्[1] ।
तथैकाङ्गुलहीनं तु द्वितीयं पर्व उच्यते ॥ ६२ ॥
बाहुमध्ये परीणाहो भवेदष्टादशाङ्गुलः ।
षोडशोक्तः प्रबाहुस्तु षट्कलोऽग्रकरो मतः ॥ ६३ ॥
सप्ताङ्गुलं करतलं पञ्चमध्याङ्गुली मता ।
अनामिका मध्यमायाः सप्तभागेन हीयते ॥ ६४ ॥

तस्यास्तु पञ्चभागेन कनिष्ठा परिहीयते ।
मध्यमायास्तु हीना वै पञ्चभागेन तर्जनी ॥ ६५ ॥
अङ्गुष्ठस्तर्जनीमूलादधः प्रोक्तस्तु तत्समः ।
अङ्गुष्ठपरिणाहस्तु विज्ञेयश्चतुरङ्गुलः ॥ ६६ ॥
शेषाणामङ्गुलीनां तु भागो भागेन हीयते ।
मध्यमापर्वमध्यं[2] तु अङ्गुलद्वयमायतम् ॥ ६७ ॥
यवो यत्नेन सर्वासां तस्यास्तस्याः प्रहीयते ।
अङ्गुष्ठपर्वमध्यं तु तर्जन्या सदृशं भवेत् ॥ ६८ ॥
यवद्वयाधिकं तद्वदग्रपर्व उदाहृतम् ।
पर्वार्धे तु नखान्विद्यादङ्गुलीषु समन्ततः ॥ ६९ ॥
स्निग्धं श्लक्ष्णं प्रकुर्वीत ईषद्रक्तं तथाऽग्रतः ।
निम्नपृष्ठं भवेन्मध्ये पार्श्वतः कलयोच्छ्रितम् ॥ ७० ॥

तथैव केशवल्लीयं स्कन्धोपरि दशाङ्गुला ।
स्त्रियः कार्यास्तु तन्वङ्ग्याः स्तनोरूजघनाधिकाः ॥ ७१ ॥
चर्तुदशाङ्गुलायाममुदां तासु[3] निर्दिशेत् ।
नानाभरणसंपन्नाः किंचिच्छ्लक्ष्णभुजास्ततः ॥ ७२ ॥
किंचिद्दीर्घं भवेद्वक्त्रमलकावलिरुत्तमा ।
नासा ग्रीवा ललाटं च सार्धमात्रं त्रिरङ्गुलम् ॥ ७३ ॥
अध्यर्धाङ्गुलविस्तारः शस्यतेऽधरपल्लवः ।
अधिकं नेत्रयुग्मं तु चतुर्भागेन निर्दिशेत् ॥ ७४ ॥
ग्रीवावलिश्च कर्तव्या किंचिदर्धाङ्गुलोच्छ्रया ।

---

१. क. ख. °ष्टाङ्गुलंशतम् । तं° ।
२. ग. घ. °मामध्येभागं तु ।
३. क. ख. नाम ।

एवं नारीषु सर्वासु देवानां प्रतिमासु च¹।
नवतालमिदं प्रोक्तं लक्षणं पापनाशनम् ॥ ७५॥
इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवार्चानुकीर्तने प्रमाणानुकीर्तनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकद्वि-
शततमोऽध्यायः ॥ २४७॥

पृष्ठ ६९२ – मत्स्य पुराण – हिन्दी साहित्य सम्मेलन –

मूर्तिनिर्माण की मान्यताएँ (अनुवाद)

देवता, दानव तथा किन्नरों की प्रतिमा नवताल की होनी चाहिए (अंगूठे से लेकर मध्यमा अंगुली तक फैलाने पर जितनी लम्बाई होती है, उसे ताल कहते हैं।) अब इसके बाद प्रतिमाओं के मान एवम् उन्मान की विशेषताएँ बतलाई जा रही हैं अर्थात् कितनी ऊँची, कितनी नीची, कितनी मोटी, कितनी लम्बी प्रतिमा होनी चाहिए। (जाल के भीतर से सूर्य की किरणों के प्रविष्ट होने पर जो धूलिकण दिखाई पड़ते हैं उसे त्रसरेणु कहते हैं। उस आठ त्रसरेणु के बराबर एक बालाग्र होता है, उसके आठ गुने जितनी एक लिख्या और आठ लिख्या की एक यूका होती है। आठ यूका का एक जव होता है, उन आठ जवों का एक अंगुल होता है। अपनी अंगुली के परिमाण से बारह अंगुल का मुख होता है, इसी मुख के मान के परिमाण से सभी अवयवों की कल्पना करनी चाहिए।) सुवर्ण की, चाँदी की, ताँबे की, पत्थर की, लकड़ी की, लोहे की, सीसे की, पीतल की, ताँबे की और काँसे से मिश्रित धातु की अथवा अन्य शुभ काष्ठों की बनी हुई देवताओं की प्रतिमा प्रशस्त मानी गयी है। अंगूठे की गाँठ से लेकर बित्ते भर तक की लम्बी प्रतिमा की स्थापना अपने घरों में करनी चाहिए, इससे बड़ी प्रतिमा बुद्धिमानों के घर के लिए नहीं पसन्द की जातीं। बड़े भवन में सोलह अंगुल की प्रतिमा रखी जा सकती है किन्तु इससे बड़ी तो कभी स्थापित नहीं करनी चाहिए। इन प्रतिमाओं को अपनी आर्थिक स्थिति के अनुकूल मध्यम, उत्तम, एवं कनिष्ट कोटि की बनानी चाहिए। प्रवेश द्वार की जो ऊँचाई हो, उसे आठ भागों में विभक्त कर दें उसके एक भाग को छोड़ कर जो शेष बचे उसके दो भाग की जितनी लम्बाई हो उतनी लम्बी प्रतिमा बनवाये। (यदि ८ फीट का ऊँचा द्वार है तो प्रतिमा २३½ इंच ऊँची होगी।)। बचे हुए भाग में तीन भाग करके एक भाग की पीठिका (देवताओं की मूर्तियों के नीचे का बना हुआ आसन) बनाना चाहिए (आसन प्रायः २० इंच का होगा) वह पीठिका न बहुत नीची हो और न बहुत ऊँची। प्रतिमा के मुख के भाग के मान (ऊँचाई) को नव भागों में विभक्त करें उसमें चार अंगुल में ग्रीवा तथा एक भाग में हृदय होगा। उसके नीचे के एक भाग में सुन्दर नाभि बनानी चाहिए। उसकी गहराई तथा विस्तार भी एक ही अंगुल का कहा गया है। नाभी के नीचे एक भाग में लिंग बनाये, दो भागों में जंघों का विस्तार रखे। घुटनों को चार अंगुल में बनायें, जंघे दो भागों में, पैर चार अंगुल के हों उसी प्रकार ऐसी मूर्ति का सिर चौदह अंगुल का बनाना चाहिए, ऐसा विधान बताया गया है। यह तो मूर्ति की ऊँचाई बताई गयी अब उसकी मोटाई या विस्तार सुनिये। ललाट की मोटाई चार अंगुल की होनी चाहिए। नासिका भी उतने ही अंगुल की ऊँची होनी चाहिए। दाढ़ी दो अंगुल में होनी चाहिए। ओठ भी दो ही अंगुल के विस्तार में माने गये हैं। मूर्ति के ललाट का विस्तार आठ अंगुल का होना चाहिए। उतने ही विस्तार में दोनों भौंहें भी बनानी चाहिए। भौंहों की रेखा आधे अंगुल की मोटाई में हो जो बीच में धनुष की भाँति वक्र हो। दोनों छोरों पर उसके

---

१. क. ख. च। तब चाल॰।

अग्र भाग उठे हों, उसकी बनावट चिकनी तथा सुन्दर होनी चाहिए। आँखों की लम्बाई दो अंगुल की हो, चौड़ाई एक अंगुल में हो। उसका मध्य भाग ऊँचा होना चाहिए। शुभ नेत्रों के छोरों पर लालिमा होनी चाहिए। तारे के अधोभाग से पाँच गुनी दृष्टि बननी चाहिए। दोनों भौहों के मध्य में दो अंगुल का अन्तर रहना चाहिए नासिका का मूल भाग एक अंगुल में रहे। इसी प्रकार नासिका के अग्रभाग एवम् दोनों पुटों को बनावे, जो नीचे की ओर झुके हुए हों। नासिका के पुटों के छिद्र आधे अंगुल के हों, दोनों कपोल दो अंगुल के हों जो कानों के मूल भाग से निकले हुए हों दाढ़ी का अग्रभाग एक अंगुल में तथा विस्तार दो अंगुल में होना चाहिए। आधे अंगुल में भौहों की रेखा हो जो काली घटा के समान श्याम रहनी चाहिए। नीचे का ओठ तथा ऊपर का ओठ आधे-आधे अंगुल के बराबर हों। उसी प्रकार नासिका के दोनों पुट निष्पाप तथा समान बनाने चाहिए। दोनों ओठों के समीपवर्ती भागों की ज्योति (?) के आकार का बनावें और उन्हें कान के मूल से छः अंगुल दूर पर बनावें। दोनों कानों की बनावट भौहों के समान रहेगी और उनकी ऊँचाई चार अंगुल की रहेगी। कानों के बगल में दो अंगुल रिक्त स्थान छोड़े उनका विस्तार एक मात्रा का हो। दोनों कानों के ऊपर मस्तक का विस्तार बारह अंगुल का होना चाहिए। ललाट प्रदेश से पीछे की ओर आधे भाग का विस्तार अठारह अंगुल का बताया गया है। इस प्रकार सारे मस्तक का विस्तार छत्तीस अंगुल का होता है और केश समेत उसका विस्तार ४२ अंगुल का। केशों के अन्त-प्रदेश से दाढ़ी तक का विस्तार सोलह अंगुल का होता है। दोनों कंधों के विस्तार का मान चौबीस अंगुल का है, ग्रीवा की मोटाई आठ अंगुल की मानी गई है, स्तन और ग्रीवा का अन्तर एक ताल का माना गया है, इसी प्रकार दोनों स्तनों में बारह अंगुल का अन्तर रहता है। दोनों स्तनों के मंडल को दो अंगुल में कहा गया है, दोनों चूचुक उन मंडलों के बीच में बनाना चाहिए। वक्षस्थल की चौड़ाई दो ताल की कही गई है तथा दोनों कक्ष प्रदेश छः अंगुल के जिन्हें बाहुओं के मूल भाग तथा स्तनों के बीच में बनाना चाहिए। दोनों पैर चौदह अंगुल तथा उनके दोनों अंगूठे दो या तीन अंगुल के होने चाहिए। अंगूठे का अग्रभाग उन्नत होना चाहिए तथा उसका विस्तार पाँच अंगुल में रहे। उसी प्रकार अंगूठे के समान ही प्रदेशिनी अंगुली को भी लम्बी बनाना चाहिए, उससे सोलहवाँ अंश अधिक मध्यमा अंगुली होगी, अनामिका अंगुली मध्यमा अंगुली की अपेक्षा आठवाँ भाग न्यून रहेगी। उसी प्रकार अनामिका से आठवाँ भाग न्यून कनिष्ठिका अंगुली रहेगी। इन दोनों अंगुलियों में तीन पोर बनानी चाहिए। पैरों की गाँठ दो अंगुल की मानी गयी है। दोनों एड़ियाँ दो-दो अंगुल में रहें किन्तु गाँठ की अपेक्षा यह एक कला अधिक ही रहे। अंगूठे में दो पोर बननी चाहिए, उसका विस्तार दो अंगुल का हो, प्रदेशिनी अंगुली का विस्तार तीन अंगुल का होना चाहिए। हे ऋषिगण ! कनिष्ठिका अंगुली क्रमशः इससे आठवाँ भाग हीन रहेगी। विशेषतया अंगूठे की मोटाई एक अंगुल की रखनी चाहिए, उसके आधे भाग जितनी अन्य शेष अंगुलियों की मोटाई रखनी चाहिए जंघे के अग्रभाग का विस्तार चौदह अंगुल का रहे, मध्यभाग में अठारह अंगुल का विस्तार रहे, जानु का मध्य भाग इक्कीस अंगुल के विस्तार का हो, जानु भाग की ऊँचाई एक अंगुल में तथा मण्डल तीन अंगुल में हो। उरुओं के मध्य भाग का विस्तार अट्ठाईस अंगुल का हो, इसके ऊपर का माप इकतीस अंगुल का अण्डकोश तीन अंगुल का तथा लिंग दो अंगुल का हो। उरु का विस्तार छः अंगुल का हो। मणिबन्ध आदि, केशों की रेखा, मणिकोश इन सब का विस्तार चार अंगुल का हो। कटि-प्रदेश का विस्तार अठारह अंगुल में हो। स्त्रियों की मूर्ति में कटि का विस्तार बाईस अंगुल का तथा स्तन का विस्तार बारह अंगुल का होना चाहिए। नाभि के मध्य भाग का विस्तार बयालीस अंगुल का होना चाहिए। पुरुष के कटि प्रदेश का पचपन अंगुल का विस्तार तथा दोनों कक्षों के ऊपर छः अंगुल के विस्तार में स्कन्धों को बनाने

की विधि है। आठ अंगुल के विस्तार में ग्रीवा का निर्माण कहा गया है, इसकी लम्बाई बारह कला की होनी चाहिए। दोनों भुजाओं की लम्बाई बयालीस अंगुल में हो, बाहु के मूल भाग सोलह अंगुल के प्रमाण में बनावे। बाहु के ऊपरी अंश तक बारह अंगुल का विस्तार बनना चाहिए। द्वितीय पार्श्व इसकी अपेक्षा एक अंगुल न्यून कहा गया है, बाहु के मध्य भाग का विस्तार अट्ठारह अंगुल का होना चाहिए। प्रबाहु सोलह अंगुल की होनी चाहिए। हाथ के अग्रभाग का मान छः कला में कहा गया है, हथेली का विस्तार सात अंगुल का है, उसमें पाँच अंगुलियाँ मानी गई हैं। अनामिका अंगुली मध्यमा की अपेक्षा सातवें भाग जितनी हीन होनी चाहिए उससे भी पाँचवें भाग जितनी न्यून कनिष्ठा अंगुली हो। मध्यमा से पाँचवें भाग जितनी न्यून तर्जनी हो, अंगूठा तर्जनी के उद्गम से नीची होनी चाहिए किन्तु लम्बाई में उतना ही होना चाहिए। अंगूठे का विस्तार चार अंगुल का बनना चाहिए। शेष अंगुलियों के विस्तार क्रमशः एक एक भाग न्यून होते जाते हैं। मध्यमा के पोरों के मध्य भाग में दो अंगुल का अन्तर रहना चाहिए। इसी प्रकार अन्य अंगुलियों के पोरों में एक-एक जव की कमी होती जाती है। अंगूठे के पोरों के मध्य भाग तर्जनी के समान ही रहना चाहिए। अगला पोर दो जव अधिक कहा गया है। अंगुलियों के पूर्वार्द्ध में नखों को बनना चाहिए इन को चिकना, सुन्दर तथा आगे की ओर कुछ लालिमायुक्त बनाना चाहिए। मध्य भाग में पीछे की ओर कुछ नीचा तथा बगल में अंश मात्र ऊँचा बनावें। उसी प्रकार कन्धों के ऊपर दस अंगुल में केशों के लट का निर्माण करना चाहिए। स्त्री-प्रतिमाओं को दुर्बलांगिनी बनाना चाहिए। इनके स्तन, ऊरु प्रदेश एवं जांघों को स्थूल बनाना चाहिए। उनके उदर प्रदेश की लम्बाई चौदह अंगुल की होनी चाहिए। प्रतिमा को अनेक प्रकार के आभूषणों से विभूषित तथा उसकी भुजाओं को कुछ मृदु एवं मनोहारी बनाना चाहिए। मुखाकृति कुछ अपेक्षाकृत लम्बी हो, अलकावली उत्तम ढंग से बनी हुई हो, नासिका, ग्रीवा एवं ललाट साढ़े तीन अंगुल के होने चाहिए। अधर-पल्लवों का विस्तार आधे अंगुल माना गया है। दोनों नेत्र अधर पल्लवों से चार गुने अधिक विस्तृत होने चाहिए एवं ग्रीवा की बलि आधे अंगुल को ऊंची बनानी चाहिए। इस प्रकार सभी देवताओं की प्रतिमाओं एवं स्त्री देवताओं की प्रतिमाओं के निर्माण में उपर्युत नियमों का पालन करना चाहिए। यह नव ताल के परिमाण की प्रतिमाओं का वर्णन पापों को नष्ट करनेवाला कहा गया है। ॥ १ – ७५ ॥

मत्स्य पुराण

॥ अथ द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

(पीठिका)

एकषष्ठ्यधिक द्विशततमोऽध्यायः ११२०–पृष्ठात्–११२१–पर्यन्तम्

सूतः उवाचः—

पीठिका[1] लक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः।
पीठोच्छ्रायं यथावच्च भागान् षोडश कारयेत् ॥ १ ॥
भूमावेकः प्रविष्टः स्याच्चतुर्भिर्जगती मता।
वृत्तो भागस्तथैकः[2] स्याद्वृत्तः[3] पाटलमागतः ॥ २ ॥

---

१. – ग. ङ. पिण्डिका।
२. – ङ. थैवास्य वृत्तभागास्तु भागशः। भा॰।
३. – घ स्याद्वृत्तपट्टस्तु भा॰।

भागैस्त्रिभिस्तथा कण्ठः[1] कण्ठपट्टस्तु[2] भागतः ।
भागाभ्यामूर्ध्वपट्टश्च शेषभागेन पट्टिका ॥ ३ ॥
प्रविष्टं भागमेकैकं जगती यावदेव तु ।
निर्गमस्तु पुनस्तस्य यावद्वै शेषपट्टिका[4] ॥ ४ ॥
वारिनिर्गमनार्थं तु तत्र[5] कार्यः प्रणालकः ।
पीठिकानां तु सर्वासामेतत्सामान्यलक्षणम् ॥ ५ ॥
विशेषान्देवताभेदान्छृणुध्वं मुनिसत्तमाः ।
स्थण्डिला वाऽथ वापी वा यक्षी वेदी च मण्डला ॥ ६ ॥
पूर्णचद्रा च वज्रा[6] च पद्मा वार्धशशी तथा ।
त्रिकोणा दशमी तासां संस्थानं वा निबोधत ॥ ७ ॥
स्थण्डिला चतुरस्रा तु वर्जिता मेखलादिभिः ।
वापी द्विमेखला ज्ञेया यक्षी चैव त्रिमेखला ॥ ८ ॥
चतुरस्रायता वेदी न तां लिङ्गेषु योजयेत् ।
मण्डला वर्तुला या तु [7]मेखलाभिर्गुणप्रिया[8] ॥ ९ ॥
रक्ता[9] द्विमेखला मध्ये पूर्णचन्द्रा तु सा भवेत् ।
मेखलात्रयसंयुक्ता षडस्रा वज्रिका भवेत ॥ १० ॥
षोडशास्रा भवेत्पद्मा किंचिद्ध्रस्वा तु मूलतः ।
प्रागुदक्प्रवणा तद्वत्प्रशस्ता लक्षणान्विता ॥ ११ ॥
त्रिशूलसदृशी तद्वत्त्रिकोणा ह्यूर्ध्वतो मता ।
तथैव धनुषाकारा सार्धचन्द्रा प्रशस्यते ॥ १२ ॥
परित्रेणं त्रिभागेन (ण) निर्गमं तत्र कारयेत् ।
विस्तारं तत्प्रमाणं च मूले चाग्रे तथोर्ध्वतः ॥ १३ ॥
जलमार्गश्च कर्तव्यस्त्रिभागेण (न) सुशोभनः ।
लिङ्गस्यार्धविभागेन स्थौल्येन समधिष्ठिता ॥ १४ ॥
मेखला तत्त्रिभागेन (ण) खातं चैव प्रमाणतः ।
अथवा पादहीनं तु शोभनं कारयेत्सदा ॥ १५ ॥

---

१. — ङ °ठः पिण्डापिण्डस्तु ।
२. — क ख. दृस्त्रिमा° ।
३. — ग °तः । यस्य न वृत्तपट्ट° ।
४. — ङ. च. °षपिण्डिका ।
५. — च. कार्यप्रणालिका । पि° ।
६. — ङ. च. वक्री ।
७. — घ. ला० त्रिगुणा पि° । ङ. °ला द्विगुणा पि० ।
८. — ङ °या. प्रोक्ता च. °या । संरक्ता ।
९. — घ. रिक्ता ।

उत्तरस्थं प्रगातं च प्रमाणादधिकं[1] भवेत् ।
स्थण्डिलायामयाऽऽरोग्यं धनं धान्यं च पुष्कलम् ॥ १६ ॥
गोप्रदा च भवेद् यक्षी वेदी सम्पत्प्रदा भवेत् ।
मण्डलायां भवेत्कीर्तिर्वरदा पूर्णचन्द्रिका ॥ १७ ॥
आयुष्प्रदा भवेद्वज्रा पद्मा सौभाग्यदा भवेत् ।
पुत्रप्रदाऽर्धचन्द्रा स्यात्त्रिकोणा शत्रुनाशिनी ॥ १८ ॥
देवस्य यजनार्थं तु पीठिका दश कीर्तिताः ।
शैले शैलमयीं दद्यात्पार्थिवे पार्थिवीं तथा ॥ १९ ॥
दारुजे दारुजां कुर्यान्मिश्रे मिश्रां तथैव च ।
नान्ययोनिस्तु कर्तव्या सदा शुभफलेप्सुभिः ॥ २० ॥
अर्चायामसमं[2] दैर्घ्यं लिङ्गयामसमं तथा ।
यस्य देवस्य या पत्नी तां पीठे परिकल्पयेत् ॥ २१ ॥
एतत्सर्वं समाख्यातं समासात्पीठलक्षणम् ॥
इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवर्ताचानुकीर्तने ।
पीठिकानुकीर्तनं नाम एकषष्ट्यधिकद्विशततमोध्यायः ॥ २६२ ॥

षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

पृ० सं० १११८

मत्स्य पुराण पृष्ठ ५३६ अध्याय २६०

श्लोक ४० – ५०

श्रियं देवीम् प्रवक्ष्यामि नवे वयसि संस्थिताम् ।
सुयौवनाम् पीनगण्डाम् रक्तौष्ठीम् कुञ्चितभ्रुवम् ॥ ४० ॥
पीनोन्नतस्तनतटाम् मणिकुण्डलधारिणीम् ।
सुमण्डलम् मुखम् तस्याः शिरः सीमन्तभूषणम् ॥ ४१ ॥
पद्मस्वस्तिकशङ्खैर्वा भूषिताम् कुण्डलालकैः ।
कञ्चुकाबद्धगात्री च हारभूषौ पयोधरौ ॥ ४२ ॥
नागहस्तोपमौ बाहू केयूरकटकोज्ज्वलौ ।
पद्महस्ते प्रदातव्यं श्रीफलं दक्षिणे भुजे ॥ ४३ ॥
मेखलाभरणं तद्वत्तप्तकाञ्चनसप्रभाम् ।
नानाभरणसम्पन्नां शोभनाम्बरधारिणीम् ॥ ४४ ॥
पार्श्वे तस्याः स्त्रियः कार्याश्चामरव्यग्रपाणयः ।
पद्मासनोपविष्टा तु पद्मसिंहासनस्थिता ॥ ४५ ॥
करिभ्यां स्नाप्यमानाऽसौ भृङ्गाराभ्यामनेकशः ।
प्रक्षालयन्तौ करिणौ भृङ्गाराभ्यां तथा परौ ॥ ४६ ॥

---

१. – क. ख. °धिकारयेत् ।

२. – क. ख. यामासम ।

स्तूयमाना च लोकेशैस्तथा गन्धर्व गुह्यकैः ।
तथैव यक्षिणी कार्या सिद्धासुरनिषेविता ।। ४७ ।।

पार्श्वयोः कलशौ तस्यास्तोरणे देवदानवाः ।
नागाश्चैवं तु कर्तव्याः खड्गखेटकधारिणः ।। ४८ ।।

अधस्तात्प्रकृतिस्तेषां नाभेरूर्ध्वं तु पौरुषी ।
फणाश्च मूर्ध्नि कर्तव्या द्विजिह्वा बहवः समा ।। ४९ ।।

पिशाचा राक्षसाश्चैव भूतवेतालजातयः ।
निर्मांसाश्चैव ते सर्वे रौद्रा विकृतरूपिणः ।। ५० ।।

क्षेत्रपालश्च कर्तव्यो जटिलो विकृताननः ।
दिग्वासा जटिलस्तद्वच्छ्वागोमायुनिषेवितः ।। ५१ ।।

कपालं वामहस्ते तु शिरः केशैः समावृतम् ।
दक्षिणे शक्तिकां दद्यादसुरक्षयकारिणीम् ।। ५२ ।।

[मूर्ति २५८ अध्याय २६३ पीठिका] ।

(अध्याय २६१ – मत्स्य पुराण – अनुवादक श्री रामप्रसाद त्रिपाठी, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न
पृष्ठ ७०२–७०३ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) हिन्दी अनुवाद

नवीन अवस्थावाली लक्ष्मी देवी की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ । उन सुन्दर नवयौवनावस्थावाली लक्ष्मी को उन्नत कपोल, लाल ओष्ठ, तिरछी भौंहें, उठे हुए विशाल उरोजवाली तथा मणिजटित कुण्डल से विभूषित बनाना चाहिए । उनका मुखमण्डल अति सुन्दर तथा शिर केश-विन्यास से विभूषित रहना चाहिए । अथवा पद्म, स्वस्तिक तथा शंखों से युक्त कुण्डल एवम् अलकावली से सुशोभित कंचुक शरीर में धारण किये हुए तथा दोनों स्तनों पर हार की लड़ें शोभित हो रही हों, ऐसा निर्मित करना चाहिए । हाथी के शुण्ड दण्ड की भाँति स्थूल तथा विशाल दोनों भुजाएँ केयूर तथा कटक से विभूषित हों, बायें हाथ में कमल तथा दाहिने हाथ में श्री फल देना चाहिए । उसी प्रकार मेखला का आभूषण भी पहिनाना चाहिए । शरीर की कान्ति तपाये हुए सुवर्ण के समान गौर वर्ण की होनी चाहिए । विविध प्रकार के आभूषणों से विभूषित तथा सुन्दर मनोहारी वस्त्रों से सुशोभित करना चाहिए । उन लक्ष्मी के पार्श्व में चमर धारण किये हुए अन्य स्त्रियों की प्रतिमा भी निर्मित करनी चाहिए, वे लक्ष्मी पद्म के सिंहासन पर बने हुए पद्म के आसन पर ही समासीन हों । ऊपर से झंझर को शुण्डा दण्ड में लिये हुए दो हाथी स्नान करा रहे हों । उन दोनों हाथियों के अतिरिक्त दो दूसरे हाथी उन हाथियों पर जल को झंझर के द्वारा छोड़ रहे हों । गन्धर्व, यक्ष तथा लोकेशगण स्तुति पाठ कर रहे हों । इसी प्रकार यक्षणी की प्रतिमा सिद्धों एवम् असुरों से सेवा की जाती हुई बनाना चाहिए । उसके अगल-बगल में दो कलश रहें तथा तोरण में देवताओं और दानवों की प्रतिमा रहे, नागों की भी प्रतिमा वहाँ रहे जो खड्ग तथा ढाल धारण किये हों नीचे की ओर उनका अपना शरीर बनाना चाहिए, नाभी से ऊपर मनुष्य की आकृति रहनी चाहिए । शिर में बराबरी से दिखाई पड़नेवाले दो जिह्वायुक्त फण बनाने चाहिए । पिशाच, राक्षस, भूत, वेताल आदि जातियों के लोगों को भी बनाना चाहिए जो देखने में अति विकृत, भयानक तथा मांसरहित दिखाई पड़े । क्षेत्रपाल को जटाओं से युक्त विकृत मुखवाला, नग्न, शृंगाल तथा कुत्तों से सेवित बनाना चाहिए । कपाल उसके बायें हाथ में देना चाहिए जो शिर के केशों से घिरा हुआ हो, दाहिने हाथ में असुरों को विनाश करनेवाली छुरी देनी चाहिए ।

★

विषय सम्बन्धी पुस्तकों की सूची

(क) पुस्तक तालिका

(१) अग्निपुराणम् – आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना – १९०० ई० ।

(२) अथर्ववेद संहिता (शौनकीय) – सनातन धर्म प्रेस, मुरादाबाद; प्रथम संस्करण सम्वत् १९८६ वि० ।

(३) अन्तगद दसाओ एण्ड दी अनुतरोवावाला दसाओ (दी एट्थ एण्ड दी नाइंथ अंगास ऑफ दी जैन कैनोन) सम्पादक एम० सी० मोदी, गुर्जर ग्रंथरत्न कार्यालय, गान्धी रोड, अहमदाबाद–१९३२ ई० ।

(४) अनर्घराघवम् – मुरारि, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई – १९२९ ई० ।

(५) अभिलषितार्थ चिन्तामणि – सोमेश्वरदेव, मैसूर – १९२६ ई० ।

(६) अर्थशास्त्र – कौटिल्य, सं० शामशास्त्री, मैसूर – १९२३ ई० ।

(७) अवस्ता – श्रीमद्दयानन्द एंग्लोवैदिक कालेज, लाहौर, प्रथम संस्करण – १९९१ वि० ।

(८) अहिर्बुध्न्य संहिता – अडयार लाइब्रेरी, अडयार, मद्रास, प्रथम खण्ड – १९१६ ई० ।

(९) अत्रि संहिता (अष्टादश स्मृतयः) – सस्ता संस्कृत साहित्य मण्डल, शामली, मुजफ्फरनगर, सम्वत् १९९८ वि० ।

(१०) इण्डियन इमेजेज – बी० सी० भट्टाचार्य, प्रथम खण्ड; थैकर स्पिंक एण्ड कं०, कलकत्ता १९२१ ई० ।

(११) इण्ट्रोडक्शन टू तंत्रशास्त्र – सर जान उडरफ, गणेश एंड कम्पनी प्रा० लि०, मद्रास, तृतीय संस्करण – १९५६ ई० ।

(१२) इण्डो योरोपियाँ ए इण्डो आरियाँ, ल आण्ड जुस्कवेर – त्रा सां अवां जी जू क्री – ड ला वाले पूसाँ (पारी – १९२४ ई०) ।

(१३) उत्कीर्ण लेखांजली – जयचन्द्र विद्यालंकार, मास्टर खेलाड़ी लाल एण्ड संस, कचौड़ी गली, वाराणसी; चतुर्थ संस्करण – सम्वत् २०१६ वि० ।

(१४) ए गाइड टू दी स्कल्पचर्स इन दी इण्डियन म्युजियम, दी ग्रीको बुद्धिस्ट स्कूल आफ गान्धार भाग २ – एन० जी० मजुमदार, आर्केआलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया १९३७, दिल्ली ।

(१५) ए गाइड टू दी आर्केआलाजिकल गैलेरीज ऑफ दी इण्डियन म्युजियम – सी० शिवराम मूर्ति, ट्रस्टीज ऑफ दी इण्डियन म्युजियम, कलकत्ता – १९५४ ई० ।

(१६) एक्सकवेशन्स ऐट हड़प्पा – माधोस्वरूप वत्स, खण्ड १ व २, मैनेजर ऑफ पब्लिकेशन्स, गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया, दिल्ली – १९४० ई० ।

(१७) एन्शेण्ट इण्डिया अएज डिस्क्राइब्ड बाई मेगास्थनीज एण्ड एरियन – माकक्रिंडिल, द्वितीय संस्करण कलकत्ता – १९२६ ई० ।

(१८) एलीमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी – टी० ए० गोपीनाथ राव, दी ला प्रिंटिंग हाउस, माउन्ट रोड, मद्रास, प्रथम खण्ड – १९१४ ई० ।

(१९) एसपेक्ट्स ऑफ अर्ली विष्णुइज्म – जे० गोण्डा, हेट प्राविन्सियाल उटरेख्ट जेनोटास्चाप वान कुन्स्टेन एन वेटनशाप्पेन; हेट उटरेख्ट युनिवसिटिइट्स फोण्ड्स नीदरलाण्डस – १९५४ ई० ।

(२०) ऐतरेय ब्राह्मण – हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, मेसाच्युसेट – १९२० ई० ।

(२१) ओरिसा एण्ड हर रिमेन्स, एनशण्ट एण्ड मेडीवल – एम. एम. गांगुली, कलकत्ता, १९१२ ई० ।

(२२) ऋग्वेद – पं० गौरीनाथ झा, "वैदिक पुस्तक माला" सुल्तानगंज, १९९२ वि० ।

(२३) कन्नौज – पं० रामकुमार दीक्षित, शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ ।

(२४) कर्णभारम् (भास नाटक चक्रम्) – द्वितीय संस्करण, १९५१ ई०; ओरियण्टल बुक एजेन्सी, पूना-२ ।

(२५) कर्पूरादिस्तोत्रम् – आर्थर अविलोन, १९२२ ई० ।

(२६) कल्पसूत्र (दी कल्पसूत्र ऑफ भद्रबाहू) – सम्पादक हरमन्न जकोबी, लिपजिग १८७९ ई० ।

(२७) कालिका पुराण – वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई – सम्वत् १९६४ वि० ।

(२८) काश्यप संहिता – सम्पादक श्री रों० भ० पार्थ सारथी भट्टाचार्य, वेंकटेश्वर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, तिरूपति – १९४८ तथा सम्पादक पी० रघुनाथ चक्रवर्ती भट्टाचार्य, श्री वेंकटेश्वर ओरियण्टल सीरीज –६, १९४३ ई० ।

(२८) कुमारसम्भवम् – कालिदास ग्रंथावलि, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी; द्वितीय संस्करण, सम्वत् ००७ वि० ।

(२९) कूर्म पुराण – बिबिलियोथिका इण्डिका, कलकत्ता – १८९० ई० ।

(३०) कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया – ख० १ ई० जे रैपसन, एस० चाँद एण्ड कम्पनी, लखनऊ; फस्ट इण्डियन रीप्रिंट १९५५ ई० ।

(३१) कौषीतकीब्राह्मणम् – जे० एन० हरमन्न, कास्टेबुल, लन्दन – १८८७ ई० ।

(३२) कृष्णोपनिषद् (ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्) – निर्णय सागर प्रेस, बम्बई; तृतीय संस्करण – १९२५ ई० ।

(३३) गरुड पुराण – वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई (संस्कृत टीका) ।

(३४) गायत्रीतंत्रम् – चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, बनारस–१, १९४६ ई० ।

(३५) चतुर्भाणि – डॉ० मोतीचन्द्र व श्री वासुदेवशरण अग्रवाल, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई; प्रथम संस्करण – दिसम्बर १९५९ ई० ।

(३६) जैन सूत्राज – हरमन्न जकोबी, सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट सीरिज खण्ड २२, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन – १८८४ ई० ।

(३७) जैमिनीयं ब्राह्मणम् – सेक्रेटरी, इण्टरनेशनल एकाडमी ऑफ इण्डियन कल्चर, नागपुर – १९५४ ई० ।

(३८) टेरा कोटाज फीगरीन्स फ्राम कौशाम्बी – सतीशचन्द्र काला, म्युनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद – १९५० ई० ।

(३९) ट्री एण्ड सर्पेण्ट वरशिप – जेम्स फरगूसन, डब्लू० एम० एच० एलेन एण्ड कं०, १३ वाटरलू प्लेस, लन्दन – १८६८ ई० ।

(४०) डिक्शीयोनेर इटिमोलोजिक डु ला लांग ग्रेक – इ० बोआजाक, पारी – १९२३ ई० ।

(४१) तक्षशिला खण्ड १, २, ३ – सर जान मार्शल, कैम्ब्रिज – १९५१ ई० ।

(४२) तैत्तिरीय संहिता (कृष्ण यजुर्वेदीय) – आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना – १९०४ ई० ।

(४३) तैत्तिरीय उपनिषद् – मणिलाल इच्छाराम देशाई, कोटसामुन बिल्डिग नं० ८, बम्बई ।

(४४) दक्षिणामूर्ति संहिता – जयकृष्णदास गुप्ता, विद्याविलास प्रेस, बनारस सिटी, १९३७ ई० ।

(४५) दशकुमारचरितम् – दण्डि, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई – शाके १८३५ ।

(४६) दी आर्ट ऑफ इण्डिया थ्रू दी एजेज़ – स्टेला क्रामरिश, दी फैडन प्रेस, ५ क्रामवेल प्लेस, लन्दन; द्वितीय संस्करण – १९५५ ई० ।

(४७) दी आर्ट ऑफ इण्डियन एशिया – हेनरिक जिम्मर, बालिंगन सीरीज़, न्यूयार्क; खण्ड १, २ १९५५ ई० ।

(४८) दी इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी – विनयतोष भट्टाचार्य, प्रकाशक – के० एल० मुखोपाध्याय, ६, १-ए, बन्छाराम अक्रूर लेन, कलकत्ता – १२; द्वितीय संस्करण – १९५८ ई० ।

(४९) दीघनिकाय – पाली टेक्स्ट सोसाइटी द्वारा लुजक एण्ड कं० लि०, ४६ ग्रेट रसेल स्ट्रीट, लन्दन ।

(५०) दी कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया सप्लीमेण्टरी वाल्यूम – दी इण्डस सिविलिजेशन – ए० एच० ह्वीलर, दी सिंडिक्स ऑफ दी कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन १९५३ ई० ।

(५१) दी डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी – जे० एन० बैनर्जी, कलकत्ता युनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता; द्वितीय संस्करण – १९५६ ई० ।

(५२) दी मानुमेण्ट्स ऑफ साँची, खण्ड १, २, ३ – मार्शल जे० एण्ड फूशे ए०, मैनेजर ऑफ पब्लिकेशन्स, गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया, दिल्ली – १९३७ ई० ।

(५३) दी मिरर ऑफ जेस्चर – आनन्द कुमार स्वामी तथा गोपाल कृष्णैया डुग्गीराला, हारवर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन – १९१७ ई० ।

(५४) दशोपनिषद् (ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्:) – निर्णय सागर प्रेस, बम्बई; तृतीय संस्करण – १९२५ ई०

(५५) देवीभागवतम् – पण्डित पुस्तकालय, काशी (१९५६ ई०) तथा वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई – विक्रम संवत् १९८८ ।

(५६) नागानन्दम् – श्री हर्ष, स्टैंडण्डर्ड पब्लिशिंग कं०, माई हीरागेट, जालन्धर सिटी, प्रथम संस्करण – १९५८ ई० तथा चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, बनारस-१ ।

(५७) नारदपुराणम् – वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई – १८६७ ई० ।

(५८) नीतिशतकम् – भर्तृहरि, मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड संस, वाराणसी – १९४७ ई० ।

(५९) नीलमतपुराणम् – रामलाल तथा पं० जगद्धर जद्दू, मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर, १९२४ ई० ।

(६०) नैषधमहाकाव्यम् – श्रीहर्ष, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस, बनारस-१, सम्वत् २०१० वि० ।

(६१) पद्मपुराणम् – (चार खण्ड) आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना – १८९४ ई० ।

(६२) प्रतिमानाटकम् – भास, द्वितीय संस्करण – १९५८ ई०, रामनरायणलाल बुक्सेलर, इलाहाबाद ।

(६३) प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् (भास नाटक चक्रम्) – ओरीयण्टल बुक एजेन्सी, पूना; द्वितीय संस्करण – १९५१ ई० ।

(६४) प्रतिवार्षिक पूजा कथा संग्रह – पं० गोपाल शास्त्री नेने, द्वितीय भाग – काशी, १९३३ ई० ।

(६५) पाणिनिकालीन भारतवर्ष – डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसीदास, नेपाली खपड़ा, बनारस; प्रथम संस्करण – सम्वत् २०१२ वि० ।

(६६) प्री हिस्टारिक इण्डिया – स्टुअर्ट पिग्गट, पेनगुन बुक्स, मिडिलसेक्स १९५२ ई० ।

(६७) फरदर एक्सकवेशन्स एट मोहनजोदड़ो खण्ड १, २ – इ० जे० एच० मांके, गवर्नमेण्ट आफ इंडिया, दिल्ली – १९३७ ई० ।

(६८) ब्रह्मपुराणम् – आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना – सन् १९३५ ई० ।

(६९) ब्रह्मवैवर्तपुराणम् – आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना १८९५ ई० ।

(७०) बुद्धचरितम् – अश्वघोष, संस्कृत भवन, कठौतिया, पो० काझा, जिला – पूर्णिया (बिहार); प्रथम संस्करण – दिसम्बर १९४२ ई० ।

(७१) बुद्धिस्ट आर्ट इन इण्डिया – ए० ग्रुनवेडेल बरनार्ड क्वेरिच, लन्दन – १९०१ ई० ।

(७२) भविष्य महापुराण – वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई – सम्वत् १९६७ वि० ।

(७३) भारतीय लिपितत्व – नगेन्द्रनाथ वसू, आर० सी० मित्रा, ९ कानपुकुरबाई लेन, बाग बाजार, कलकत्ता – १९१४ ई० ।

(७४) भारहुत इन्स्क्रपशन्स – बेनीमाधव बरूआ एण्ड कुमार गंगानन्द सिन्हा, कलकत्ता युनिवर्सिटी प्रेस, सीनेट हाऊस, कलकत्ता – १९२६ ई० ।

(७५) मत्स्यमहापुराणम् – खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुम्बई तथा आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना १९०७ ई० ।

(७६) मथुरा (उत्तर प्रदेश के सांस्कृतिक केन्द्र) – श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी, शिक्षा विभाग, उत्तर-प्रदेश, लखनऊ ।

(७७) मनुस्मृति – गंगाप्रसाद उपाध्याय, कला प्रेस, इलाहाबाद तथा नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ ।

(७८) महाभारत – श्री महावीर प्रिंटिंग प्रेस, लाहौर सम्वत् १९९० वि० ।

(७९) महानारायण उपनिषद् – गवर्नमेण्ट सेण्ट्रल बुक डिपो, बम्बई १८८८ ई० ।

(८०) मानवगृह्यसूत्रम् – दास, इम्प्रीमेरी डी० आई एकाडमी इम्पीरियल डेस साइन्सेज, वासआस्टर, ९ लीग्ने नं० १२, १८९७ ई० तथा सनातन धर्म प्रेस, मुरादाबाद ।

(८१) मानसार आन आर्किटेक्चर एंड स्कलपचर – पी० के० आचार्य, दी आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन ।

(८२) मानसोल्लास – प्रथम भाग – सोमदेव, सेण्ट्रल लाइब्रेरी, बड़ौदा – १९२५ ई० ।

(८३) मानसोल्लास – द्वितीय भाग – सोमेश्वर दत्त, गायकवाड़ ओरीयण्टल सीरीज नं० ३४, बड़ौदा १९३९ ई० ।

(८४) मारकण्डेयपुराणम् – पं० जीवानन्द विद्यासागर, सुपरिन्टेन्डेण्ट फ्री संस्कृत कालेज, कलकत्ता – १८७९ ई० तथा सनातन धर्म प्रेस, मुरादाबाद – १९०८ ई० ।

(८५) मालतीमाधवम् – गवर्नमेण्ट सेण्ट्रल बुक डिपो, बम्बई – १९०५ ई० ।

(८६) मालविकाग्निमित्रम् – कालिदास, कालिदास ग्रंथावलि, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी; द्वितीय संस्करण – सम्वत् २००७ वि० ।

(८७) मिथोलाजी आजियाटिक – पोल लुई कुशो, लिब्रेर डु फ्रांस, ११० बुलेवार सां जरमा, पारी १९२८ ई० ।

(८८) मिलिन्द पञ्ह (दी क्वेसचन्स आफ किंग मिलिन्द) – टी० डब्लू० आर० डेविडस, सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट सीरीज नं० ३५, ३६, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन ।

(८९) मुद्राराक्षस – विशाखदत्त, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, बनारस-१ ।

(९०) मोहनजोदड़ो एण्ड दी इण्डस सिविलिजेशन खण्ड १, २, ३ – सर जान मार्शल, आर्थर प्रासथेन, ४१ ग्रेट रसेल स्ट्रीट, लन्दन – १९३१ ई० ।

(९१) यक्षाज – आनन्द कुमार स्वामी, खण्ड १, २, दी स्मीयसोनीयन इन्स्टीट्यूट, वाशिंगटन, १९२८ ई० ।

(८२) रघुवंशन् – कालिदास, कालिदास ग्रंथावलि, अखिल भारतीय विक्रम परिषद, काशी, द्वितीय संस्करण – संवत् २००७ वि०।

(९३) रामायणम् – वाल्मीकि, गैसपरे गोरेसीओ, वाल्यूम सेकेण्डो – १८४४ ई०।

(९४) ललितासहस्रनाम – निर्णय सागर प्रेस, बम्बई – १९१४ ई० तथा वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

(९५) ला इक्नोग्राफी बुद्धिक ड् लाण्ड – अथवा दी बिगनिंग्स आफ बुद्धिस्ट आर्ट – फूशे ए०, हमफरी मिलफोर्ड, लन्दन – १९१७ ई०।

(९६) ला ग्राण्ड डीएस – जे० प्रजीलुस्की, पाइओट – पारी – १९५० ई०।

(९७) ला नूवेल रिसेर्श आ बेग्राम – हाकिन जे०, पारी – १९५४ ई०।

(९८) ला स्कलपत्यूर ड भारहुत – आनन्द कुमार स्वामी, एडिसन्स ड आर्ट एड हिस्टोरी, पारी १९५६ ई०।

(९९) ला स्कलपत्यूर ड बोध गया – आनन्द कुमार स्वामी, लेस एडिसन्स ड आर्ट एट ड हिस्टोरी, पारी – १९३५ ई०।

(१००) लिंगमहापुराणम् – क्षेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर मुद्रणालय, बम्बई; १९१७ ई०।

(१०१) वाजसनेयिमाध्यान्दिन, श्री शुक्ल यजुर्वेद संहिता – सनातन धर्म प्रेस, मुरादाबाद, द्वितीय संस्करण – संवत् १९९६ वि०।

(१०२) वामनपुराणम् – खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई – संवत् १९८६ वि०।

(१०३) वाराहमहापुराणम् – खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई – संवत् १९८० वि० तथा नवल किशोर प्रेस, लखनऊ – १९१५ ई०।

(१०४) विक्रमोर्वशीयम् – कालिदास, कालिदास ग्रंथावलि, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी; द्वितीय संस्करण – संवत् २००७ वि०।

(१०५) विष्णुधर्मोत्तरपुराणम् – स्टेला क्रामरिश, कलकत्ता युनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता; द्वितीय एवं संशोधित संस्करण – १९२८ ई० तथा श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई; संवत् १९९६ वि०।

(१०६) विष्णुपुराणम् – वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई संवत् १९६७ वि०।

(१०७) विष्णुसहस्रनाम – गीताप्रेस, गोरखपुर।

(१०८) वेणीसंहारम् – नारायण भट्ट, ओरीयण्टल बुक सप्लाइंग एजेन्सी, पूना – १९२२ ई० तथा चौखंबा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१।

(१०९) वैदिक इण्डेक्स आफ नेम्स एंड सब्जेक्ट्स – मैकडोनल एंड कीथ, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी – १९५८ ई०।

(११०) वृहत्संहिता – वाराहमिहिर, चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी १९५९ ई०।

(१११) वृहदारण्यक उपनिषद् – जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता – १८७५ ई० तथा आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना।

(११२) संस्कृत इंगलिश डिक्सनरी – मोनियर विलियम्स, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन; द्वितीय संस्करण – १९५६ ई०।

(११३) संस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय, शारदा मंदिर, काशी – १९४८ ई०।

(११४) सम नोट्स आन इंडियन आर्टिस्टिक अनाटामी – ए० एन० टैगोर, दी इंडियन सोसाइटी आफ ओरीयण्टल आर्ट, ७–ओल्ड पोस्ट आफिस स्ट्रीट, कलकत्ता – १९१४ ई०।

(११५) समरांगणसूत्रधार – सम्पादक महामहोपाध्याय टी० गनपत शास्त्री, बड़ौदा सेण्ट्रल लाइब्रेरी, बड़ौदा; प्रथम खंड – १६२४ ई०, द्वितीय खंड १६२५ ई० ।

(११६) सामवेद – पं० जयदेव शर्मा, आर्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर संवत् २००३ वि० ।

(११७) साधनमाला – विनयतोष भट्टाचार्य, गायकवाड़ ओरीयण्टल सीरीज, बड़ौदा; खण्ड १ – १६२५ ई०, खण्ड २ – १६२८ ई० ।

(११८) सीतोपनिषद् (ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्ः) – निर्णय सागर प्रेस, बम्बई; तृतीय संस्करण १६२५ ई० ।

(११६) सेलेक्ट इन्सक्रिपशन्स बेअरिंग आन इंडियन हिस्ट्री एण्ड सिविलिज़ेशन – दिनेश चन्द्र सरकार, कलकत्ता युनिवर्सिटी, कलकत्ता – १६४२ ई० ।

(१२०) सौभाग्य लक्ष्मी – पं० कन्हैयालाल मिश्र, बम्बई – संवत् १६८८ वि० ।

(१२१) सौभाग्य लक्ष्म्युपनिषद् (ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्) – निर्णय सागर प्रेस, बम्बई; तृतीय संस्करण – १६२५ ई० ।

(१२२) सौन्दर्यलहरी – गनेश एण्ड कम्पनी, मद्रास – १६५७ ई० ।

(१२३) सौन्दरनन्दकाव्यम् – अश्वघोष, संस्कृत भवन, कठौतिया, पो० काझा, जिला – पूर्णिया; द्वितीय संस्करण – मई १६५६ ई० ।

(१२४) स्कल्पचर्स इन दी इलाहाबाद म्युनिसिपल म्यूजियम – सतीश चन्द्र काला, किताबिस्तान, इलाहाबाद – १६४६ ई० ।

(१२५) स्कान्दंमहापुराणम् – खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई – संवत् १६६६ वि० ।

(१२६) स्वप्नवासवदत्तम् (भास नाटकचक्रम्) – ओरीयण्टल बुक एजेन्सी, पूना-२; द्वितीय संस्करण – १६५१ ई० तथा चौखंबा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१ ।

(१२७) शतपथब्राह्मणम् – श्रीगौरीशंकर गोयनका, अच्युतग्रंथमाला, काशी, प्रथम व द्वितीय खंड, प्रथम संस्करण – संवत् १६६४ वि० ।

(१२८) शाक्तानन्द तरंगिणी – आगमानुसंधान समिति, कलकत्ता, बँगला संस्करण ।

(१२६) शारदातिलकम् – दी संस्कृत प्रेस डिपोजिटरी, ३० कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता; खण्ड १, २, १६३३ ई० ।

(१३०) शुक्रनीति सार – जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण – १८६० ई० ।

(१३१) शुक्रनीति शास्त्र – हिन्दू जगत् कार्यालय, शामली, जिला – मुजफ्फरनगर ।

(१३२) शुक्लयजुर्वेद – वैदिक यंत्रालय, अजमेर – संवत् १६८० वि० ।

(१३३) शिवपुराणम् – श्याम काशी प्रेस, मथुरा (दो भागों में) १६६६ वि० ।

(१३४) शिशुपालवधम् – माघ, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई; सातवाँ संस्करण १६४० ई० ।

(१३५) शिल्परत्नम् – श्रीकुमार, सम्पादक के० साम्बशिव शास्त्री, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज नं० ६८ खण्ड २, १६२६ ई० ।

(१३६) श्रावस्ती – एम० वेंकटारामैया, मैनेजर आफ पब्लिकेशन्स, गवर्नमेण्ट आफ इंडिया, दिल्ली १६५६ ई० ।

(१३७) श्रीमद्भागवतम् – श्री राधाविनोद, 'श्रीदेवकीनन्दन मुद्रणालय', काशी – संवत् १६६१ वि० ।

(१३८) श्रीमहालक्ष्मी व्रतकथा – लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, कल्याण, बम्बई संवत् १६७२ वि० ।
(१३९) श्रीवत्स फ्राम बाली – सिलवांलेवी, बड़ौदा – १६३३ ई० ।
(१४०) श्रीसूक्तम् – भार्गव पुस्तकालय, काशी तथा चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१, १६२३ ई० ।
(१४१) श्रृंगारशतकम् – भर्तृहरि, हरिदास एण्ड कं०, कलकत्ता – मई १६२५ ई० ।
(१४२) हर्षचरितम् – निर्णय सागर प्रेस, बम्बई ।
(१४३) हिन्दू हालिडेज एंड सेरिमोनियल्स – बी० ए० गुप्ता, कलकत्ता – १६१६ ई० ।
(१४४) हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट – आनन्द कुमार स्वामी, एडवर्ड गोल्डस्टन, लन्दन – १६२७ ई० ।
(१४५) त्रिपुरारहस्यम् – गवर्नमेण्ट संस्कृत लाइब्रेरी, बनारस प्रथम खंड – १६२५ ई०, द्वितीय खण्ड १६२७ ई०, तृतीय खण्ड – १६२८ ई० तथा चतुर्थ खण्ड १६३३ ई० ।

(ख) लेखों की तालिका

(१) अप फ्राम दी वेल आफ टाइम – लुई मारडन, दी नेशनल ज्योग्राफिकल मैगजीन, जनवरी १६५६ ई० ।
(२) अर्ली इण्डियन आइकोनोग्राफी 'श्रीलक्ष्मी' – आनन्दकुमार स्वामी, ईस्टर्न आर्ट खण्ड १, जनवरी १६२६ ई० ।
(३) आरकेइकटेराकोटाज – डॉ० कुमार स्वामी, "मार्ग" भाग ६ खण्ड १ ।
(४) आवर लेडी ऑफ ब्यूटी एण्ड एबण्डंस 'पद्मश्री' – डॉ० मोती चन्द्र, नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ कमेटी, प्रभुदयाल बिल्डिंग, कनाट सरकस, नई दिल्ली, नवम्बर १४, १६४६ ई., पृ. ४६७–५१३ ।
(५) एक्सकवेशन्स ऐट भीटा – जे० एच० मार्शल, पृष्ठ २६-६४; आर्केआलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट १६११-१२ ई० ।
(६) एक्सकवेशन्स ऐट वसाढ़ – टी० ब्लाच, आर्केआलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट १६०३-१६०४ ई० ।
(७) एक्सकवेशन्स ऐट हस्तिनापुर इत्यादि – बी० बी० लाल, एन्शेण्ट इण्डिया नं० १०-११ पृष्ठ ५-१५१, डाइरेक्टर जनरल ऑफ इण्डिया, न्यू दिल्ली (१६५४-५५ ई०) ।
(८) एक्सप्लोरेशन ऑफ हिस्टारिकल साइट्स – वाई० डी० शर्मा, एन्शेण्ट इण्डिया नं० ६ पृष्ठ ११६-१६६, डाइरेक्टर जेनरल ऑफ इण्डिया, डिपार्टमेण्ट ऑफ आर्केआलाजी, दिल्ली – १६५२ ई० ।
(९) एन एन्शेण्ट टेक्स्ट आन दी कास्टींग ऑफ मेटल इमेजेज – सर सी० कुमार सरस्वती, जरनल ऑफ इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियण्टल आर्ट खण्ड ४, न० २, दिसम्बर १६३६ ई०, पृष्ठ १३६-१४३ ।
(१०) एनशेण्ट इण्डियन आइवरीज – मोतीचन्द्र, प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम बुलेटिन नं० ६, १६५७-५८ ई०, बम्बई ।
(११) ओन दी आइकोनोग्राफी ऑफ दी बुद्धाज नोटिवीटी –फूशे, आर्केआलाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया मेमार्यस नं० ४६, १६३६ ई० ।

(१२) काशी की प्राचीन देवमूर्तियाँ 'श्रीलक्ष्मी' – नारायण दत्तात्रेय कालेकर, 'आज', २६ अक्टूबर, १९५७ ई०, पृष्ठ ५ कालम ३ ।

(१३) कौशाम्बी की मृणमूर्तियाँ – सतीशचन्द्र काला, सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रंथ, संवत् २००७ वि०, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

(१४) गौतमीपुत्र श्री शातकर्णी की विजय प्रशस्ति – श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, विक्रमांक वैशाख-माघ २००० वि० ।

(१५) जब शिव जी ने जापान को चीन के हमले से बचाया – भिक्षु चिम्मनलाल, धर्मयुग, – १२ फरवरी, १९६१ ई० ।

(१६) दी इण्डस सिविलिजेशन एंड दी नियर ईस्ट – फ्रांकफोर्ट, एनुअल बिबलियोग्राफी ऑफ इंडियन आर्केआलाजी, लाइडन, पृष्ठ १३३ – १९३६ ई० ।

(१७) दी कांकरर्स लाइफ इन जैन पेंटिंग – आनन्द कुमार स्वामी, जरनल ऑफ इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरीयण्टल आर्ट खण्ड ३ नं० २ – १९३५ ई० ।

(१८) दी पारयूर ऑफ दी बुद्धिस्ट गाडेसेज ऑफ कौशाम्बी – गोविन्द चन्द्र, 'मंजारी', मई १९५६ ई०

(१९) दी लैम्प बेअरर (दीपलक्ष्मी) – जी० याजदानी, जर्नल ऑफ इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरीयण्टल आर्ट, खण्ड २, १९३४ ई० पृष्ठ संख्या ११, १२ ।

(२०) दिवाली थ्रू दी एजेज – सुभाष जे० रेले, दी लीडर, अक्टूबर २०, १९६० ई० पृष्ठ १ कालम ७ ।

(२१) नोट्स आन सम इण्डियन आम्युलेट्स – मोरेश्वर दीक्षित, बुलेटिन, प्रिंस ऑफ वेल्स म्युजियम ऑफ वेस्टर्न इण्डिया, बम्बई ।

(२२) पद्मिनी विद्या – जे० एन० बैनर्जी, जर्नल ऑफ इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरीयण्टल आर्ट १९४१ ई० ।

(२३) पारयूर ये बीजू डा लाण्ड प्रोतो हिस्तारिक थेज आ युनिवर्सिटी डु पारी (१९५५ ई०) गोविन्दचन्द्र ।

(२४) ब्रह्मयामल तंत्र (ए न्यू टेक्स्ट ऑन प्रतिमा लक्षण) – पी० सी० बागची, जरनल ऑफ इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरीयण्टल आर्ट खण्ड ३, दिसम्बर १९३५ ई० ।

(२५) भारतीय व्यायाम के साधन 'गदा' – नीलकण्ठ जोशी, 'आज', ३० अगस्त, १९५९ ई० ।

(२६) मसोन की मृणमूर्तियाँ – गोविन्द चन्द्र, 'आज' ५ जनवरी, १९५९ ई० ।

(२७) लम्पसकस से प्राप्त भारतलक्ष्मी की मूर्ति – श्री वासुदेवशरण अग्रवाल, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, विक्रमांक वैशाख-माघ २००० वि०, पृ० ३९-४२ ।

(२८) ल लोटस् ए ला नेसान्स डे डयु – ए० मोरे, जुरनाल आजियातिक मे-जुयाँ १९१७ ई० ।

(२९) वैदिक वर्ड्स् फार ब्यूटीफुल एण्ड ब्युटी इत्यादि – ओल्डनवर्ग, रूपम नं० ३२, अक्टूबर १९२७ ई० ।

(३०) सम भोजपुरी फोक सांग्स – सर जी० ए० ग्रीयर्सन, दी जरनल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड, लन्दन १९१० ई० ।

(३१) स्टोन डिस्क्स फाउण्ड एट मुर्तजीगंज – एस० ए० सीथर, जरनल ऑफ बिहार रिसर्च सोसाइटी खण्ड ३७, १९५१ ई० ।

*
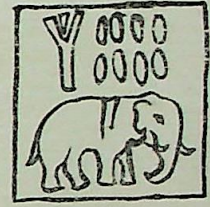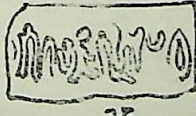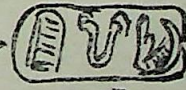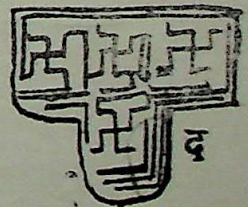
सिन्धु घाटी की मोहरों पर देवी (लक्ष्मी) की मूर्ति, गज तथा स्वस्तिक की आकृतियाँ।

क
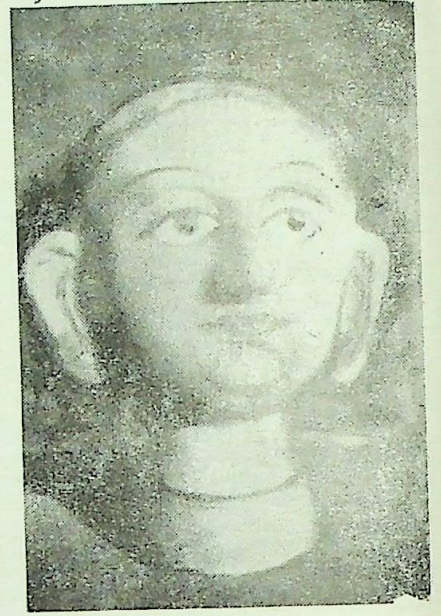
ख

[क] पटना से प्राप्त मौर्यकालीन लक्ष्मी की मृणमय मूर्ति ।

[ख] आधुनिक लक्ष्मी की मृण मूर्ति ।

[ग] पाषाण के छल्लों पर बनी लक्ष्मी की मूर्ति ।

फलक : ३

क

ख

ग
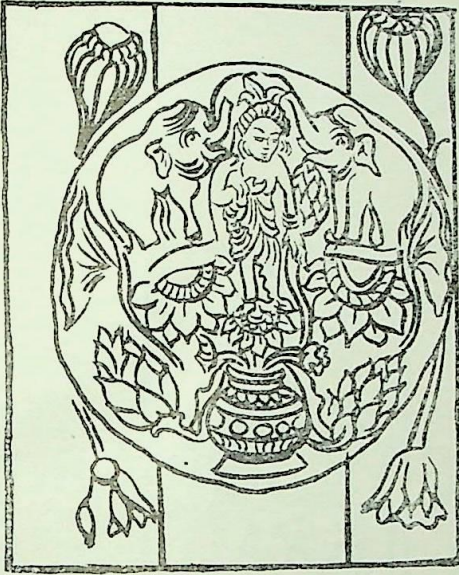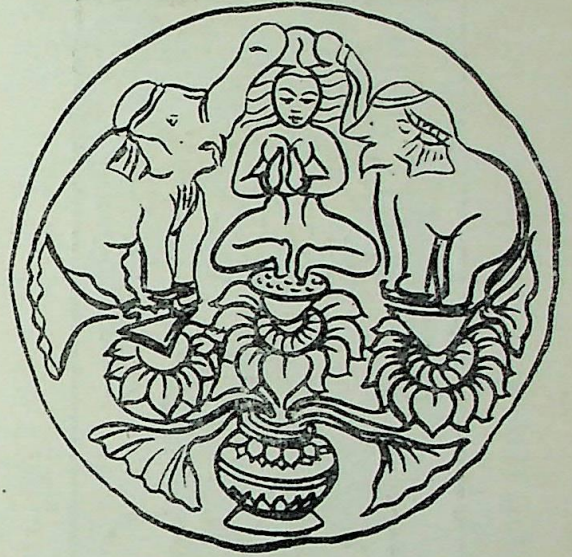
भारहुत के पाषाण-खण्डों पर अंकित खड़ी और बैठी की गजलक्ष्मी की मूर्तियाँ ।

फलक : ४

ख

क

भारहुत के पाषाण-खण्डों पर अंकित :

[क] श्री माँ देवता की मूर्ति ।

[ख] पद्म-हस्ता लक्ष्मी की मूर्ति ।

फलक : ५

ग

क

घ

ङ
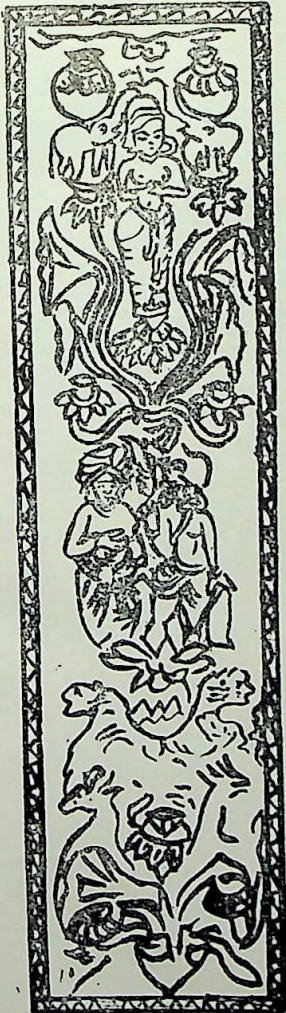
साँची के द्वारों के तोरण तथा खम्भों पर अंकित
पद्म-हस्ता तथा गज-लक्ष्मी की मूर्ति ।

फलक : ६

क

ग

घ

ख

[क] साँची के पाषाण-खण्ड पर अंकित पद्मवासिनी लक्ष्मी ।

[ख] सुङ्गकालीन लक्ष्मी की मूर्ति ।

[ग] सुङ्गकालीन राजलक्ष्मी की मूर्ति ।
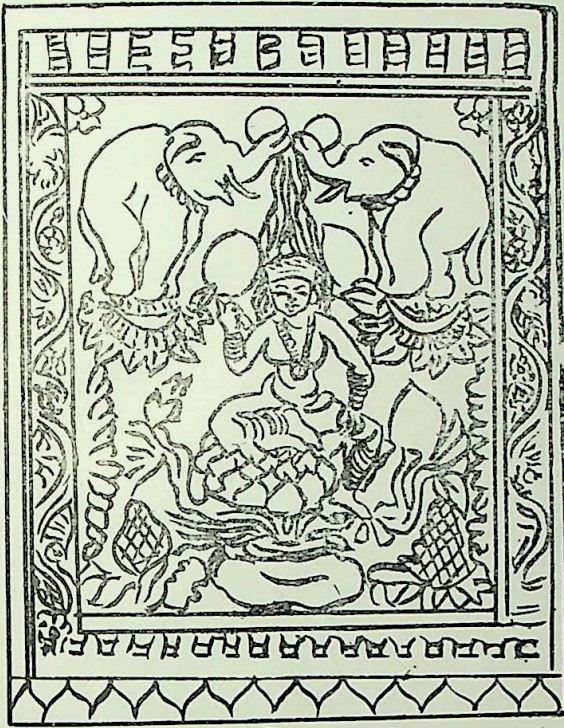
क

ख

ग

[क] साँची से प्राप्त गजलक्ष्मी की मूर्ति ।

[ख] बसाढ़ से प्राप्त एक मृणमय फलक पर पंख लगी हुई लक्ष्मी की मूर्ति ।

[ग] बसाढ़ से प्राप्त एक मोहर पर नाव पर खड़ी लक्ष्मी की मूर्ति ।

फलक : ८

ख

बोध-गया के पाषाण-खण्डों पर अंकित लक्ष्मी की मूर्ति ।

क—ख—ग—मोहरों तथा मुद्राओं पर अंकित लक्ष्मी की मूर्ति ।

घ—ङ—लक्ष्मी की मृणमय मूर्तियाँ ।

फलक . ६ (बे)

च—लक्ष्मी की मृणमय मूर्ति।

फलक : १०
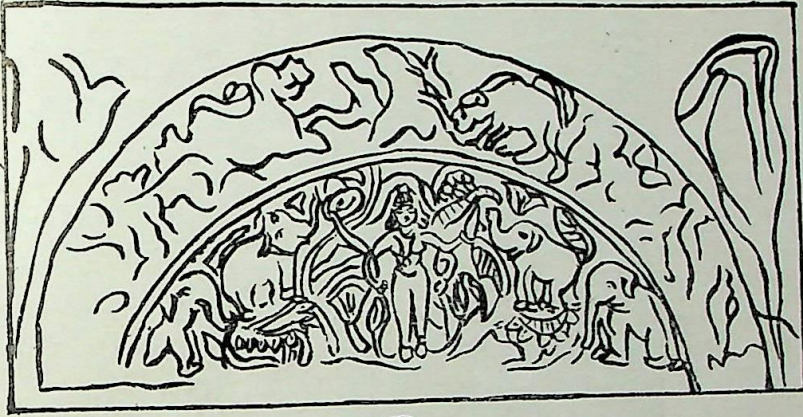
क
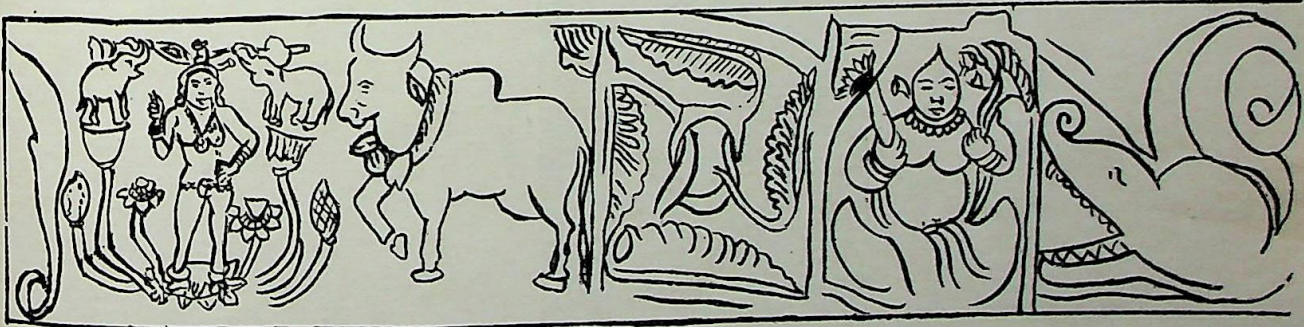
ख

[क] खण्ड-गिरि के पाषाण-खण्ड पर अंकित गज-लक्ष्मी ।

[ख] कौशाम्बी से प्राप्त एक पाषाण-खण्ड पर अंकित गज-लक्ष्मी, वृषभ, गज स्वस्तिक, यक्ष तथा मकर ।

फलक : ११

कौशाम्बी से प्राप्त एक पाषाण पर घट से निकलते हुए पद्म पर गज-लक्ष्मी की मूर्ति ।

फलक : १२
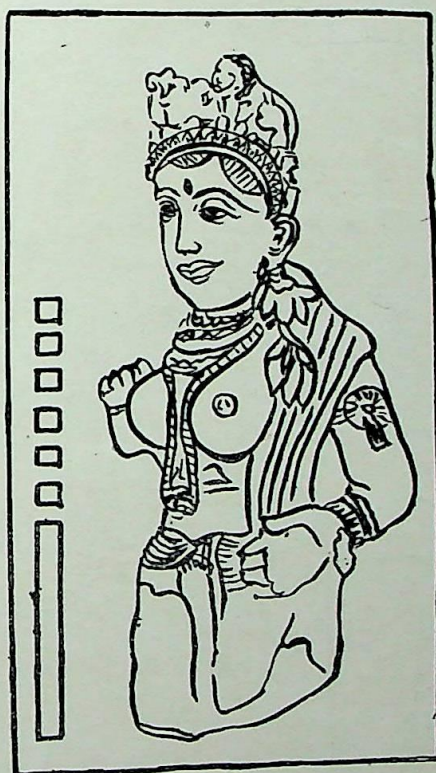
कौशाम्बी से प्राप्त ईसा की प्रथम शताब्दी की एक गजलक्ष्मी की मृणमय मूर्ति गज-मुकुट पर अंकित है ।

फलक : १३

तक्षशिला से प्राप्त लक्ष्मी की विविध आकृतियाँ

फलक : १४
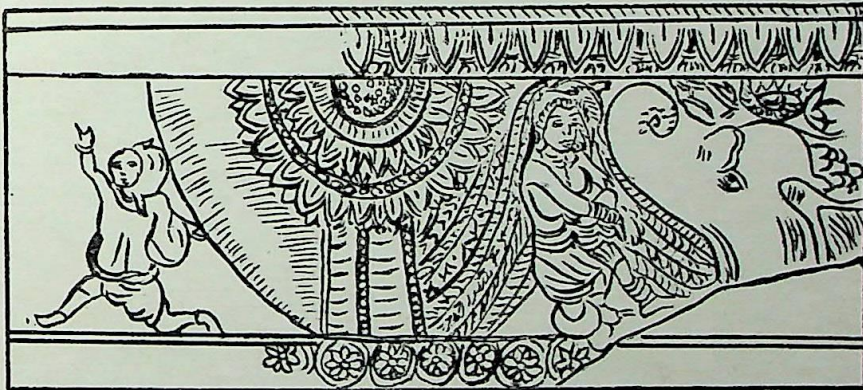
अमरावती के एक पाषाण-खण्ड पर अंकित लक्ष्मी की मूर्ति

फलक : १५

क

ख

क--शेष शायी विष्णु के साथ लक्ष्मी की मूर्ति (कम्बोज)।

ख--गणेश, लक्ष्मी, कुबेर।
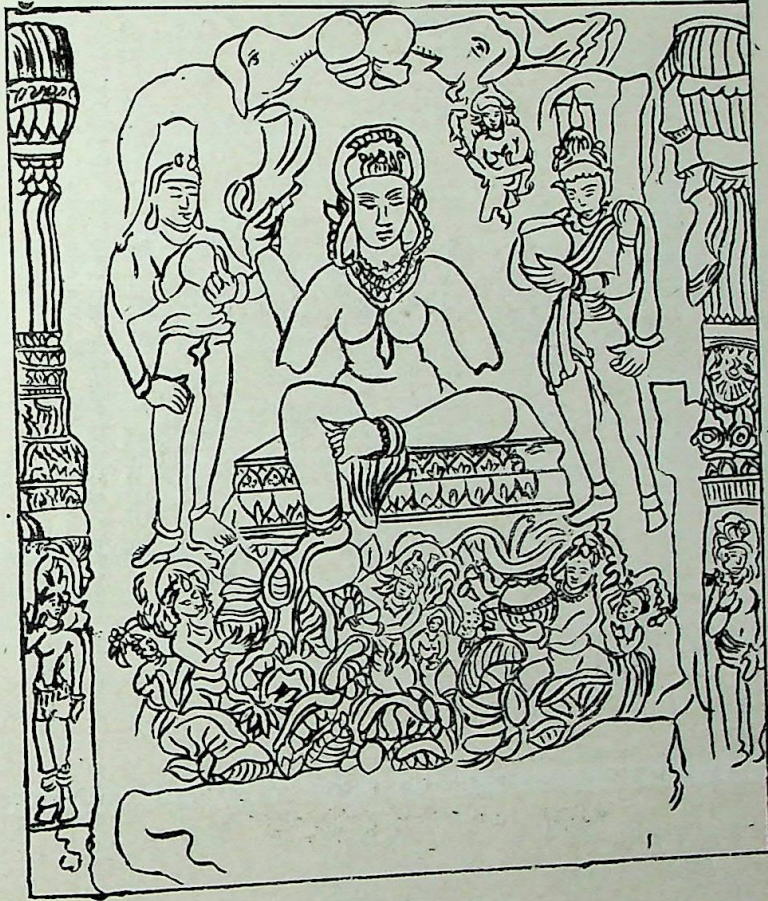
इलोरा में अंकित गजलक्ष्मी की मूर्ति ।

क--खिचिंग की गजलक्ष्मी।

ख--लक्ष्मी : दक्षिण भारत से प्राप्त।

फलक : १८

ममल्ली पुरम् की गज लक्ष्मी ।

फलक : १६
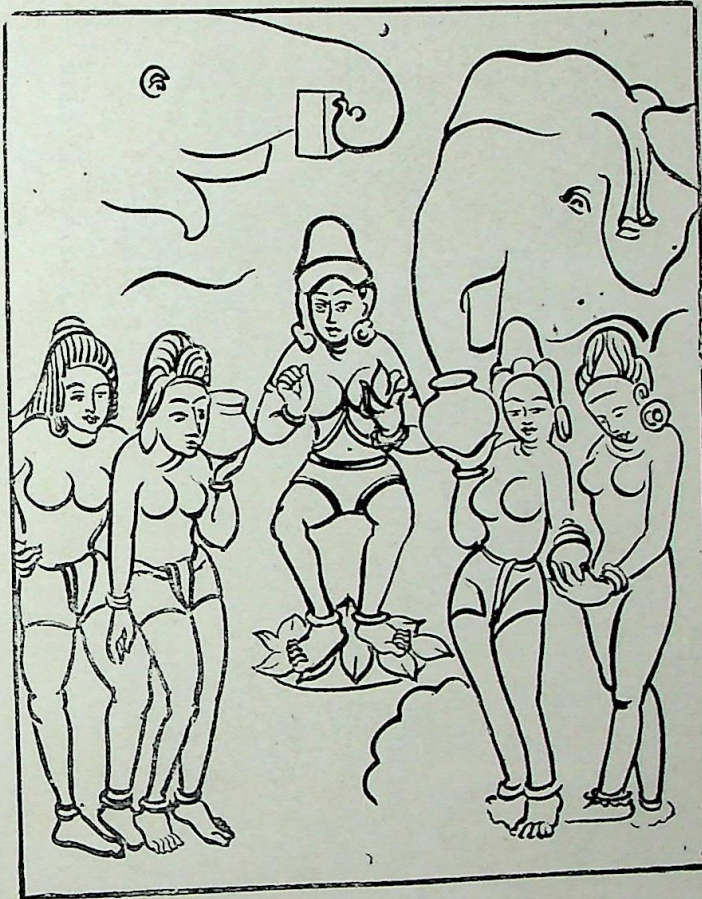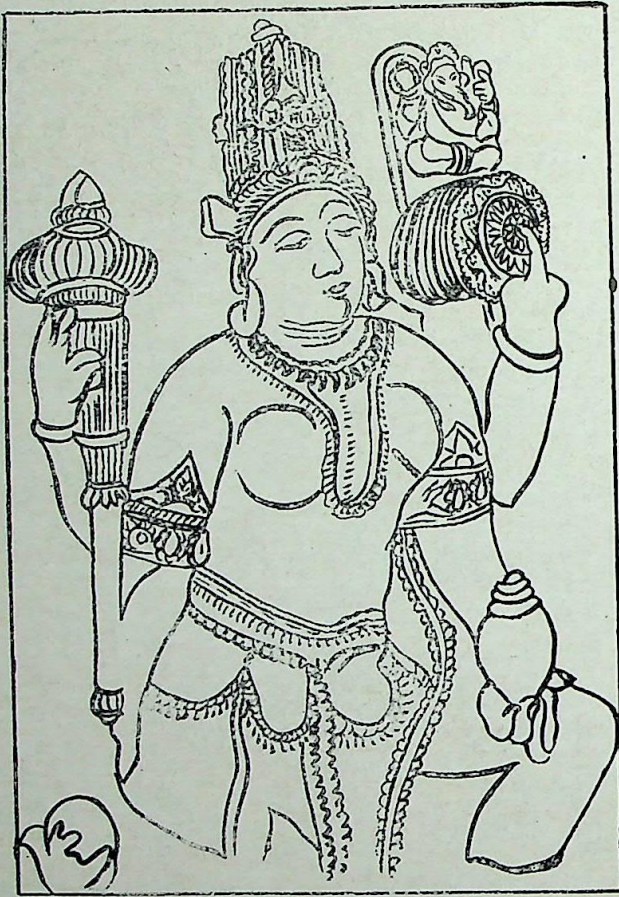
काशी में एक पाषाण-खण्ड पर पर अंकित वैष्णवी की मूर्ति ।

फलक : २०

लक्ष्मी परिणय।

फलक : २१
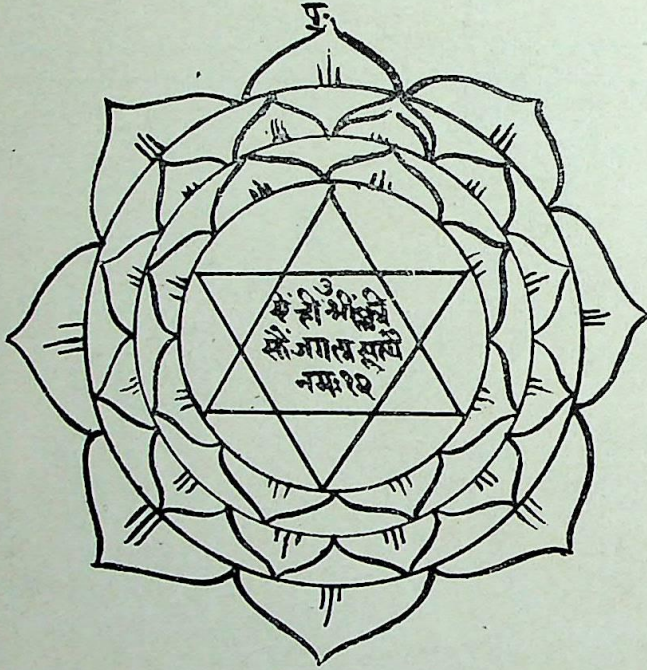
श्री महा लक्ष्मी यन्त्र

फलक : २२

श्री महालक्ष्मी यन्त्र ।
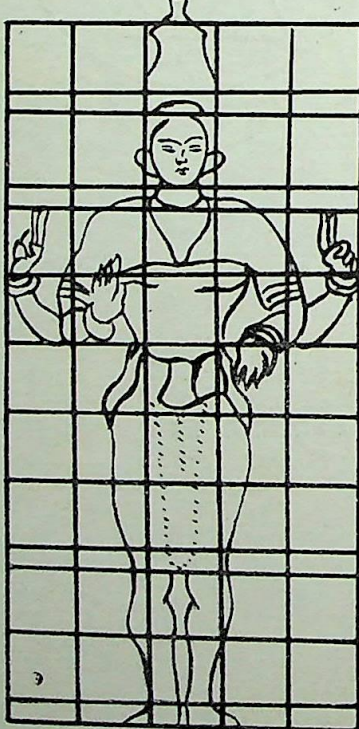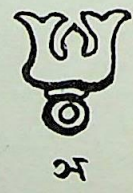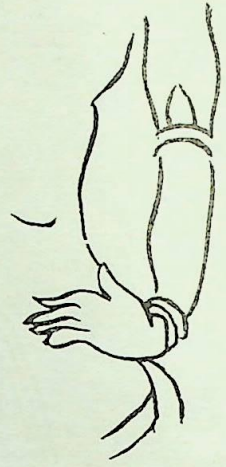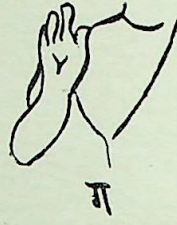
क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, हाथ की विविध मुद्राएँ।
ज—अर्ध परियंक आसन। झ—श्री वत्स का चिह्न।
ट—परियंक आसन। ञ—त्रिरत्न का चिह्न।

फलक : २४

क

ख

क---जैन धर्म-ग्रंथों के अनुसार गजलक्ष्मी।

ख---जैन धर्म-ग्रंथों के अनुसार पूर्णघट।

फलक : २५ (क)

प्राचीन भारतीय राज्यों की मुद्राओं पर लक्ष्मी की मूर्ति

फलक : २५ (ख)

ठ

प्राचीन भारतीय राज्यों की मुद्राओं पर लक्ष्मी की मूर्ति ।

फलक : २५ (क)

प्राचीन भारतीय राज्यों की मुद्राओं पर लक्ष्मी की मूर्ति

फलक : २५ (ख)

ठ

प्राचीन भारतीय राज्यों की मुद्राओं पर लक्ष्मी की मूर्ति ।

फलक : २६ (क)

ड ड ढ

ढ ण ण

त त थ

थ द द

गुप्त साम्राज्य की मुद्राओं पर लक्ष्मी

फलक : २६ (ख)

ध ध न

न प प

फ फ व

व भ भ

गुप्त साम्राज्य की मुद्राओं पर लक्ष्मी

फलक : २६ (क)

ङ ङ ढ

ढ ण ण

त त थ

थ द द

गुप्त साम्राज्य की मुद्राओं पर लक्ष्मी

फलक : २६ (ख)

ध ध न

न प प

फ फ व

व भ भ

गुप्त साम्राज्य की मुद्राओं पर लक्ष्मी

गुप्त साम्राज्य की मुद्राओं पर लक्ष्मी की मूर्ति

फलक : २८

मध्ययुगीन भारतीय राजाओं की मुद्राओं पर लक्ष्मी

क ख ग

घ ङ च

छ ज झ ञ

त थ द

मोहरों पर गजलक्ष्मी